श्री निजानन्द जैनग्रन्थमाला—द्वितीय मणि

वेदाविर्भाव

लेखक—

श्री १०५ क्षुल्लक निजानन्द जी

(पूर्वनाम स्वा० कर्मानन्द जी)

प्रकाशक—

श्री निजानन्द जैनग्रन्थमाला, सहारनपुर

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक आदरणीय श्री क्षुल्लक निजानन्द जी (पूर्व नाम स्वामी कर्मानन्द जी) से जैन समाज ही नहीं अपितु समस्त विद्वत्समाज परिचित है । आपने इससे पूर्व वैदिक साहित्यका मन्थनकर 'ईश्वरमीमांसा' नामक एक वृहत्काय ग्रन्थका निर्माण किया है । जिसमें स्वामी जी ने एक सच्चे दार्शनिक एवं वैदिक विद्वानकी दृष्टिसे ईश्वरके विषयमें पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला है तथा विज्ञ समाजके समक्ष मस्तिष्क-विटामिन युक्त मनन सामग्री उपस्थितकी है ।

स्वामी जी ने जैनधर्म स्वीकार करनेसे पूर्व जैनसमाजके साथ बड़े बड़े शास्त्रार्थोंमें भाग लिया है और एक सच्चे ज्ञानलिप्सुकी दृष्टिसे सत्यताको स्वीकार करनेके हेतु अपने विशाल हृदयमें तनिक भी संकोचको स्थान नहीं दिया है । उसीके फलस्वरूप आज आप अपनी आत्माके कल्याण करनेके साथ साथ प्राणीमात्रके हितमें संलग्न हैं । इस विषयमें अधिक लिखना उपयुक्त न होगा ।

'ग्रन्थमाला' की द्वितीयमणि 'वैदिक ऋषिवाद' का वृहद्रूप यह 'वेदाविर्भाव' आज पाठकोंके समक्ष उपस्थित है । इसमें उन ऋषियोंका विशद विवेचन किया गया है । जिनको वैदिक मन्त्रोंका 'द्रष्टा' व 'कर्ता' कहा गया है । इस विषयमें पाठक स्वयं निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करेंगे, ऐसी मुझे आशा है । ज्ञानलिप्सुओंको ऐसे सैद्धान्तिक दृष्टिकोण समझनेका प्रयत्न करना ही चाहिये, तभी

उनका पुरुषार्थ फलीभूत होता है। हठवाद और ज्ञानवादमें स्व- भावतः विरोध है। अस्तु, मैं पाठकोंका अधिक समय न लेकर उनकी ज्ञान सामग्रीके अध्ययनमें बाधक नहीं होना चाहता।

आशा है स्वामीजीकी इस खोज तथा परिश्रमपूर्ण कृतिको सभी वर्ग सम्प्रदाय समाज में सत्यताके साथ समादर प्राप्त होगा और यदि ऐसा हुआ तो स्वामी जी के गम्भीर पाण्डित्यपूर्ण इस प्रकाशन से मैं अपने को कृतकार्य समझूंगा।

त्रुटियोंके लिये क्षमा !

भद्र आश्रम
शोरमियान सहारनपुर
मई १९५१

नानकचन्द जैन
मन्त्री—
श्रीनिजानन्दजैनग्रन्थमाला

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी जीने अपने कितने ही वर्षोंके वेदाध्ययन एवं परिशीलनके गम्भीरतम अनुभवका सार पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया है । यदि विचारशील व स्वाध्यायप्रेमी पाठक महानुभाव उसका निष्पक्षपात दृष्टिसे मनन करेंगे तो वे वेदों के विषयमें बहुत कुछ जान सकेंगे, ऐसा मेरा अपना विश्वास है। यह निर्विवाद है कि, स्वामीजी वैदिक साहित्यके मर्मवेत्ता, मननशील विद्वान् हैं । आपका अध्ययन बहुत ही अपरिमित एवं व्यापक है। आपके जीवनका अधिकांश भाग धार्मिक तथा ऐतिहासिक गुत्थियोंके सुलझानेमें व्यतीत हुआ है और होरहा है । अध्ययनके पश्चात् किसी एक अनुसन्धानात्मक निष्कर्षपर पहुंचना ही आपके अध्ययनकी विशेषता है ।

अतः कहना न होगा कि आपका व्यक्तित्व न केवल वैदिक महानतासे अपितु ऐतिहासिक, राष्ट्रीय और सामाजिक परिज्ञानसे ओतप्रोत है । अपने विषयको पुष्ट करनेकेलिये प्रबल प्रमाण तथा अकाट्य युक्तियाँ देनेमें तो आप ख्याति प्राप्त कर चुके हैं ।

आर्यसमाज की ओरसे अम्बाला, पानीपत, देहली, खातौली और मुलतान आदि स्थानोंमें होनेवाले शास्त्रार्थोंमें मुख्य भाग आपका ही रहता था । इतना ही नहीं, मौखिक शास्त्रार्थोंके सिवाय

लिखित शास्त्रार्थ भी स्वामीजीने अधिक संख्यामें किये हैं। इसी लिये आपको आर्यसमाजके प्लेटफार्मसे 'शास्त्रार्थकेसरी' तथा सफल एवं मनोहर व्याख्यानोंके फलस्वरूप 'व्याख्यान वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की गई थी।

यद्यपि आजकल आप जैनसमाजके गुरुपदपर आसीन हैं। अर्थात् उच्चश्रेणीके त्यागी-क्षुल्लक पदपर अधिष्ठित होकर अपने आनन्दमय-आदर्श जीवन तथा श्रेयष्कर सदुपदेशोंसे केवल जनता का महोपकार ही नहीं कर रहे हैं, प्रत्युत साथ साथ अपनी आत्मा का अभ्युत्थान भी कर रहे हैं तथापि पूर्वानुभूत वैदिक साहित्यका रसास्वाद प्राप्त करने तथा भूतपूर्व अपने सहधर्मियों (साथियों) को जागरूक रखनेके हेतु यदा-कदा अपनी प्रबल लेखनी द्वारा वेदों के विषयमें अपना अनुभव प्रकाशित करते ही रहते हैं।

क्योंकि आपकी प्रकृतिके साथ लेखनकला व वक्तृता कला ये दो कलाएँ तो नत्थी हैं ही। फलतः प्रतिदिन शास्त्रोंके स्वाध्यायके अतिरिक्त सभामें प्रवचन उपदेश करना और गवेषणापूर्ण लेख लिखना आपकी दिनचर्यामें विशेष स्थान रखते हैं। किसी उपयोगी विषयपर घंटों चर्चा करना, शंका-समाधान करना आपके मनोविनोदका एक प्रधान साधन सा बन गया है।

स्वामीजीने आर्यसमाजसे सम्बन्ध-विच्छेद क्यों किया ? इस प्रश्नका समाधान, विचारक पाठक स्वामीजीकी जीवन झाँकीसे जो इसी पुस्तकके प्रारम्भमें प्रकाशित है, कर सकते हैं।

स्वामीजी के अध्ययनके फलस्वरूप जनताको उनकी लिखी कई पुस्तकें प्राप्त हुईं । उनमें 'वैदिकऋषिवाद', 'ईश्वरमीमांसा' आदि पुस्तकें वैदिक साहित्यसे सम्बन्धित हैं । प्रथम पुस्तकमें आपने मन्त्रस्रष्टा ऋषियों का अनुसन्धान किया है और द्वितीय ग्रन्थ में ईश्वरके स्वरूप एवं उसकी ऐतिहासिकतापर चर्चा की है। उक्त दोनों पुस्तकें ही निष्पक्ष गवेषणात्मक दृष्टिकोणसे लिखी गई हैं।

'वैदिक ऋषिवाद' सन् १९३९ में 'अ० भा० दि० जैनशास्त्रार्थ संघ' अम्बाला से प्रकाशित हुआ था । उसीका वृहद्रूप यह "वेदाविर्भाव" है।

इसमें स्वामीजीने ऋग्वेदादिके अनेक मंत्रोंद्वारा जो कि सर्वमान्य श्री सायणाचार्यके अनेक भाष्यसे युक्त हैं। यह सिद्ध किया है कि वेद न तो अपौरुषेय हैं और न नित्य हैं, प्रत्युत यज्ञादि-कविसम्मेलनोंमें तथा विशेष समय (पर्व आदि) पर ऋषियोंसे बनाई गई कविताओंका संग्रह है।

यथा—सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्महरियोजनाय ....(ऋ० १।६३।१३)

सायणभाष्य—गोतमस्य ऋषेः पुत्रो नोधा ऋषिः नव्यं नूतनं ब्रह्म—एतत्सूक्तरूपं स्तोत्रं नोऽस्मदर्थमतक्षत्—अकरोत् ।

अर्थात्—हे इन्द्र ! गोतम ऋषिके नोधा नामक पुत्रने हमारे लिए यह नया सूक्त बनाया ।

तथा च—एष वां स्तोमो अश्विनावकारि......।

(ऋ० १।१८४।५)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ ! वां युवाभ्याम, एष स्तोमः स्तोत्रम् अकारि—कृतः ।

अर्थात्—हे अश्विनीकुमारो ! हमने तुम्हारे लिए पापविनाशी यह स्तोत्र बनाया है ।

तथा च—प्रस्तुत पुस्तकके पृष्ठ १६ पर दिये गये—

(तम्नुनः पूर्वे पितरो नग्वाः सप्त विप्रासो अभिजायन्ते

(तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठम्...)

मंत्रोंद्वारा यह स्पष्ट सिद्ध है कि अंगिरा आदि सप्त ऋषियोंके वंशजोंने वेदोंका निर्माण किया है । वेदोंके स्वाध्यायसे भी यह बात निःसन्देह सिद्ध होजाती है । तथा वायुपुराण आदि मान्य ग्रन्थोंने भी इसी (पूर्वोक्त) बातकी पुष्टि की है । इसका विशद वर्णन इसी पुस्तकमें दिये गये 'ऋषिप्रकरण' पृष्ठ ३८ पर देखिये ।

तथा च—पृष्ठ १६ पर दिये गये—

(अति वा यो मन्यते नो ब्रह्म वा यः)

इत्यादि मंत्रमें ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि हे मरुतो ! जो व्यक्ति हमसे अपनेको श्रेष्ठ समझकर हमारे बनाये हुए स्तोत्रोंकी निन्दा करता है उसकी सारी शक्तियाँ अनिष्टकारी हों । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उस समयके वैदिक कवि भी एक दूसरेकी रचनाके विषयमें निन्दा-स्तुति किया करते थे ।

तथा च—पृष्ठ ३३ पर दिये गये—

(ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते.....)

इत्यादि मन्त्रमें इन्द्र ऋषि के प्रति कहते हैं कि स्तोत्रोंके बनाने वाले कवि लोग नाना प्रकारके धनकी इच्छासे एकत्र होकर तुम्हारे लिए सोम यज्ञ करते हैं। वे सोमरूप अन्न प्रस्तुत होनेके पश्चात् जिस समय आमोद-प्रमोद प्रारम्भ होता है उस समय स्तुतिरूप साधनसे सुखलाभ के अधिकारी हों।

इससे स्पष्ट विदित होताहै कि बहुतसे कवि सोमरसका पान करके नशे में हो मन्त्र-रचना करते थे।

तथा च—ऋ० ६।२६।४ और ६।१०।१-५ में सोमको वाचस्पति कहा गया है। अथर्ववेदके भाष्यकार पं० राजारामजीने अथर्ववेद के प्रथममंत्र का भाष्य करते हुए नीचे नोटमें और आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् पं० सातवलेकरजीने 'ऋग्वेदका सुबोध भाष्य' के भाग ५ में पृ० ३२ पर सोमरसको स्फूर्ति देनेवाला कहा है। इस से भी पूर्वोक्त विचारकी परमपुष्टि होती है।

इसी पुस्तक के पृ० ६६ पर वायुपुराण, ब्रह्मपुराण आदिके प्रमाण भी वेदकर्ता ऋषियोंकी पुष्टि कर रहे हैं।

तथा च—वेदविभाग पृ० १४१, वेद ईश्वररचित नहीं, पृष्ठ १४४ और अनित्या वै वेदाः पृ० १५० आदि शीर्षकोंसे विद्वान् लेखकने वेदोंकी अनित्यताको सिद्ध किया है। और उसकी पुष्टिके लिये प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैदिक विद्वानोंके प्रमाण और युक्तिसहित सिद्धान्तकी स्थापना की है।

स्वामीजीका यह वेदविषयक अनुसन्धान विद्वानोंके विचारकी वस्तु है। इस विषयमें अभिरुचि रखनेवाले विज्ञ पाठक, साम्प्रदा-

यिकता और पक्षपातको छोड़ कर यदि इसपर गम्भीर विचार करेंगे, एवं ध्यानपूर्वक इसका स्वाध्याय करनेकी कृपा करेंगे तो वे अवश्यमेव किसी एक विशेष निष्कर्षपर पहुंचेंगे, ऐसो मुझे आशा है।

—ज्योतिप्रसाद जैन शास्त्री
हेड पण्डित जैन कालिज,
सहारनपुर

ी १०५ क्षुल्लक निजानन्द जी
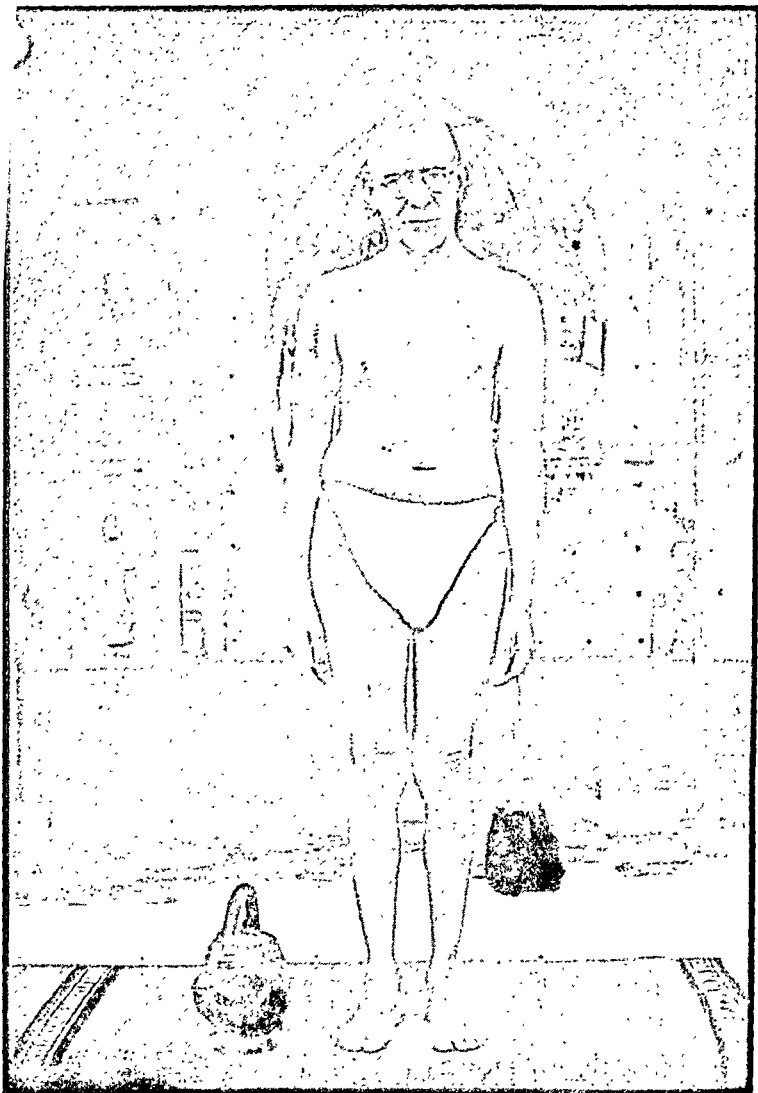
तू भी स्वामी! इक नई अन्दाज़ का इन्सान है!
बात वह कहता है सुन कर हर बशर हैरान है!!

श्री स्वामीजीकी जीवन झांकी

ला हिसारमें भिवानी एक प्रसिद्ध नगर है। जहांके वैश्य बम्बई, कलकत्ता, कानपुर और देहली आदि व्यापारिक केन्द्रोंमें व्यापारके लिए विख्यात हैं। इनकी व्यापारिक कुशलता, मितव्ययता, पुरुषार्थपरायणताने इन्हें अनुपम सफलता प्रदान की है। इस भव्य नगरका निर्माण करानेवाले श्री ला० नन्दरामजी थे। अतः यह नगर उन्हींके नामसे प्रख्यात है। धर्मप्रेमी ला० नन्दराम अपने समयके महापुरुषोंमेंसे एक थे, आप धनमें कुबेर तो दानमें कर्ण और नीतिमत्ता में महाराज विदुरके तुल्य थे। नन्दरामजीके दो छोटे भाई और थे, जिनका नाम ला० सेवारामजी और ला० भीमराज जी था। आप भी बड़े धर्मात्मा एवं गुणग्राही व्यक्ति थे।

स्वामीजीका जन्म इसी वैष्णव वंशमें हुआ था। आपकी जाति अग्रवाल और गोत्र गोयल था। आपके पिताजीका नाम श्री ला० हरिविलासरायजी था। लाला हरिविलासराय भी अपने कार्यमें दक्ष एवं धर्मधुरीण पुरुष थे। स्वामीजीका पूर्व (प्रसिद्ध) नाम वृद्धिचन्द्र था तथा संन्यासके उपरान्त आपका नाम कर्मानन्द हुआ।

जिन दिनों आप देहलीमें कपड़ेकी दलालीका कार्य करते थे उन दिनों आपको आर्यसमाजके व्याख्यान सुननेका अवसर प्राप्त हुआ तथा आपकी अभिरुचि समाजियोंके सुरुचिपूर्ण व्याख्यान सुननेमें नित्य बढ़ती ही गई। फलतः आपने आर्यसमाजके ग्रंथों (सत्यार्थप्रकाश आदि) का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया। स्वाध्यायके फलस्वरूप आप की तर्कशक्ति बढ़ने लगी और आप आर्यसमाजके सिद्धान्तोंको भली-भाँति समझने लगे। इतना ही नहीं, आर्यविद्वानोंके लिखे जितने भी

भाष्य आपको उपलब्ध होसके उन सबका तुलनात्मक दृष्टिसे आपने अध्ययन किया। तत्पश्चात् आपने सभाओंमें व्याख्यान देना तथा शास्त्रार्थ करना शुरू कर दिया।

वह युग शास्त्रार्थ-युग था। 'तर्कशालिनी सभा' में पारस्परिक शास्त्रार्थोंकी भरमार थी। एक बार 'वेद ईश्वरीयज्ञान है या नहीं ?' इस विषयपर विवाद निश्चित हुआ और उसमें पूर्वपक्ष स्वामीजीका था। अतः स्वामीजीने वेदोंका स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया तथा खण्डन-मण्डनमें जितना साहित्य प्राप्त होसका आपने उसका अनुशीलन कर आर्यजगत्के माननीय विद्वानोंके समक्ष वेदसम्बन्धी कुछ प्रश्न उपस्थित किये जिनका उत्तर उनसे सन्तोषजनक नहीं दिया जासका। स्वामीजी ने स्वयं 'वैदिक ऋषिवाद' नामक पुस्तकके आदिमें प्रकाशित आत्म-कथामें लिखा है कि 'सच तो यह है कि मेरे मनमें उसी समय यह सन्देह होगया था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं है'।

एक समय की बात है कि स्वा० दर्शनानन्दजी देहली पधारे हुए थे। स्वामीजीका इनके साथ पूर्व परिचय था ही। आप उनसे मिलनेके लिये गये और उनको अस्वस्थ देखकर उनकी परिचर्यामें लग गये। उस समय स्वामीकी दशा शोचनीय थी। अतः आप प्रतिदिन स्वामी जीकी सेवा करनेके लिये जाने लगे।

एक दिन स्वा० दर्शनानन्दजीको अत्यन्त चिन्ताग्रस्त देखकर आपने पूछा कि स्वामीजी, आप इतने चिन्तित क्यों हैं ? कई बार निरन्तर प्रश्न करनेपर स्वामीजीने कहा कि 'अब मेरे शरीरका अन्त होरहा है और आर्यसमाजमें अन्य कोई ऐसा विद्वान् इस समय नहीं है जो जैनियोंके साथ शास्त्रार्थ कर सके। अतः मुझे इस बातका ध्यान आगया कि अब आर्यसमाजकी क्या दशा होगी !' उस समय स्वामीजीने कहा कि स्वामीजी, 'चिन्ताकी क्या बात है। आर्यसमाज में बड़े बड़े विद्वान् हैं वे इस कार्यको बड़ी सफलताके साथ कर सकेंगे।'

इसके अनन्तर पुनः स्वामी दर्शनानन्दजी बोले कि 'जैनियोंके साथ अजमेरमें होनेवाले शास्त्रार्थमें पं० गोपालदासजीकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल थीं। मुझे दिखाई देरहा है कि भविष्य में उनकी युक्तियोंका खण्डन करनेवाला समाजमें कोई भी नहीं है'।

स्वामीजीके हृदयपर इस बातका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके कारण आपने अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय किया कि मैं इस कमीको अवश्यमेव पूरा करूंगा। अतएव सब व्यापार बन्द करके आप संस्कृत पढ़नेकेलिये बनारस चले गये।

वहाँ जैनदर्शनोंके साथ साथ आप संस्कृतका अध्ययन करने लगे। किन्तु आर्य विद्यार्थी होनेके कारण आपके विद्याध्ययनमें एक बड़ी भारी बाधा आ उपस्थित हुई। जिसके कारण आपको काशी छोड़नी पड़ी। वहाँसे चलकर बनारस और जौनपुर के बीच में एक ग्राम है, उसमें पं० पातञ्जलिकी अपनी एक पाठशाला थी। स्वामीजी पण्डितजीसे विद्याध्ययन करने लगे। पण्डितजी बड़े उदार और सहृदय पुरुष थे। अतः वहाँ आपका अध्ययन बड़े प्रेम, संतोषके साथ सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार स्वामीजी अन्य स्थानोंपर पढ़ते-पढ़ाते सन् १६१८ में भिवानी लौट आये और यहां आकर आपने कपड़ेकी दुकान करली। परन्तु उन्हीं दिनों भिवानीमें जैन साधुओंका चतुर्मास हो रहा था। स्वामीजीने उनके साथ वाद-विवाद करना शुरू कर दिया। यह विवाद नित्य बढ़ता ही गया और अन्तमें इस विवादने एक वृहद् रूप धारण कर लिया।

तत्पश्चात् स्वामीजीको दुकान छोड़कर रातदिन जैन ग्रंथोंके स्वाध्यायमें लगना पड़ा। जो कुछ आपके पास पूंजी थी वह भी जैनग्रंथोंके खरीदनेमें व्यय करदी। अतः एक हजार रुपयेका नुकसान देकर दुकान छोड़नी पड़ी। उन्हीं दिनों कांग्रेसका आन्दोलन भी चालू होगया था।

स्वामीजीने उसमें कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १९२१ के शुरूमें ही आपने पहले हिसार और फिर अम्बालेकी जेलयात्रा की। जेलसे छूटनेके बाद आप कलकत्तेमें वोरोंकी दलालीका कार्य करने लगे तथा दलालीके साथ साथ आर्यसमाजकी सेवा भी। कलकत्तेके भिन्न भिन्न स्थानोंमें तथा कभी कभी बाहर जाकर व्याख्यान देना, शास्त्रार्थ करना आपका एक उद्देश्य बन गया।

एक वार आपने हिन्दू सभा के मन्त्री पदका भार ग्रहण कर हवड़े में होनेवाले दंगेमें जो जनताकी सेवा की थी, वास्तवमें वह प्रशंसनीय थी। अतः उस सेवाको उस समयके समाचार पत्रों (स्वतन्त्र आदि) के मुख पृष्टपर मोटे अक्षरोंमें प्रकाशित किया गया था।

तदनन्तर स्वामीजीको मारवाड़ी अग्रवाल महासभाकी वैतनिक सेवा करनेका अवसर प्राप्त हुआ इसके प्रचारके लिये आपने भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंका भ्रमण किया। जहाँ भी आप अग्रवाल महासभा के प्रचारार्थ जाते वहांपर आर्यसमाजका प्रचार अवश्य करते। अत एव महासभाके मन्त्रीने आपके कार्यसे असन्तुष्ट होकर इन्हें पत्र लिखा कि आप अन्य साम्प्रदायिक कार्योंमें भाग न लिया करें। इतना कहने पर स्वामीजीने महासभा कार्य छोड़ दिया।

पुनः स्वामीजीने भटिण्डेके गुरुकुलमें कुछ समय विद्यादान किया और फिर कुछ दिनों बाद महासभाका कार्य करनेके लिए आपको बंबई बुला लिया गया। इसी बीचमें आपको धर्मपत्नीका स्वर्गवास होगया। बंबईके महोत्सवके पश्चात् महासभाके अधिकारियोंने फिर वही (पूर्वोक्त) प्रश्न उठाया, तब स्वामीजीने स्पष्ट कह दिया कि मैं आर्यसमाजका प्रचार तो अवश्य ही करूँगा! इतनेपर भी महासभाने आपको पृथक् नहीं किया। स्वामीजी सभाका कार्य तद्वत् करते रहे। किन्तु इनके मन में सहसा वैराग्यभाव उत्पन्न होगया। फलतः आप संन्यासी बन गये।

संन्यास ग्रहण करनेके उपरान्त आपने पुंच्छ तथा काश्मीर आदि

स्थानोंमें प्रचार-कार्य और सिन्ध आदिमें शास्त्रार्थ किये । इसी प्रकार स्थान स्थानपर अनेक प्रान्तोंमें भ्रमणकर आर्यसमाजका भारी प्रचार करने लगे।

अन्तमें स्वामीजीने अपना मुख्य स्थान पानीपत बना लिया और वहाँसे आवश्यकता पड़नेपर शास्त्रार्थके लिये आपको बुलाया जाने लगा। प्रान्तों के समान सम्प्रदाय भी ऐसा कोई न होगा जिसके साथ आर्यसमाजकी ओरसे स्वामीजीने शास्त्रार्थ न किया हो।

जैनियोंके साथ जितने शास्त्रार्थ हुए उनमें प्रमुख भाग स्वामीजी का ही रहता था। इस प्रकार आपने आर्यसमाजकी सेवा एवं प्रचार करनेमें किसी भी प्रकारकी कमी उठा न रक्खी थी।

विचार-परिवर्तन

स्वयं स्वामीजी अपनी आत्मकथामें लिखते हैं कि 'एक तो मुझे प्रारम्भिक जीवनसे ही वेदोंके ईश्वरीय ज्ञान होनेमें शंका थी दूसरे जब मैंने इस विषयपर आर्यसमाजकी ओरसे शास्त्रार्थ किये तब और भी आक्षेप मेरे सामने आये और मैं उनका समाधान न कर सका। अपने सहयोगियोंसे परामर्श किया तो वे इस विषयमें और भी अधिक असफल प्रमाणित हुये तथा वर्तमान समयके समस्त सामाजिक वेदभाष्योंने मेरी शंकाको अत्यन्त वलिष्ट बना दिया।'

तथा च—आगे वहीं आप लिखते हैं कि 'मेरे अनेक सहयोगी बंधु तो वेदोंके ईश्वरीय ज्ञानमें मुझसे भी अधिक शङ्कित निकले। इस ही समय मुझे जैनियोंकी पुस्तकोंके उत्तर भी लिखने पड़ते थे। मैं पं० अजितकुमार जैन शास्त्रीकी 'गप्पाष्टक' पुस्तकका उत्तर लिख रहा था। उत्तर तो मैं लिख गया किन्तु 'आदि सृष्टि हुई और उसमें जवान मनुष्य उत्पन्न हुए, इस प्रश्नने मेरे मस्तिष्कमें चक्कर लगाना शुरू कर दिया। जहां तक हो सका मैंने सोचा, किन्तु फिर भी मैं सफल न हो

सका। एक तो उस समय तिब्बतकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होती, क्योंकि इसका जन्मकाल सहस्रों वर्षका है। दूसरे जवान मनुष्योंकी उत्पत्ति भी तर्क विरुद्ध प्रतीत होती है।'

'इसके बाद जब मैंने भाषाविज्ञान व महाप्रलय आदिपर विचार किया तब तो उस प्रश्नको और अधिक वल मिल गया' तथाच— परमात्माका स्वभाव बनाने, रक्षा करने और प्रलय करनेका प्रतिसमय रहता है, फिर यह कैसे सम्भव है कि ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक प्रलय ही बनी रहे। इसके अतिरिक्त और भी ऐसी अनेक बातें हैं जिन्होंने मेरे विश्वासको जगत्कर्तृत्वसे हटा दिया।'

जैनियोंके साथ शास्त्रार्थ होनेसे स्वामीजीको उनके शास्त्रार्थ सुनने का अवसर मिला। ज्यों ज्यों आपने जैन पुराणोंके स्वाध्यायके पश्चात् जैन दर्शनोंका अनुशीलन किया त्यों त्यों आपके हृदयमें उसके तर्कने अपना स्थान कर लिया। अन्तमें आपको स्याद्वादका भक्त बनना पड़ा।

मुलतानमें होनेवाले शास्त्रार्थमें स्वामीजीने आर्यसमाजके प्लेट-फार्मसे स्याद्वादकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी। इस प्रकार शनैः शनैः स्याद्वादके भक्त होनेपर जैनदर्शनने आपके हृदयपर पूर्ण अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात् जब स्वामीजीने कर्म तथा उसके वास्तविक स्वरूप को समझा तब तो आपका विश्वास आर्यसमाज के स्थान पर जैनदर्शन जम गया।

स्वयं स्वामीजीने आत्मकथामें लिखा है कि 'मैं जैनदर्शनका भक्त बना, किन्तु फिरभी इसकी घोषणा न कर सका। मैंने अनेकवार इस प्रश्नपर विचार किया और अन्तमें मैं इस परिणामपर पहुँचा कि अब मुझे अपने विश्वासके अनुसारही कार्य करना चाहिए।'

'ऐसा करनेमें झंझट थे—एक ओर आर्यसमाजमें बढ़ी हुई प्रतिष्ठा तो दूसरी ओर अनेक प्रतिष्ठित बन्धुओंका स्नेह। मैं इनको कैसे छोड़ूँ, यह ध्यान बार २ मनमें आता था। किन्तु समय समयपर

भीतरसे यही ध्वनि निकलती थी कि (अपने विश्वासके लिए सब कुछ छोड़ो)। अतः मैंने इन सब बातोंके त्यागका दृढ संकल्प किया और अपना विस्तर बाँधकर अम्बालेको प्रस्थान किया। वहाँ आकर 'शास्त्रार्थ संघ कार्यालय' में अपने चिरपरिचित मित्र पं० राजेन्द्रकुमार जीसे भेंट की। तथा अपने विचार उनके सामने स्पष्ट स्पष्ट कह दिये। उन्होंने मेरा स्वागत किया। इस प्रकार मैंने एक धर्मसे सम्बन्धविच्छेद करके दूसरे धर्मको स्वीकार किया।

स्वामीजीके जीवनका परिवर्तनमय यह संक्षिप्त परिचय है। आज कल आप जैनसमाजके परमपूज्य 'क्षुल्लक' पदपर प्रतिष्ठित हैं। आपका त्याग एक महत्त्वपूर्ण त्याग है। आप नगरों तथा ग्रामोंमें भ्रमण कर उपदेशामृतवृष्टिसे जनताका कल्याण कर रहे हैं।

भद्र आश्रम
सहारनपुर
१-५-'५१

जिनेन्द्रदास जैन

विषय-सूची

लेखककी ओर से—

प्रिय पाठकवृन्द ! वेदोंका आविर्भाव कब और कहाँ हुआ, यह एक बड़ी जटिल समस्या है। सहस्रों वर्षोंसे इस विषयमें विवाद चला आरहा है। सभी विद्वानोंने अपने २ पक्षकी पुष्टिमें युक्ति और प्रमाण उपस्थित किये हैं, और प्रत्येक साम्प्रदायिक विद्वान्ने इस समस्याको अपने ढंगपर हल करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है, कि इनमेंसे अनेक विद्वानोंने सत्यकी गवेषणा न कर केवल अपने मतकी पुष्टि करनेका ही प्रयत्न किया है। इसीलिए वे इस समस्याके हल करनेमें असफल रहे। यही कारण है कि आज वेदोत्पत्ति विषयमें सैकड़ों सिद्धान्त प्रचलित है। यदि इन सबकी आलोचना की जावे तो एक विशालकाय ग्रन्थका निर्माण करना होगा। इसलिए हम यहाँ इस विषयका स्वाभाविक व वेदादिशास्त्रानुकूल युक्त्यादिसे अबाधित विवेचन करनेका प्रयत्न कर रहे है।

सर्व प्रथम हम स्वयं वेदकी इस विषयमें क्या सम्मति है इसीपर प्रकाश डालते है।

—निजानन्द क्षुल्लक

वेदाविर्भाव

अर्थ—इस स्तोत्रको बुद्धिसे हम इस प्रकार बनाते हैं जिस प्रकार बढ़ई रथको बनाता है।

३—इमां ते धियं प्रभरे महोमहीमस्य स्तोत्रे धिषणायत्त आनजे।
(ऋ० १।१०२।१)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! महोमहतस्ते, तव इमाम् इदानीं क्रियमाणां महीं महतीम्, अत्यन्तोत्कृष्टां धियं स्तुतिं प्रभरे प्रकर्षेण संपादयामि।

अर्थ—हे इन्द्र ! मैं तुम्हारेलिये अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्र (सूक्त) रूपा स्तुतिका निर्माण करता हूँ।

४—युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्।
(ऋ० १।१०६।२)

सायणभाष्य—हे इन्द्राग्नी ! युवभ्यां युवाभ्याम्……नव्यं नवतरं प्रत्यग्रम् स्तोमं स्तोत्रं जनयामि, निष्पादयामि।

अर्थ—हे इन्द्राग्नी ! तुम्हारेलिये यह नवीन स्तोत्र (सूक्त) बनाता हूँ।

५—नासत्याभ्यां बर्हिरिव वपृवृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः।
(ऋ० १।११६।१)

सायणभाष्य—अहं नासत्याभ्याम्, अश्विभ्यां स्तोमान्, स्तुतीः, इयर्मि संपादयामि।

अर्थ—मैं अश्विनीकुमारोंकेलिये स्तोम (सूक्त) स्तोत्रका सम्पादन करता हूँ।

६—ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्याम्।
(ऋ० १।११७।२५)

सायणभाष्य—हे वृषणा ! कामाभिवर्षकावाश्विनौ युवाभ्यां ब्रह्म मन्त्रात्मकं स्तोत्रं कृण्वन्तः, कुर्वन्तः ।

अर्थ—हे अश्विनीकुमारो ! हम तुम्हारेलिये मन्त्र (सूक्त) रूप स्तोत्रकी रचना करते हुए वीरपुत्रादिसे युक्त होकर यज्ञ सम्पन्न करते हैं ।

७—एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

(ऋ० १।१६६।१५)

सायणभाष्य—हे मरुतः ! एषः स्तोमः, इदानीं कृतं स्तोत्रं वः युष्माकं युष्मदर्थमित्यर्थः ।

अर्थ—हे मरुद्गण ! इसी समय तैयार किया गया यह स्तोत्र आपकेलिये है । (यह मन्त्र आगे सूक्त १६७-१६८में भी आया है)

८—अमन्दान्स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य ।

(ऋ० १।१२६।१)

सायणभाष्य—सिन्धौ, सिन्धुदेशे ...... स्तोमान्-स्तोत्राणि, तन्निष्ठ बहुविधदानादीनां कीर्तनानि मनीषातिशयबुद्ध्या प्रभरे, विशेषेण संपादयामि ।

अर्थ—सिन्धु-निवासी भाव्यके पुत्र स्वनयकेलिये अपनी बुद्धिसे बहुसंख्यक स्तोत्र (मन्त्रात्मसूक्त) बनाता हूँ ।

९—सनो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरांदर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः

(ऋ० १।१३०।१०)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! नोऽस्मत्संबन्धिभिः नव्येभिः, नूतनैः उक्थैः इदानीं प्रतिपादितप्रकारैः स्तोत्रैस्तुष्टः सन् पायुभिः पालनप्रकारैः शग्मैः सुखैश्चैहिकामुष्मिकरूपैः पाहि पालय ।

अर्थ—हे इन्द्र ! हमारे इन नये रचेहुए मंत्रोंसे संतुष्ट होकर विविध प्रकारकी रक्षा और सुख देतेहुए हमें प्रतिपालित करो। हम दिवोदासके गोत्रज हैं।

१०—इमं स्वस्मै हृद आसुतष्टं मंत्रंवोचेम कुविदस्यवेदत्।

(ऋ० २।३५।२)

सायणभाष्य—अस्मै अपान्नपात् संज्ञकाय देवाय हृदोहृदयात् सुतष्टं सुष्ठुनिर्मितम्, इमं मन्त्रं सुष्ठु आभिमुख्येन वोचेम ब्रवाम, अस्य, अस्माभिरुक्तमिमं मन्त्रं कुवित् वेदत् बहुलं जानातु।

अर्थ—उनकेलिए हम सुनिर्मित मंत्र उच्चारण करेंगे, वे उसे भलीभाँति जानें।

११—एष वां स्तोमो अश्विनावकारि ······।

(ऋ० ११८४।५)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ ··· वाम्-युवाभ्याम्, एष स्तोमः स्तोत्रम् ········ अकारि, कृतः।

अर्थ—हे अश्विनीकुमारो ! हमने तुम्हारेलिये पापविनाशी यह स्तोत्र बनाया है।

१२—तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्माय दस्य प्रत्नथोदीरते।

(ऋ० २।१७।१)

सायणभाष्य—हे स्तोतारः ! नव्यं नवतरमन्येष्वदृष्टपूर्वं तत्तादृशं स्तोत्रमङ्गिरस्वत् अङ्गिरस इवास्मै-इन्द्रायार्चत।

अर्थ—हे स्तोताओ ! तुम लोग अंगिरा लोगोंकी तरह इस अदृष्टपूर्व नवीन स्तोत्र (सूक्तों) द्वारा इन्द्रकी उपासना करो।

१३—हरी नुकं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।

(ऋ० २।१८।३)

सायणभाष्य—इन्द्रस्य सम्बन्धिनि रथे हरी एतन्नामकावश्वौ। नु क्षिप्रं कं सुखेन आयै गमनाय नवेन अन्यैरकृतपूर्वेण वचसा वेदात्मकेन सूक्तेन योजं युनज्मि।

अर्थ—इन्द्रके (रथमें अकृतपूर्व (नवीनतम) वेदात्मकसूक्तके द्वारा) शीघ्र जानेकेलिये हरिनामक अश्वोंको जोड़ता हूँ।

१४—एवाते गृत्समदाः शूरमन्मावस्यवो नवयुनानि तक्षुः।
(ऋ० २।१९।८)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! गृत्समदाः, मन्म मननीयं स्तोत्रम्, ते एव तुभ्यमेव तक्षुः, चक्रुः।

अर्थ—हे इन्द्र! गृत्समदगणने तुम्हारेलिये यह नया मन्त्रात्मक सूक्त रचा है।

१५—एतानि वा माश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
(ऋ० २।३९।८)

सायणभाष्य—हे अश्विना, अश्विनौ वां युवयोरेतानि वर्धनानि वृद्धिसाधनानि ब्रह्म ब्रह्माणि मन्त्रान् स्तोमं स्तोत्रञ्च, गृत्समदासो गृत्समदा अक्रन्—अकुर्वन्।

अर्थ—हे अश्विद्वय! गृत्समद ऋषिने तुम्हारी उन्नतिकेलिये ये सब सूक्त और मंत्र बनाये हैं।

१६—इममूषुत्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यासम् अग्ने देवेषु प्रवोचः।
(ऋ० १।२७।४)

सायणभाष्य—हे अग्ने! त्वमस्माकमस्मत्सम्बन्धिनम्, इममूषु पुरोदेशेनुष्ठीयमानमपि सनिं हविर्दानं नव्यासं नवतरं गायत्रं स्तुतिरूपं वचोऽपि देवेषु देवानामग्रे प्रवोचः, प्रब्रूहि।

अर्थ—हे अग्नि ! तुम हमारे इस हव्यकी वात और इस अभिनव विरचित स्तोत्र (सूक्त) की वात देवोंसे कहना।

१७—स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्।

(ऋ० ३।३०।२०)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! कुशिकासः कुशिकाः, मतिभिर्मननीयै मन्त्रैः वाहः स्तोत्रमिन्द्राय तुभ्यमक्रन्नकार्षुः

अर्थ—हे इन्द्र ! स्वर्गादिसुखाभिलाषी कुशिक पुत्रोंने तुम्हारे लिये मन्त्रसहित स्तोत्र वनाया है।

१८—ब्रह्मकृता मारुतेनागणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदावृषस्व।

(ऋ० ३।३२।२)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! ब्रह्मकृता ब्रह्मस्तोत्रं करोतीति ब्रह्मकृत्, इन्द्रविषयस्तोत्रं कुर्वाणेन मारुतेन गणेन रुद्रैरेकादश-संख्याकै रुद्रैश्च सजोषाः संगतस्त्वं तृपत् सोमपानेन तृप्यन् आवृषस्व तमिमं सोमं सर्वतो जठरे सिञ्च धारय।

अर्थ—मन्त्रनिर्माता मरुतों और रुद्रोंके साथ जब तक तृप्ति न हो तब तक हे इन्द्र ! तुम सोम पान करो।

१९—एतद्वचो जरितर्मापिमृष्ठा आयत्ते घोषानुत्तरायुगानि।
उक्थेषु कारो प्रतिनोजुषस्व मानो निकः पुरुषत्रा नमस्ते॥

(ऋ० ३।३३।८)

२०—ओषु स्वसारः कारवे शृणोत।

(ऋ० ३।३३।९)

२१—आते कारो शृणवामा वचांसि।

(ऋ० ३।३३।१०)

सायणभाष्य—हे विश्वामित्र ! ते त्वदीयं यत्संवादात्मकं वचस्त्वं

नोऽभीत्या घोषानुद्घोषयन् वर्तसे, एतद्वचो भ्रापि-
मृष्ण माविस्मार्षीः, उत्तरायुगानि—उत्तरेषु याज्ञिकेषु
युगेष्वहःसु—उक्थेषु कारो शस्त्राणां कर्त्तस्त्वं नोऽस्मान्
प्रतिजुषस्व, संवादात्मकेन तेन वाक्येन प्रतिसेवस्व,
इदानीं नोऽस्मान् पुरुषत्रा पुरुषेषु मानिकः, उक्तिः
प्रत्युक्तिरूपसंवादवाक्याध्यापनेन नितरां पुंवत्
प्रागल्भ्यं माकार्षीः, ते तुभ्यं नमः । ८

कारवे स्तोत्रं कुर्वाणस्य मम विश्वामित्रस्य वचनं
सुष्ठु श्रो शृणोत शृणुत । ९

कारो स्तोत्रं कुर्वाण हे विश्वामित्र ! ते तव वचांसि,
इमानि वाक्यानि आशृणवाम कात्स्न्येन शृणुम । १०

अर्थ—इस सूक्तमें कविने आलंकारिकरूपसे दो नदियों विपाशा, (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) का विश्वामित्रसे वार्तालाप कराया है । यहाँपर विश्वामित्र नदियोंसे पार जानेकेलिए नदियोंके तीरपर बैठकर नदियोंकी स्तुति कर रहे हैं । मंत्र ८ में दोनों नदियाँ विश्वामित्रसे कहती हैं, कि हे मंत्रनिर्माता विश्वामित्र ! यह जो तुम प्रतिज्ञा करते हो उसे नहीं भूलना । भविष्यत यज्ञ समयमें मंत्र रचना करके तुम हमारी सेवा करो ! हम दोनों नदियाँ तुम्हें नमस्कार करती हैं । हमें पुरुषकी तरह वाचाल मत बनाना । आगे विश्वामित्र कहते हैं कि मैं मन्त्र निर्माता विश्वामित्र हे भगिनी-भूत नदीद्वय ! तुम्हारी स्तुति करता हूँ, सुनो, मैं दूर देशसे रथ और अश्व लेकर आया हूँ । तुम निम्नस्थ बनो जिससे मैं पार हो जाऊँ । दोनों नदियोंने उत्तर दिया कि, हे मन्त्रनिर्माता विश्वामित्र ! हमने तुम्हारी स्तुति सुनी । हम अवनत होती हैं, तुम पार होजाओ । इससे स्पष्ट है कि इन मन्त्रोंके रचयिता विश्वामित्र हैं और यज्ञादिमें भी मन्त्रोंका निर्माण होता था, जिसका वर्णन विशेषरूपसे आगे करेंगे ।

२२–विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ।

(ऋ० ३।५३।१२)

सायणभाष्य—हे कुशिकाः ! योऽहं विश्वामित्र-इन्द्रमतुष्टवं स्तावयामि, द्यावापृथिभ्या मिन्द्रस्य स्तोत्रं मया कारितमित्यर्थः । यद्वा स्तोमं कुर्वाणस्य विश्वामित्रस्य ममेदमिन्द्रविपयं ब्रह्मस्तोत्रं भारतं भरतकुलं जनं रक्षति पालयति ।

अर्थ—हे कुशिकपुत्रो ! हम (विश्वामित्र) ने द्यावापृथिवी द्वारा इन्द्रका स्तवन किया है, मुझ विश्वामित्रका रचा हुआ यह मंत्रात्मक स्तोत्र भरत कुलके मनुष्योंकी रक्षा करे ।

२३–विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

करदिन्नः सुराधसः ॥

ऋ० ३।५३।१३)

सायणभाष्य—विश्वामित्राः, वज्रिणे वज्रहस्तायेन्द्राय ब्रह्मस्तोत्रमरासत अकुर्वत, स्तुतः स इन्द्र नोऽस्मान् सुराधसः शोभनधनोपेतान् करदित् करोत्येव ।

अर्थ—विश्वामित्रके वंशजोंने वज्रधर इन्द्रकेलिये यह स्तोत्र (मन्त्र-समूह) बनाया है। इन्द्र हम लोगोंको शोभनीय धनसे युक्त करता ही है ।

२४–इयं ते पुपन्नाघृणेसुष्टुतिर्देव नव्यसी ।

(ऋ० ३।६२।७)

सायणभाष्य—आघृणे दीप्तिमन् हे पूपन्देव नव्यसी नवतरी इयं सुष्टुतिः शोभनास्तुतिरूपा वाक् ते त्वत्संबन्धिनी भवति ।

अर्थ—हे पूषन् देव यह नवीनतम स्तोत्र (सूक्त) अर्थात् स्तुतिरूप वचन तुम्हारे लिये है ।

२५—महोरुजामिवन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।
(ऋ० ४।४।११)

सायणभाष्य—हे अग्ने ! वचोभिस्त्वदुद्देशेन कृतैः स्तोत्रैः समुपजाता येयं वन्धुता बन्धुभावः, तया महो महतो राक्षसान् जामि भनज्मि।

अर्थ—हे होता ! प्रज्ञावान् अग्नि ! तुम्हारे उद्देश्यसे रचे गये स्तोत्रोंद्वारा जो वन्धुता उत्पन्न हुई है उसकेद्वारा हम राक्षसोंका नाश करें।

२६—अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थ यजते व्यूधाः।
(ऋ० ४।६।११)

सायणभाष्य—हे समिधान समिध्यमानाग्ने ! तुभ्यं त्वदर्थं ब्रह्म स्तोत्रम् अकारि-अस्माभिः कृतम्।

अर्थ—ऋग्वेदका यह सम्पूर्ण चतुर्थमण्डल वामदेव और उनके वंशजोंद्वारा रचा गया है। इस मन्त्रमें वामदेव ऋषि कहते हैं कि—हे समिध्यमान अग्नि ! तुम्हारेलिये हमने यह नूतन स्तोत्र (मंत्रसमूह) बनाया है। होता, उक्थ (शस्त्ररूप) मंत्रोंका उच्चारण करते हैं।

२७—एवेदिन्द्राय वृषभाय ब्रह्मा कर्मभृगवो न रथम्।
(ऋ० ४।१६।२०)

२८—अकारि ते हरि वो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यःसदासाः।
(ऋ० ४।१६।२१)

सायणभाष्य—एवमिन्द्राय वृषभाय कामानां वर्षित्रे वृष्णे—नित्य तरुणाय ब्रह्मस्तोत्रमकर्म अकुर्म। २०

हे इन्द्र! हरि वः हरिवन् हरिसंज्ञकाश्वोपेतेन्द्र तु तुभ्यं नव्यं नवतरं ब्रह्मस्तोत्रमकारि, अस्माभिः क्रियते, रथ्यो रथवन्तो वयं धिया

प्रशारूपया स्तुत्या सदासास्त्वां सर्वदा भजमानाः, त्वदर्थं हवीरूप-स्यान्नस्य दातारो वा स्याम भूयास्म । २१

अर्थ—रथनिर्माता कारीगर जिस प्रकार रथका निर्माण करते हैं उसी प्रकार हम लोग भी अभीष्टवर्षी तथा नित्य तरुण इन्द्रके लिये स्तोत्र (मंत्र समूह) की रचना करते हैं ।

अर्थ—हे इन्द्र ! हम तुम्हारे उद्देश्यसे नवीनतम सूक्तकी रचना करते हैं ! इस मण्डलमें वामदेव ऋषिने इसी प्रकार अनेक स्थालों में अपने नवीतम मन्त्र बनानेका उल्लेख किया है ।

२६–एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं नधीरःस्वपा अतक्षम् ।

(ऋ० ५।२।११)

सायणभाष्य—हे तुविजात बहुभावमापन्नाग्ने ! ते त्वदर्थमेतं स्तोमम्, एतत्स्तोत्रं विप्रो मेधावो स्तोता रथं न रथमिव धीरः स्वपाः शोभनकर्माहम्, अतक्षं संपादयम् ।

अर्थ—अत्रिपुत्र कुमार ऋषि कहते हैं कि—हे बहुभावप्राप्त अग्नि, हम तुम्हारे स्तोता हैं । धीर और कर्मकुशल व्यक्ति जिस प्रकार रथ बनाते है, उसी प्रकार हम तुम्हारे लिये इस स्तोत्रका निर्माण करते हैं ।

३०–इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणाजुषस्व याते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरःस्वपा अतक्षम् ॥

(ऋ० ५।२६।१५)

सायणभाष्य—हे शविष्ठ बलवत्त शूरतमेन्द्र ते तुभ्यं या यानि स्तोत्राणि नव्या नूतना अद्यतना वयमकर्म अकुर्म, हे इन्द्र । त्वं क्रियमाणा अस्माभिः क्रियमाणानि ब्रह्म ब्रह्माणि तानि स्तोत्राणि जुषस्व सेवस्व । धीरो धीमान् स्वपाः शोभनकर्मा वसूयुर्धनकामोऽहं वस्त्रे व

वस्त्राणीव भद्रा भद्राणि भजनीयानि सुकृता सुष्ठु-
कृतानि स्तोत्राणि रथं न रथमिव अतक्षम्-अकरवम् ।

अर्थ—शक्तिगोत्रोत्पन्न गौरीवीति ऋषि कहते हैं कि हे अतिशय वलवान् इन्द्र ! हम लोगोंने आज तुम्हारेलिये जिन नूतन स्तोत्रों (स्तुतिरूप मन्त्रसमूह) को वताया है । हम लोगोंद्वारा विरचित उन सकल स्तोत्रोंको तुम ग्रहण करो ।

३१—अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् । तस्मा उब्रह्म
वाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयोगिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥

(ऋ० ५।३६।५)

सायणभाष्य—अस्मा इत् अस्मा एवेन्द्राय काव्यं कवेः स्तोतुः सम्बन्धिवचो वाग्रूपमुक्थं शस्त्रं शंस्य शंसनीयं तस्मा उ तस्मै इन्द्रायैव ब्रह्मवाहसे परिवृढस्य स्तोत्रस्य वाहकाय गिरः स्तुतोरत्रयोऽत्रिगोत्रा वर्धन्ति वर्ध-यन्ति । अत्रयो गिरः शुभन्ति, दीपयन्ति ।

अर्थ—आत्रेय ऋषि कहते हैं कि इन्द्रकेलिये ही यह मेरा काव्य और उक्थ (मन्त्र) उच्चरित हुआ है । वे स्तोत्रवाहक हैं । हम अत्रिपुत्र उनके समीप ही मन्त्रोंका उच्चारण करते हैं ।

३२—गूह्ळं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः ।

(ऋ० ५।४०।६)

सायणभाष्य—गूह्ळं सूर्यम्—अन्धकारस्यावरणरूपत्वादपव्रतत्वं तथाविधं तुरीयेण ब्रह्मणा मंत्रेणात्रिरविन्दत् लब्धवान् ।

अर्थ—अन्धकारद्वारा समाच्छन्न सूर्यको अत्रि ऋषिने चार ऋचाओंद्वारा प्रकाशित किया था ।

३३–उतवा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ।

(ऋ० ।५।४१।३)

सायणभाष्य—उतवा किञ्च, दिवो द्युलोकसंबन्धिने, असुराय, प्राणदात्रे सूर्याय वायवे वा यज्यवे यागसाधकाय मन्म मननीयं स्तोत्रं प्रभरध्वं संपादयत । हे ऋत्विजः, अन्धांसीव अन्नानि हविर्लक्षणानि हवींषि स्तोत्रञ्चेत्यर्थः ।

अर्थ—अत्रिके पुत्र भौम ऋषि कहते हैं कि हे ऋत्विको, तुम लोग द्योतमान और प्राणापहारक रुद्रकेलिये स्तोत्र और हव्यका सम्पादन करो ।

३४–प्रसूमहे सु शरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।

(ऋ० ५।४२।१३)

सायणभाष्य—सु सुष्ठु प्रभरे प्रकर्षेण सम्पादयामि, महे महते सुशरणाय शोभनरक्षकायेन्द्राय मेधां मतौ धीयमानां गिरं स्तुतिं कीदृशीं नव्यसीं नवतरामिदानीमुत्पद्यमानामित्यर्थः ।

अर्थ—भौम ऋषि कहते हैं कि हम लोग इन्द्रकेलिये नवीनतम स्तोत्रका सम्पादन करते हैं ।

३५–एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा······।

(ऋ० ५।४२।१५)

सायणभाष्य—एष मया सम्पादितः स्तोमः स्तोत्रं मारुतं शर्धो मरुतां बलम्, अच्छ अभिमुखं······प्राप्नोतु ।

अर्थ—भौम ऋषि कहते हैं कि धनकेलिये हमारे द्वारा विरचित यह स्तोत्र (मन्त्रसमूह) पृथ्वी, स्वर्ग, वृक्ष और ओषधियोंके निकट गमन करे ।

३६–प्रशर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजापर्वतच्युते।
(ऋ० ५।५४।१)

सायणभाष्य—मारुताय मरुत्सम्बन्धिने शर्धाय बलायेमां क्रियमाणां वाचं स्तुतिं प्रानज प्रापय।

अर्थ—श्यावाश्व ऋषि कहते हैं कि हमारेसे क्रियमाण इस स्तोत्रको प्राप्त कराओ।

३७–एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परावह।
(ऋ० ५।६१।१७)

सायणभाष्य—हे ऊर्म्ये ! मे ममेतं स्तोमं मरुद्भ्यः कृतं स्तोत्रमहं मंत्रदृक् भूत्वा मरुतं स्तुतवान्।

अर्थ—श्यावाश्व ऋषि कहते हैं कि मरुद्गणकेलिये हमारेसे बनाये गये इस स्तोत्र (मत्रसमूह) को प्राप्त करो।

३८–रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे।
(ऋ० ५।६६।३)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ रातहव्यस्य ऋषेः, रातहव्य संबंधिभिः सुष्टुतिं सुष्टुतिभिः शोभनस्तुतिसाधनैः स्तोमैर्दधृक् युवां धर्षकौ।

अर्थ—अत्रिअपत्य यजत ऋषि कहते हैं कि हे मित्रावरुणे ! तुम दोनों रातहव्य ऋषि-रचित इस स्तोत्रसे हम लोगोंके इस रथके सम्मुख बहुत दूर तक मार्ग-रक्षार्थ गमन करते हो।

३९–तत्सुवामेष ते मतिरत्रिभ्यः।
(ऋ० ५।६७।५)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ ! युवाम् आईषते, अभिगच्छति, अत्रिभ्योऽत्रिगोत्रेभ्योयुस्मभ्यमस्मदीयामतिः, एष ते।

अर्थ—यजत ऋषि कहते हैं कि हे मित्र व वरुण ! तुम दोनों ही स्तुतिके योग्य हो। हम लोग अल्पबुद्धि हैं। अतः हम अत्रिगोत्रमें उत्पन्न

हुए आपका स्तवन करते हैं । और हमारा यह स्तोत्र (सूक्त) आपके लिये है ।

इस मंत्र में मति शब्द मन्त्र तथा मंत्रसमूह (सूक्त) वाचक है ।

४०–आमित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।

(ऋ० ५।७२।१)

सायणभाष्य—वयमात्रेया मित्रे वरुणे, मित्रावरुणयो रथाय गीर्भिर्मंत्रैराजुहुमः, अत्रिवत अस्मद्गोत्रप्रवर्तकोऽत्रिरिव ।

अर्थ—बाहुवृक्त ऋषि कहते हैं कि हे मित्र और वरुण ! अपने गोत्रप्रवर्तक अत्रिकी तरह हम लोग भी मंत्रोंद्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

४१–युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।

(ऋ० ६।८।५)

सायणभाष्य—हे अग्ने ! युगे युगे काले काले विदथ्यं यज्ञार्हं त्वामुद्दिश्य नव्यसीं नवतरां स्तुतिं गृणद्भ्य उच्चारयितृभ्योऽस्मभ्यं रयिं धनं यशसं यशस्विनं पुत्रञ्च धेहि कुरु ।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि ! तुम यागयोग्य हो, तुम्हारे उद्देश्यसे बनाये हुए इस-नूतन स्तोत्रका जो उच्चारण करते हैं, उन्हें तुम धन और यशस्वी पुत्र प्रदान करो ।

४२–सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ।

(ऋ० ६।१७।१३)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! त्वां नव्यं नूतनमन्यैरकृतपूर्वं ब्रह्म, अस्माभिः कृतं स्तोत्रमवसेऽस्माकं रक्षणाय, आववृत्यात् आवर्तयतु ।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे वज्रधर इन्द्र ! हम लोगों द्वारा रचित यह नवीन स्तोत्र है । यह नवीन स्तोत्र तुम्हें प्रेरित करे, जिससे हम लोगोंकी रक्षा हो ।

४३-यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः।

(ऋ० ६।१८।१५)

सायणभाष्य—हे कृत्नो ! ते त्वदीयम, अकृतम्—यत्कर्मास्ति तत् कृण्व कुरुष्व तदनन्तरं यज्ञैर्यज्ञेपु नवीयो नवतरमुक्थं स्तोत्रं जनयस्व।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे कृत्नो (इन्द्र) ! तुम असम्पादित कर्मोंका अनुष्ठान करो और उसके अनन्तर यज्ञमें नवीनतम स्तोत्र (मन्त्रों) को उत्पन्न करो।

इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि यज्ञोंमें मन्त्रोंका निर्माण होता था।

४४-स तु श्रुधीन्द्रनूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।

(ऋ० ६।२१।८)

सायणभाष्य—हे वीरेन्द्र ! स प्रसिद्धस्त्वं नूतनस्येदानीन्तनस्य ब्रह्मण्यतः ब्रह्मस्तोत्रं कर्तुमिच्छतो मम स्तोत्रं तुक्षिप्रं श्रुधि शृणु।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे वीरेन्द्र ! तुम हमारे स्तोत्रको शीघ्र सुनो। हम अद्यतन (आधुनिक) स्तोत्र (मन्त्रों) के रचनेकी इच्छा करनेवाले हैं।

४५-इमा उत्वा पुरुतमस्यकारोर्हव्यम् वीर हव्या हवन्ते।

(ऋ० ६।२१।१)

सायणभाष्य—पुरुतमस्य बहुलं कामं कांक्षतः, कारोः स्तोतुर्भारद्वाजस्य सम्बन्धिन्यो हव्याः स्तुतयः प्रशस्या इमा धियः स्तुतयस्त्वां हवन्ते ह्वयन्ति।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! भारद्वाजकी मन्त्रात्मक (प्रशंसित) स्तुतियाँ आपका आह्वान करती हैं।

४६-ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्तइन्द्रमतिभिर्विविप्मः।

(ऋ० ६।२३।६)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! त्वं हि ब्रह्माणि स्तोत्राणि वर्धनानि स्वयमेव वृद्धिकराणि चकृषे कृतवानसि तस्मात्कारणात् तावत्-तावन्ति तादृशानि स्तोत्राणि ते तुभ्यं मतिभिर्बुद्धिभिर्वयं विविष्मो व्याप्नुमः ।

अर्थ—भारद्वाज ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र ! तुमने मेरे इन स्तोत्रोंको स्वयं बढ़ाया है, अतः हम लोग उस प्रकारके स्तोत्रोंका तुम्हारेलिये बुद्धिपूर्वक विस्तार-(निर्माण) करते हैं ।

४७–तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः
न क्षदाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥
(ऋ० ६।२२।२)

सायणभाष्य—पूर्वे प्रत्ना नवग्वाः, नवभिर्मासैः सत्रमनुष्ठितवन्तः, सप्त सप्तसंख्याका विप्रास विप्रा मेधाविनः वाजयन्तः वाजमन्नं हविर्लक्षणमिन्द्रस्य कुर्वन्तः, इन्द्रं वा वाजिनं बलिनं कुर्वन्तः, एवंभूता नोऽस्माकं पितरोऽङ्गिरसः, तमु तमेवेन्द्रं मतिभिः स्तुतिभिरभितुष्टुवुरिति शेषः । कीदृशं नक्षद्दाभं नक्षतिर्गतिकर्मा अभिगच्छतां शत्रूणां दंभितारं हिंसितारं ततुरिं तरितारं पर्वतेष्ठां पर्वतेष्ववस्थितम् अद्रोघवाचम्""।

४८–तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
(ऋ० ६।२२।७)

सायणभाष्य—नव्यस्या नवतरया धिया स्तुत्या शविष्ठं बलवत्तमं प्रत्नं पुराणम्, हे इन्द्र ! तं वस्त्वां प्रत्नवत् चिरन्तना ऋषय इव परितं सयध्यै परितो विस्तारयितुमहं प्रवृत्तोऽस्मि ।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि नौ महीनेमें यज्ञ करने वाले पुरातन सप्तसंख्यक मेधावी हमारे पितर अंगिरा आदिने इन्द्रको

बलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों (मंत्रसमूह) द्वारा उनका स्तवन किया था। २

अर्थ--हे इन्द्र ! हम उन्हीं अंगिरा आदि चिरन्तन (पुरातन) ऋषियोंकी तरह (स्वनिर्मित) नवीन स्तुतियों द्वारा तुम्हारा गौरव विस्तृत करते हैं। ७

इन मन्त्रोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि--अंगिरा आदि सप्त ऋषियोंके वंशजोंद्वारा वेदोंका निर्माण हुआ है। वेदोंके अध्ययनसे भी यह बात स्पष्ट सिद्ध होजाती है, तथा वायुपुराण आदि आर्ष ग्रन्थोंने भी इसी बातकी पुष्टि की है। इस विषयका वर्णन, हम "ऋषिप्रकरण" में विस्तारपूर्वक करेंगे।

४६—पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का।
(ऋ० ६।३४।१)

सायणभाष्य—पुरा पूर्वस्मिन्काले नूनमद्य च ऋषीणामतीन्द्रियार्थदर्शिनां भरद्वाजादीनां स्तुतयः स्तोत्राणि इन्द्रे, अधि अधिकं पस्पृध्रे-अस्पर्धयन्तः। तथा, उक्थार्का उक्थ शस्त्रं तद्रूपाण्यर्काणि—अर्चनसाधनानि स्तोत्राणि च पस्पृध्रे।

अर्थ—शुनहोत्र ऋषि कहते हैं कि—पूर्वकालमें और इस समयमें भी ऋषियोंके स्तोत्र तथा शस्त्रात्मक मंत्र और अर्चात्मकमंत्र, इन्द्रकी पूजाके विषयमें परस्पर स्पर्धा करते हैं।

भाव यह है, कि इन्द्रके स्तुतिपरक मंत्र बनानेके लिये कवि लोग परस्परमें स्पर्धा करते थे। क्योंकि इन कवियोंको उस समय उत्कृष्ट कविताओंपर पारितोपिक आदि दिया जाता था। जैसा कि लिखा है—

५०—कदा भुवन्नथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यंदाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदाधियः करसिवाजरत्नाः॥
(ऋ० ६।३५।१)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! ब्रह्मणि ब्रह्माणि स्तोत्राण्यस्मदीयानि रथक्षयाणि रथनिवासानि कदा भुवन् भवेयुः। रथेवस्थितं त्वां कदा प्राप्नुवन्तीत्यर्थः। कदा कस्मिन्काले स्तोत्रे स्तुतवे मह्यं सहस्रपोष्यं सहस्रसंख्याकपुरुषपोषकं गोसमूहं पुत्रं वादाः दद्याः। कदाच अस्य मम स्तोतुः वाजरत्नाः-वाजैरन्नैरमणीयाः करसि कुर्याः।

अर्थ—नरऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! रथाधिरूढ, तुम्हारे निकट हमारे स्तोत्र कब उपस्थित होंगे ? कब तुम, मुझ स्तोत्र करने वालेको सहस्र पुरुषोंके पोषक गोसमूह या पुत्रदान करोगे ? कब तुम मुझ स्तोताके (मंत्रात्मक) स्तोत्रको धनद्वारा पुरस्कृत करोगे ? और कब तुम अग्निहोत्रादि कार्यको अन्नसे रमणीय करोगे ?

५१—स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रा वरुणा सुम्नयन्ता
(ऋ० ६।४९।१)

सायणभाष्य—सुव्रतं सुकर्माणं जनं दैव्यं जनं देवसंघं नव्यसीभिर्गीर्भिः स्तुतिभिः स्तुषेऽहं स्तुवे……।

अर्थ—ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि—मैं नूतन मंत्रात्मक स्तोत्रों द्वारा मित्र वरुणादि देवोंकी स्तुति करता हूँ। वे देव इस यज्ञमें आवें और हमारी मंत्रात्मक स्तुतियोंको सुनें ?

५२—अभित्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन।
(ऋ० ६।५०।६)

सायणभाष्य—हे जरितः स्तोतः। त्यं तं प्रसिद्धं वीरं वीर्यवन्तं गिर्वणसं गिरां संभक्तारमेवं विधमिन्द्रं नवेनाभिनवेन ब्रह्मणा स्तोत्रेण अभ्यर्च अभिष्टुहि।

अर्थ—ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि—स्तोता, इस नवीनतम (मंत्रसमूहात्मक) स्तोत्रद्वारा स्तुत्य इन्द्रको स्तुति करो।

५३—अतिवायोमरुतोमन्यते नो 'ब्रह्मवाय: क्रियमाणं'... ।

(ऋ० ६।५२।२)

सायणभाष्य—हे मरुतः। यः पुरुपो नोऽस्मानतिमन्यते अतीत्यस्वस्याधिक्यं मन्यते, अस्माभिः क्रियमाणं ब्रह्मस्तोत्रं वायो निनित्सात् निन्दितुमिच्छेत्।

अर्थ—ऋजिश्वा ऋषि कहते हैं कि— हे मरुतो! जो व्यक्ति हमसे अपनेको श्रेष्ठ समझकर हमारे बनाये हुये स्तोत्रोंकी निन्दा करता है। उसकी सारी शक्तियां अनिष्टकारक हों।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समयके वैदिक कवि भी, वर्तमान कालकी तरह एक दूसरेकी कविताके विपयमें निन्दा, स्तुति किया करते थे।

५४—मतीनामुपब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे।

(ऋ० ६।६६।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्रविष्णू! वां युवां मे मदीयानि ब्रह्माणि स्तोत्राणि गिरः शस्त्ररूपा वाचश्च उपश्रृणुतम्।

अर्थ—भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र, विष्णु, मेरे इन स्तोत्र (मंत्रसमूह) और शस्त्रात्मक मंत्र भी सुनें?

इसी सूक्तके मंत्र दोमें (या विश्वासां जनितारामतीनामिद्राविष्णू) इन्द्र और विष्णुको मंत्रोंका निर्माता वतलाया है।

५५—धेनुं नत्वासूयवसे दुदुक्षन्नुपब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः।

(ऋ० ७।१८।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! सुयवसे सुतृणे गोष्ठे वर्तमानां धेनुं न धेनुमिव सुहविष्के यज्ञगृहे वर्तमानं त्वां दुदुक्षन् वशिष्ठः ब्रह्माणि वत्सस्थानीयानि स्तोत्राणि उपससृजे ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र ! बढ़िया घासवाली गोशालाकी गायकी तरह तुम्हें दूहनेकी इच्छासे मैं वसिष्ठ ऋषि वत्सस्वरूप (मंत्रसमूह) स्तोत्रको बनाता हूँ ।

५६—पूर्वऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।

(ऋ० ७।२२।६)

सायणभाष्य—ये च पूर्वे प्रात्नाः, ये च नूत्ना नवीनाः ऋषयः, मेधाविनः । ब्रह्माणि स्तोत्राणि जनयन्त ... ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र, जितने प्राचीन ऋषि होगये हैं और जितने असमदादि नवीन हैं वे सभी तुम्हारे लिये स्तुत्यात्मक मंत्रों (स्तोत्रों) की रचना करते हैं ।

५७—यो अर्चतो ब्रह्मकृति मविष्ठो ...... ।

(ऋ० ७।२८।५)

५८—ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृति जुषाणो ...... ।

(ऋ० ७।२९।२)

५९—यो अर्चतो ब्रह्मकृति मविष्ठो ...... ।

(ऋ० ७।२९।५)

६०—यो अर्चतो ब्रह्मकृति मविष्ठो ...... ।

(ऋ० ७।३०।५)

सायणभाष्य—यश्चेन्द्रोऽर्चतः स्तुवतो ब्रह्मकृतिं क्रियमाणं ब्रह्म-

स्तोत्रम् अविष्ठोऽतिशयेन रक्षिता भवति ।
२८।५, २६।५, ३०।५,
हे ब्रह्मन् ! वीरेन्द्र, ब्रह्मकृर्ति क्रियमाणं स्तोत्रं जुषाणः सेवमानः । २६ । २

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र ! तुम स्तोताके कार्यके रक्षक हो अतः हमारे इस मंत्रात्मक स्तोत्रकी रक्षा करो ।

हे वीरेन्द्र ! हमारेद्वारा निर्मित स्तोत्रात्मक (मंत्रों) का सेवन करो । २६।२,

६१—इन्द्राय ब्रह्मजनयन्त विप्राः ।

(ऋ० ७।३१।११)

सायणभाष्य—इन्द्राय सुवृक्तिं स्तुतिं ब्रह्मं अन्नं हविश्च विप्राः प्राज्ञाः जनयन्त जनयन्ति ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—महान् इन्द्रकेलिए बुद्धिमान् कवि, मन्त्रात्मक स्तोत्रका निर्माण करते हैं ।

६२—सुवृक्तिमिपं न कृण्वे असुरा नवीयः ।

(ऋ० ७।३६।२)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ, वां युवाभ्यामिपं न हवोरूपमन्नमिव नवीयो नवीयसीमिमामस्मदीयां सुवृक्तिं स्तुतिं कृण्वे करोमि ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे मित्रावरुण । मैं आपके लिए स्तुतिरूप नये मंत्र बनाता हूँ ।

६३—ब्रह्मकृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ।

(ऋ० ७।३७।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! ते त्वदर्थं ब्रह्म स्तोत्रं कृण्वन्तः कुर्वन्तः ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे हरि, अश्ववाले इन्द्र आज हम (वसिष्ठ) हव्य प्रदान करके तुम्हारेलिये स्तोत्र बनाते हैं ।

६४—प्रतिस्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।

(ऋ० ७।४०।१)

सायणभाष्य—हे देवाः । वयं तुराणां वेगवतां देवानां स्तोमं स्तोत्रं प्रति दधीमहि कुर्वीमहि ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हम वेगवान् देवोंकेलिये स्तोत्र (बनाते हैं) करते हैं ।

६५—प्रपूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ।

(ऋ० ७।५३।२)

सायणभाष्य—हे स्तोतारः, यूयं नव्यसीभिर्नवतराभिर्गीर्भिः स्तुतिभिः ऋतस्य यज्ञस्य सदने स्थानभूते पूर्वजे पितरा पितरौ प्रकृणुध्वं पुरस्कुरुत !

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे स्तोताओ ! तुम हमारे द्वारा निर्मित नवीनमंत्रात्मक स्तुतियोंद्वारा हमारे पूर्वज पितृभूत द्यावा, पृथ्वीको यज्ञस्थानमें (पुरस्कृत) स्थापित करो ।

६६—प्रवां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ।

(ऋ० ७।६१।६)

सायणभाष्य—हे मित्रावरुणौ, वां युवयोर्यज्ञं नमोभिर्नमस्कारैः स्तुतिभिः समुमहयं संपूजयाम्यहम । वा मन्मानि स्तोत्राणि कृतानि मया समूहीकृतानि, इमानीदानीं-क्रियमाणानि ब्रह्म परिवृढानि स्तोत्राणि युवां (जुजुषन्) प्रीणयन्तु ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे मित्रावरुण, तुम्हारी स्तुतिकेलिये नये मंत्रात्मक स्तोत्र बनाये जायें तथा मेरेद्वारा निर्मित और संगृहीत स्तोत्र तुम्हें प्रसन्न करें ।

६७—त्रियेदधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
(ऋ० ७।६६।११)

सायणभाष्य—ये मित्रादयः शरदं संवत्सरं विदधुः अकुर्वन् आत् अनन्तरमेव मासम्, अहः, अहःसाध्यं यज्ञम् आत् अनन्तरमक्तुं रात्रिञ्च, ऋचं मंत्राञ्च ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे मित्रवरुण, और अर्यमा देवोंने वर्ष, मास, दिनरात्रि और यज्ञ तथा मंत्रोंकी रचना की है ।

६८—प्रवां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
(ऋ० ७।७२।४)

सायणभाष्य—वां युवयोः, ब्रह्माणि स्तोत्राणि कारवः स्तोतारः प्रभरन्ते प्रकर्षेण सम्पादयन्ति ।

अर्थ—वसिष्ट ऋषि कहते हैं कि—हे अश्विद्वय, आज स्तोता (कवि लोग) तुम्हारेलिए विशेषरूपसे नये (मंत्रात्मक) स्तोत्रका सम्पादन करेंगे ।

६९—प्रतिस्तोमेभिरुषसं वसिष्ठागीर्भिर्विप्रासः प्रथमा ।
(ऋ० ७।८०।१)

सायणभाष्य—विप्रासो मेधाविनो वसिष्ठाः स्तोमेभिः स्तोतृभिः गीर्भिः स्तुतिभिः प्रथमा इतरयजमानेभ्यः पूर्वभूताः, उषसं प्रत्यबुध्रन् प्रतिबोधयन्ति ।

अर्थ—मेधावी वसिष्ठगणने स्तोत्रात्मक मंत्रोंके द्वारा ऊषादेवीको सभी लोगोंसे पहले जगाया था । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ऊषादेवीके मन्त्रोंकी रचना सर्वप्रथम वसिष्ठगणने की थी ।

७०—अयं सु तुभ्यं वरुणस्वधावोहृदिस्तोमउपश्रित··· ।
(ऋ० ७।८६।८)

सायणभाष्य—हे स्वधावः अन्नवन्वरुण, तुभ्यं त्वदर्थं क्रियमाणः, अयं सूक्तात्मकः स्तोमः स्तोत्रं हृदि त्वदीये हृदये सु सुष्ठु उपश्रित उपगतः ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे अन्नवान् वरुण, तुम्हारे लिए बनाया हुआ मेरा यह सूक्तरूप स्तोत्र तुम्हारे हृदयमें भली भांति निहित हो ।

७१—शुचिं नु स्तोम नवजातमद्य········ ।

(ऋ० ७।९३।१)

सायणभाष्य—हे इन्द्राग्नी, शुचिं शुद्धं नवजातमिदानीमुत्पन्नं स्तोमं मे स्तोत्रम् अद्यास्मिन् काले (जुषेथाम्) सेवेथाम् ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—हे इन्द्र, श्रेष्ठ और नवीनतम मेरा यह मंत्रात्मक स्तोत्र आज सेवन करो ।

७२—तमुज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु········ ।

(ऋ० ७।९७।३)

सायणभाष्य—ज्येष्ठं प्रशस्यतमं सुशेवं सुसुखं ब्रह्मणः- मन्त्रस्य पतिं पालयितारम् एतत्संज्ञं तमु तमेवं, देवं नमसा नमस्कारेण हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिश्च सार्धं गृणीषे स्तुवे । अपिच महि महान्तमिन्द्रं दैव्यः देवार्हः श्लोकः अस्मदीयः स्तावको मन्त्रः सिषक्तु-सेवताम् ।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि—उन ज्येष्ठ और सुन्दर सुखवाले ब्रह्मणस्पति-ब्रह्म अर्थात् मन्त्रके पालककी नमस्कार और

हव्य द्वारा मैं स्तुति करता हूँ। वे देव स्तोताओं द्वारा निर्मित मंत्रोंके राजा हैं। मेरा यह श्लोक अर्थात् मन्त्र उन्हीं इन्द्रकी सेवा करे।

इस मन्त्र में श्री सायणाचार्यने ब्रह्म और श्लोक शब्दके अर्थ मन्त्र किये हैं जो वैदिक आम्नाय के अनुकूल हैं। जिसका वर्णन हम पृथक् प्रकरणमें करेंगे।

७३–ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।

(ऋ०६।७।६)

सायणभाष्य—हे ब्रह्मणस्पते ! वज्रिणे वज्रवते इन्द्राय ब्रह्ममंत्ररूपा सुवृक्तिः स्तुतिः अकारि–कृता।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि ब्रह्मणस्पति तुम्हारी और वज्रधर इन्द्रकेलिये मैंने यह (ब्रह्म) मंत्ररूप सुन्दर स्तुति की है। यहाँपर भी भाष्यकारने 'ब्रह्म'का अर्थ मंत्र ही किया है। इसी शतशः स्थलोंमें 'ब्रह्म' शब्द मन्त्रार्थकेलिये आया है।

७४–ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।

(ऋ० १०३।८)

सायणभाष्य—परिवत्सरीणम्–सांवत्सरिकं गावामयनिकं ब्रह्मस्तुतशस्त्रात्मकं कृण्वन्तः कुर्वन्ति·······।

अर्थ—वसिष्ठ ऋषिने वर्षाकी इच्छासे पर्यजन्यकी स्तुति की थी और मण्डूकोंने उसका सनथंन किया था। मण्डूकों (मेंढको) को समर्थक जानकर उनकी भी स्तुति की है। वे स्तुत्यात्मक मंत्र इस सूक्तमें ग्रथित हुए हैं। इस मंत्रमें वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि सोमसे युक्त और वार्षिक कवि-सम्मेलनमें कवितापाठ करनेवाले मंत्रकार कवियोंकी तरह मेंढक शब्द करते हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व समयमें वार्षिक कवि-सम्मेलन होते थे और उनमें मंत्रकार कवि अपनी अपनी रचना सुनाते थे।

७५–वयमुत्वातदिदर्था इन्द्रत्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।

(ऋ० ८।२।१६)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! त्वायन्तः त्वामात्मन इच्छन्तः सखायः समानख्यानाः वयं तदिदर्थाः यत्तत्त्वद्विषयं स्तोत्रं त्वा त्वां जरामहे–स्तुमहे । कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्नाः अस्मदीयाः पुत्रादयः, उक्थेभिरुक्थैः शस्त्रैः जरन्ते–स्तुवन्ति ।

अर्थ—अंगिरा गोत्रीय प्रियमेध ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! हम तुम्हारे सखा हैं तुम्हारी कामना करते हैं । तुम्हारेलिये स्तोत्र निर्माण करना ही हमारा उद्देश्य है । कण्वगोत्रीय हम लोग अपने मंत्रोंद्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

७६–युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रतिस्तोमा अदृक्षत ।

(ऋ० ५।३)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ, युवाभ्यां स्तोमाः अस्माभिः कृतानि स्तोत्राणि प्रत्यदृक्षत–प्रतिदृश्यताम् ।

अर्थ—कण्वगोत्रीय ब्रह्मा अतिथि ऋषि कहते हैं कि अन्नयुक्त और धनसम्पन्न अश्विद्वय, हमारेद्वारा बनाये गए मंत्रात्मक स्तोत्रों को आप देखें ।

७७–वत्सो वां मधुमद्वचो शंसीत् काव्यः कविः ।

(ऋ० ८।११)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ, काव्यः कवेः पुत्रः कविर्मेधावी–वत्स-ऋषिः वां युवाभ्यां युवयोरर्थं मधुमत् माधुर्योपेतं वचो वचनम् अशंसीत्–शंसितवान् ।

अर्थ—कण्वगोत्रज सर्व्वसाख्य ऋषि कहते हैं कि हे अश्विद्वय, कविके पुत्र और स्वयं कवि वत्स ऋषि ने मधुमत् उक्थ अर्थात् मंत्रका निर्माण किया है। मेरे इस मंत्रात्मक स्तोत्रकी प्रशंसा करो।

७८—उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्।

(ऋ० १२।१४)।

सायणभाष्य—उतापि अदितिरदीना देवमाता, अखंडनीय स्तोता वा स्वराजे स्वयमेव राजमानायेन्द्राय पुरुप्रशस्तं बहुलमुत्कृष्टं स्तोमं स्तोत्रं जीजनत्—अजीजनत्।

अर्थ—कण्वगोत्रीय पर्वत ऋषि कहते हैं कि अदितिने स्वयं शोभमान् इन्द्रकेलिये, रक्षाके निमित्त, अनेकोंकेद्वारा प्रशंसित सत्य-सम्बन्धी स्तोत्रको उत्पन्न किया।

७९—एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।

(ऋ० ४०।१२)

सायणभाष्य—एवैवं याभ्यामिन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नभाकवत् मन्धातृवत् यौवनाश्वमन्धातृवत् चांगिरस्वदं गिरोवच्च नवीयो नवतरमवाचि।

अर्थ—नाभाक ऋषि कहते हैं कि मैंने पिता मान्धाता और अंगिराके समान इन्द्र और अग्निके लिए नवीन मंत्रात्मक स्तुतियोंका पाठ किया।

८०—नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये।

(ऋ० ४१।२)

सायणभाष्य—नाभाकस्य ऋषेः प्रशस्तिभिः स्तोत्रैश्चाभिष्टौमि सिन्धूनां स्पन्दमानानां नदीनाम् उपसमीपे उदये—गच्छति।

अर्थ—नाभाक ऋषि कहते हैं कि योग्य स्तुतिकेद्वारा मैं स्तुति

करता हूँ। अर्थात् नाभाक ऋषिका भाव यह है कि मेरी मंत्ररचना मेरे जैसी ही है अर्थात् वह अनुपम है।

८१–अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना प्रतिसूक्तानि हर्य नः

(ऋ० ४४।२)

सायणभाष्य—हे अग्ने! मे आङ्गिरस्य स्तोमं स्तोत्रं जुषस्व-सेवस्व, अनेन मन्मना मननीयेन स्तोत्रेण वर्धस्व च। नोऽस्माकं सूक्तानि प्रतिहर्य कामय च।

अर्थ—अंगिरा ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि, हमारे इस स्तोत्र का सेवन करो, इस मनोहर स्तोत्रद्वारा वढ़ो तथा हमारे इस सूक्त की कामना करो!

८२–इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा।

(ऋ० ६३।७)

सायणभाष्य—हे अग्ने! इयमिदानीं क्रियमाणा नव्यसी नवतरा-मतिः स्तुतिस्ते तव स्वभूता अस्मदस्मासु अधायि-धृताभूत्, वयं तव स्तुतिं कुर्म इत्यर्थः।

अर्थ—गोपवन ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि! हम स्वरचित मंत्रात्मक स्तोत्रोंद्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं।

८३–ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते……।

(ऋ० ७६।३)

सायणभाष्य—हे गिर्वणः, इन्द्र, ब्रह्म मंत्राणि स्तोत्राणि ते त्वदर्थ-मस्माभिः क्रियन्ते।

अर्थ—पुरुमेध ऋषि कहते हैं कि हे स्तुत्य इन्द्र, हम तुम्हारेलिये यथार्थ स्तोत्रोंका निर्माण करते हैं।

3627

८४–इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
(ऋ० ८४।५)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! यो यजमानः, नवीयसीं नवतरां पुनःपुनः क्रियमाणतया मन्द्रां मदकरीं गिरं स्तुतिलक्षणां वाचं ते त्वदर्थम् अजीजनत्–उदपीपदत् अकार्षीदित्यर्थः ।

अर्थ—आंगिरस तिरश्ची ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! जिस यजमानने नवीन और मदकर मंत्रात्मक स्तुतिका निर्माण किया है उसकी रक्षा करो !

८५–उक्थं यदस्य जायते ।
(ऋ० ४७।३)

सायणभाष्य—यद्यदास्येन्द्रस्य उक्थम्–शस्त्रं जायते–प्रादुर्भवति ।

अर्थ—भृगुपुत्र कवि ऋषि कहते हैं कि जब इन्द्रका शस्त्ररूप (मंत्र) उत्पन्न होता है अर्थात् हम निर्माण करते हैं तभी वे हमारे लिये असीम धन प्रदान करते हैं ।

८६–स प्रत्नवन्नव्यसे विश्वाम् सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
(ऋ० ६।६१।५)

सायणभाष्य—हे सोम ! त्वं प्रत्नवत् पुराण इव स्थितः, नव्यसे-नवीयसे नवतराय तस्मै सूक्ताय शोभनस्तुतिकामाय मह्यम् पथो मार्गान् प्राचः प्राचीनात् कृणुहि ।

अर्थ—हे सोम ! पूर्व समयकी तरह मेरे इस नवीन सूक्तको और मेरे मार्गको पुराने करो ! अर्थात् मेरे इस नवीन सूक्तको पुरस्कृत करो !

८७–गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ।
(ऋ० ६५।१)

सायणभाष्य—अतोऽस्मै सोमाय मतीर्मननीयाः स्तुतीः स्वधाभिः हविर्भिः सह जनयत–स्तोतारो जनयन ।

अर्थ—कविपुत्र प्रस्कण्व ऋषि कहते हैं कि हे स्तोताओ, सोम केलिये हविके साथ मननीय स्तुत्यात्मक मंत्रोंका निर्माण करो।

८८–प्रकाव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।

(ऋ० ६।७।७)

सायणभाष्य—उशनेव एतन्नामक ऋषिरिव काव्यं कविकर्म स्तोत्रं ब्रुवाणः उच्चारयन् देवः स्तोता अयमृषिः वृषगणो नामदेवानामिन्द्रादीनां जनिम जन्मानि प्रविवक्ति-प्रकर्षेण ब्रवीति।

अर्थ—वसिष्ठ गोत्रज वृषगण ऋषि कहते हैं कि उशनानामक कविके समान काव्य (स्तोत्र) करते हुए इस मंत्रके कर्ता ऋषि इन्द्रादि देवोंका जन्म भलीभाँति जानते हैं।

८९–कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणीनना।

(ऋ० ११२।१)

सायणभाष्य—अहं कारुः स्तोमानां कर्तास्मि ततः पुत्रः भिषक् भेषजकृत्, उपलप्रक्षिणी उपलेषु भृष्टवान् यवान् हिनस्ति चूर्णयतीति।

अर्थ—यहाँ आंगिरस शिशु ऋषिने एक कुटुम्बका चित्र खींचा है। उस कुटुम्बका नेता कहता है कि मैं मन्त्रोंका निर्माता हूँ। अर्थात् कवि हूँ और मेरा पुत्र भिषक् (वैद्य) है तथा मेरी पुत्री यवों को कूटनेका काम करती है। हम सब भिन्न भिन्न कार्य करते हुए भी एक स्थान में रहते हैं। इस मन्त्रसे यह ज्ञात होता है, कि उस समय मंत्र रचनेका भी एक पेशा था।

९०–यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां ३ वाचं वदन्।

(ऋ० ११३।६)

सायणभाष्य—हे पवमान पूयमान, सोम, त्वदर्थं छन्दस्यां सप्तच्छन्दोभिः कृतां तेषु भवां वाचं वदन् उच्चारयन्....।

अर्थ—मरीचि कश्यप ऋषि कहते हैं कि हे सोम! तुम्हारेलिये सातों छन्दोंमें बनाई गई यह मन्त्रात्मक स्तुति करते हुए, पत्थरसे तुम्हारा अभिषव करते हुए और अभिषवसे देवोंका आनन्द करते हुए, ब्राह्मण जहाँ पूजित होता हो, वहाँ क्षरित होओ।

६१–ऋषे मंत्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः।

(११४।२)

सायणभाष्य—ऋषिः स्वात्मानं प्रत्याह हे ऋषे! सूक्तद्रष्टः कश्यप, आत्मन् त्वं मंत्रकृतामृषीणां स्तोमैः स्तोत्रैः गिरः स्तुतिरूपा वाच उद्वर्धयन्नुपर्युपरिवर्धन्।

अर्थ—कश्यप ऋषि कहते हैं कि हे कश्यप ऋषि! मंत्र रचयिताओंने जिन स्तुत्यात्मक मन्त्रोंकी रचना की है, उनका आश्रय लेकर अपने वाक्यकी वृद्धि करो!

६२–इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाताः।

(१०।७।२)

सायणभाष्य—हे अग्ने! इमा ईदृश्यः मतयः स्तुतयः तुभ्यं त्वदर्थं जाता-अस्मदादिस्तोतृमुखात् उत्पन्नाः।

अर्थ—त्रित ऋषि कहते हैं कि हे अग्ने! तुम्हारेलिये हमारे द्वारा यह मंत्रात्मक स्तुति उत्पन्न हुई है।

६३–युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः।

(ऋ० १३।१)

सायणभाष्य—वां युवां पूर्व्यं ब्रह्म मंत्रमुच्चार्येति शेषः नमोभिः सोमादिहविर्लक्षणैरन्नैर्युजे-युनज्मि।

अर्थ—विवस्वान् ऋषि शकटद्वयकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे शकटद्वय! प्राचीन समयमें उत्पन्न स्तुत्यात्मक मंत्रका उच्चारण करके सोमादिको लादकर पत्नीशालाके अन्तमें तुम दोनोंको ले जाता हूँ।

इस मंत्रमें आये हुए ब्रह्म शब्दका अर्थ सायणाचार्यने मंत्र किया है।

९४-ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्नेयाहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।
(ऋ० १५।६)

सायणभाष्य—देवत्रा देवान् जेहमानाः क्रमेण गच्छन्तः होत्राविदः यज्ञान् सम्यक्कर्तुं वेदितारः अर्कैरर्चनीयैः स्तोत्रैः स्तोमतष्टासस्तातृषुः तृष्यन्ति। हे अग्ने ! त्वं तैः पितृभिः आ अर्वाङ् आयाहि-आगच्छ.......... कव्यैः कविभिः घर्मसद्भिः यज्ञासादिभिः।

अर्थ—यम-पुत्र शंख ऋषि कहते हैं कि हे अग्नि ! जो पितर, हवन करना जानते थे और अनेक ऋचाओंकी रचना करके मंत्रात्मक स्तोत्र उपस्थित करते थे और जो अपने कर्मके प्रभावसे इस समय देवत्व प्राप्त कर चुके हों, उन्हें लेकर हमारे पास आओ !

९५-स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमंसुदानवे।
(ऋ० २३।६)

सायणभाष्य—हे इन्द्र ! ते तुभ्यं सुदानवे विमदा विमदनामानो वयं स्तोमं-स्तोत्रविशेषम् अजीजनन्-जनितवन्तः कृण्वन्त इत्यर्थः।

अर्थ—विमद ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! विमदवंशियोंने तुम्हें अतीव प्रतिष्ठित जानकर तुम्हारेलिये अनुपम और अतीव विस्तृत मंत्रात्मक स्तुति बनाई है।

९६-एवं वां स्तोममश्विनावकर्मा तक्षाम भृगवो न रथम्।
(ऋ० ३९।१४)

सायणभाष्य—हे अश्विनौ, वामेतं स्तोमं स्तोत्रम् अकर्म-अकुर्म। भृगोवोन भृगव इव रथम् अतक्षाम—वयं स्तोत्रम् संस्कृतवन्तः।

अर्थ—कक्षीवान्‌की पुत्री घोषा कहती है कि जैसे भृगु सन्तानें रथ बनाती हैं, वैसे ही हे अश्विद्वय! हमने तुम्हारेलिये यह मंत्रात्मक स्तोत्र रचा है।

९७—भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्।

(ऋ० ५०।४)

सायणभाष्य—हे इन्द्र! त्वं ब्रह्मणा—अस्मत्कृतेन परिवृढेण स्तोत्रेण महान् भुवः—अभवः।

अर्थ—इन्द्र ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! तुम हमारेद्वारा निर्मित मंत्रात्मक स्तोत्रसे महान् हुए हो।

९८—ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने।
प्रते सुम्नस्य मनसा यथाभुवन्मदे सुतस्य सोम्यान्धसः।

(ऋ० ५०।७)

सायणभाष्य—हे विप्र! ते ये ब्रह्मकृतः—स्तोत्रकर्तारः, सचा संघीभूताः सुतेषु सोमेषु वसूनां वसुनश्च दावने दानाय, ते सुम्नस्य सुखस्य लाभाय.........सोमस्य सोमसंबंधिनोऽन्धसोऽन्नस्य मेद सति।

अर्थ—इन्द्र ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! स्तोत्रोंके निर्माता कवि लोग नाना प्रकारके धनकी इच्छासे एकत्र होकर तुम्हारेलिये सोम यज्ञ करते हैं। वे सोमरूप अन्न प्रस्तुत होनेके पश्चात् जिस समय आमोद आह्लाद आरम्भ होता है, उस समय स्तुतिरूप साधनसे सुख लाभके अधिकारी हों। इससे स्पष्ट विदित होता है, कि बहुतसे कवि लोग सोमरसका पान करके उसके नशेमें मंत्र रचना करते थे।

ऋ० ६।२६।४ में तथा ६।१०१।५ में सोमको वाचस्पति कहा गया है। अथर्ववेद भाष्यकार पं० राजारामजीने अथर्ववेदके प्रथम मन्त्रका भाष्य करते हुए नीचे नोटमें लिखा है कि सोम पिया हुआ, मनुष्यको देवस्तुति (स्तोत्र) बोलनेमें उत्तेजना देता है अतः सोमको वाचस्पति अर्थात् वाक्पति कहा गया है। इससे भी हमारे पूर्वोक्त विचारकी पुष्टि होती है।*

९९—अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्था दवाचि।
(ऋ० ५।४।६)

सायणभाष्य—अध-संप्रति इन्द्राय प्रियं शूषं मन्म-मननीयं स्तोत्रं ब्रह्मकृतः=मंत्रकृतः, बृहदुक्थात् प्रभूतशस्त्रयुक्तात्, एतन्नामकादृपेर्मत्तो वाचि-उक्तमभूत्।

अर्थ—बृहदुक्थ ऋषि कहते हैं कि इन्द्रकेलिये मंत्रोंके कर्ता बृहदुक्थ ऋषिने अर्थात् मैंने प्रिय और बलका स्तोत्र किया था।

१००—इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पितानऋतप्रज्ञातां बृहतीमविन्दत्। तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्यो यास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्॥
(ऋ० ६७।१)

सायणभाष्य—धियं सप्तशीर्ष्णीं सप्तशिरस्कां यद्वा सप्तछन्दोमयशिरस्काम्—ऋतप्रजाताम्—यज्ञार्थमुत्पन्नां बृहतीमिमां तन्वं नोऽस्माकं पितां गिरा अविन्दत्-लब्धवान्....

*पं० सातवलेकरजीने (ऋग्वेदका सुबोध भाष्य) के भाग ५ पृष्ठ २२ पर लिखा है कि (परियत् कविः काव्याः। ऋ० ९।९४।२) यह सोम काव्यको स्फूर्ति देता है। इस रसको पीकर कविकी स्फूर्ति बढ़ती है और काव्य करते हैं। यह सोम कविको स्फूर्ति देनेके कारण कवि ही है।

इन्द्राय उक्थं स्तोत्रं शंसन् अयमयास्यो नाम ऋषिः पूर्वमेवं नोऽस्माकं पिता, अकार्षीत् ।

अर्थ—अयास्य ऋषि कहते हैं कि अंगिरा आदि हमारे पितरों ने यज्ञकेलिये सात छन्दोंवाले विशाल स्तोत्रकी रचना की थी। संसार के हितैषी अयास्य ऋषिने इन्द्रकी प्रशंसा करते हुए यह स्तोत्र बनाया ।

१०१—अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचा मा सुवृक्तिम् ।

(ऋ० ८।७)

सायणभाष्य—अग्नये ब्रह्म=स्तोत्रम्, ऋभवो मेधाविनः, ततक्षुः= अकुर्वन्……।

अर्थ—वैश्वानर ऋषि कहते हैं कि अग्निकेलिये ऋभुवोंने मंत्रात्मक स्तोत्र बनाया है। हमने भी महान अग्निकी मंत्रात्मक स्तुति की है ।

१०२—क्ष्मयादिवो असमं ब्रह्मनव्यम् ।

(ऋ० ८६।३)

सायणभाष्य—क्ष्मया दिवो दिवः पृथिव्याश्चासमं नव्यं नवतरमन्यै-रकृतपूर्वं ब्रह्म=स्तोत्रमस्मा इन्द्रायार्चोच्चारय ।

अर्थ—विश्वामित्रके पुत्र रेणु ऋषि कहते हैं कि हे स्तोता, मेरे साथ मिलकर उन इन्द्रके लिए पहले दूसरोंसे न बनाया गया हो, ऐसे नवीन स्तोत्रको करो! जो निकृष्ट न हो तथा जो द्यावा पृथिवीमें अनुपम हो ।

१०३—इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसो वोचमस्मा उशते शृणोतु नः ।

(ऋ० ६१।१३)

सायणभाष्य—प्रत्नाय उशते अस्मै अग्नये नवीयसीं नवतराम्=अन्यै-
रकृतपूर्वाम् सुष्टुतिं वोचेयमहं वक्ष्यामि ... ।

अर्थ—वीतहव्यके पुत्र अरुण ऋषि कहते हैं कि स्तोत्राभिलाषी उन प्राचीन अग्निकेलिये मैं अत्यन्त नूतन व सुन्दर मंत्रात्मक स्तोत्र कहता हूँ, वे सुनो।

१०४–हृदा मतिं जनये चारु मग्नये।

(ऋ० ६।१।१४)

सायणभाष्य—हृदा-हृदयेन चारुं कल्याणीं मतिम्=स्तुतिम्, जनये
जनयामि-उत्पादयामि ।

अर्थ—उन्हीं अग्निकेलिये मैं हृदयसे कल्याणकारी मंत्रात्मक स्तुति बनाता हूँ।

१०५—एतं मे स्तोमं तनान सूर्ये......।

(ऋ० ६।३।१२)

सायणभाष्य—मे मदीयमेतमिमं स्तोमं स्तोत्रं वर्धन्त-ऋत्विजो
वर्धयन्तु.......। अश्वम्-अश्वार्हं रथं तष्टेव संस्कृतं
रथं प्रेरयति तद्वत् ।

अर्थ—पृथुपुत्र ताम्ब ऋषि कहते हैं कि मेरे इस स्तोत्रकी स्तोता लोग वृद्धि करें। जैसे बढ़ई अश्वके खींचने योग्य सुदृढ़ रथ बनाता है वैसे ही मैंने इसे बनाया है।

मुखसे मंत्र रचना—

१०६—अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि
रत्नधातमः।

(ऋ० १।२०।१)

सायणभाष्य—जन्मने देवाय अयं स्तोमः स्तोत्रविशेषः, विप्रेभिः
मेधाविभिर्ऋत्विग्भिरासया स्वकीयेनास्येन, अकारि
निष्पादितः ।

अर्थ—मेधातिथि काण्व ऋषि कहते हैं कि रत्नोंके देनेवाले इस मंत्रात्मक स्तोत्रको ब्राह्मणोंने ऋभवोंकेलिए बनाया है।

१०७—मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।

(ऋ० ३८।१४)

सायणभाष्य—हे ऋत्विक्समूह ! आस्ये—स्वकीये मुखे श्लोकं—स्तोत्रं मिमीहि-निर्मितं कुरु। तं च श्लोकं ततनः विस्तारय, पर्जन्य इव। उक्थं शस्त्रयोग्यं गायत्रं गायत्रीछन्दस्कं सूक्तं गाय-पठ।

अर्थ—कण्वोघोर ऋषि कहते हैं कि हे ऋत्विग्गण ! तुम लोग अपने मुखसे मंत्रात्मक स्तोत्रकी रचना करो ! मेघकी तरह उस स्तोत्रको विस्तृत करो ! तथा गायत्री छन्दसे युक्त मंत्रोंका गायन करो !

मूल मंत्रमें "आस्ये" सप्तम्यन्त पद है जिसका अर्थ पं० रामगोविन्द त्रिवेदीने अपने ऋग्वेदके अनुवादमें जोकि उन्होंने सायणाचार्यके अनुकूल बनाया है, उसमें आप लिखते हैं कि—"ऋत्विग्गण ! अपने मुंहसे स्तोत्र बनाओ" इसी आधारपर हमने भी सप्तम्यन्त पदके स्थानपर तृतीयान्त पदका अर्थ किया है। यह व्य प्रत्यय वैदिक व्याकरणके अनुकूल भी है। तथा आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० सातवलेकरजीने अपने 'ऋग्वेदका सुबोध भाष्य' नामक ग्रन्थके भाग ५ में इसी मंत्रका अर्थ करते हुए लिखा है कि '-मुखमें ही प्रथम श्लोकको (अक्षरोंके प्रमाणसे) बनाओ, उसका पर्यजन्यके समान फैलाव करो और गायत्रीछन्दमें रचे काव्यका गायन करो।" इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय यज्ञोंमें कविसम्मेलन होता था और कवि लोग अपनी अपनी रचनाएँ सुनाते थे।

वेदोंमें ऋषियोंके नाम

पं० सातवलेकरजी और वेद—

१—आर्य-समाजके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्रीमान् पं० सातवलेकरजीने "ऋग्वेदका सुवोध भाष्य" प्रारम्भ किया है, उसके प्रथम भागमें ही—इन्द्रमिद्गाथिनः ७।१।१० का भाष्य करते हुए लिखते हैं कि—"इस सूक्तके प्रारम्भमें 'इन्द्रमिद्गाथिनो बृहत्' यह चरण है। इसमें "गाथिनः" पद है, वह सूक्तके कविका सूचक है। इस सूक्तका ऋषि 'मधुच्छन्दा' है, यह ऋषि (वैश्वामित्रः) विश्वामित्रका पुत्र है और विश्वामित्र (गाथिनः) गाथी या गाधि कुलमें उत्पन्न हुआ है, इसलिए मधुच्छन्दा भी 'गाथिनः' अर्थात् गाथि कुलका ही है। 'विश्वामित्रो गाथिनः' के सूक्त तीसरे मण्डलमें आरम्भसे अन्त तक हैं। बीचमें विश्वामित्र पुत्रोंके कुछ सूक्त हैं। पाठक इस दृष्टिसे तृतीय मण्डलके ऋषि देखें।"

२—मधुच्छन्दा ऋषिके पश्चात् ऋग्वेदमें मेधातिथि ऋषिके मन्त्र आते हैं। मेधातिथि कण्वगोत्रमें उत्पन्न ऋषि हैं। इस विषय में सुवोध भाष्यके भाग २ में पं० जी लिखते हैं कि—"इस सूक्तके दो मंत्रोंमें 'कण्वाः, कण्वासः' यह पद है। पूर्व सूक्तमें 'नवीयसा गायत्रेण स्तवानः।' (ऋ० १।१२।११) नये गायत्री छन्दके छन्दसे अग्निकी स्तुति की जाती है। और इस सूक्तमें—

कण्वाः त्वा आ अहूषत। (२)

कण्वासः त्वां ईलते। (५)

'कण्व तेरी स्तुति करते हैं' ऐसा कहा है। इस सूक्तका ऋषि 'मेधातिथिः काण्वः' है। अर्थात् यह कण्व गोत्रमें उत्पन्न है, अतः इसका गोत्रज नाम 'कण्व' है। हमारे गोत्रज सब कण्व ऋषि अग्निकी स्तुति करते आये हैं, ऐसा यहाँ इसका आशय दीखता है। 'कण्व' पद 'कण्' धातुसे बनता है। 'कण्' धातुका अर्थ कराहना है। जो कराहता हुआ चिल्लाता है वह कण्व है। जो दुःखसे

कराहता है वह कण्व है। यह अर्थ लेकर 'कण्वाः त्वा आ अहूषत। कण्वासः त्वां ईलते'। इनका अर्थ दुखसे त्रस्त हुए भक्त लोग तेरी स्तुति या उपासना करते हैं, ऐसा भी होना सम्भव है। पर पूर्व सूक्तमें जो नया 'गायत्री छन्दका सूक्त' करनेका उल्लेख है उसके साथ इसका सम्बन्ध देखनेसे यहाँ कण्व पद गोत्रवाचक प्रतीत होता है।" पृ० १६।

३—दीर्घतमाका पुत्र उशिक, और उशिकका पुत्र कक्षीवान् है। ऋग्वेद में मं० १।११६ सू० से १२५ तकके १४६ मंत्रोंका यह ऋषि है। सू० १।१२६ के प्रथम ५ मंत्र इसीके हैं तथा नवम मंडलमें ७४ वें सूक्त के ६ मंत्र इसीके हैं। अर्थात् १४६+५+९=१६० मंत्र ऋग्वेद में इसके हैं। मेधातिथिके इस सूक्तमें (कक्षीवन्तं य औशिजः) औशिजकक्षीवान् ऋषिकी उन्नति होनेका वर्णन है। अतः मेधातिथि के पूर्वका यह कक्षीवान् होना उचित है।" भा० २ पृ० २८

४—इस सूक्त (मं० ८।१) के ऋषि निम्नलिखित हैं—

मंत्र १-२ घोरऋषिका पुत्र प्रगाथ ऋषि, जो कण्वका दत्तक पुत्र बन गया था।

मंत्र ३।२९ कण्व गोत्रमें उत्पन्न मेधातिथि और मेध्यातिथि।

मंत्र ३०-३३ सायोगीका पुत्र आसंग राजपुत्र।

मंत्र ३४ आंगिरा ऋषिकी कन्या आसंगकी भार्या शश्वती स्त्री ऋषिका।

'मेध्यातिथि ऋषिका नाम मं० ३० में आया है।

'सायोगि आसंग' का नाम मं० ३३ में आया है। केवल—

'आसंग' का नाम मं० ३२ में भी है।

'शाश्वती' का नाम मन्त्र ३४ में भी है।

'काण्व' का नाम मंत्र ८ में है। पृ० ५२

५—"इस सूक्त (मं० ८।२) में निम्नलिखित ऋषिनाम आये हैं-
कण्वाः (मं० १६), प्रियमेधाः (मं० ३७), कण्वासः (मं० ३८),

काण्वः मेध्यातिथिः (मं० ४०), ये ऋषिवाचक पद मंत्रोंमें आये हैं और ये ही इस सूक्तके ऋषि हैं। विभिन्दुः' (मं० ४१) नाम एक राजाका इसमें आया है, जिसने प्रियमेधको दिए दानका उल्लेख है।" पृ० ६० ।

६—"इस सूक्त (मं० ८।३) में निम्नलिखित ऋषिनाम आये हैं-

कण्वाः, भृगवः, प्रियमेधासः (मं० १६), कौरयाण पाकस्थामा (मं० २२-२४); भृगुः प्रस्कण्वः (मं० ६), ऋभुः (मं० ८) इनमें काण्व गोत्रका इस सूक्तका ऋषि भी है, तथा कुरुयाण-पुत्र पाकस्थामा राजाके दानका वर्णन (मं० २१-२२) में है। पौर (पुरु राजाका पुत्र) रुशम, श्यावक, कृप (मं० १२) ये नाम भी इस सूक्त में आये हैं।" पृ० ६५ ।

७—" 'प्रियमेध' यह एक ऋषि-नाम इस सूक्त (मं० ८ सू० ३२) के ३० वें मंत्रमें आया है। यह आंगिरस गोत्र में उत्पन्न ऋषि हैं। इसके मन्त्र ऋचा ८।२ (मं० ४०), ८।६८ (मं० १६), ८।६६ (मं० १८), ८।८७ (मं० ६), ६।२८ (मं० ६) में है (कुल मंत्र ८६) हैं।" "इस सूक्त के १७ वें मंत्रमें 'पन्ये ब्रह्म कृणोत' अर्थात् 'प्रशंसनीय (देवता) का मन्त्र या स्तोत्र करो', ऐसा कहा है। वेदके 'मंत्रपति मंत्रकृत् और मंत्रद्रष्टा' ऋषि होते हैं। इनमेंसे 'मन्त्रकृत्' ऋषियोंका यह यह मंत्र स्पष्टीकरण करता है।" पृ० ६६ ।

८—"ऋग्वेदके सप्तम अनुवाकमें हिरण्यस्तूपके ७१ मंत्र हैं, नवम मण्डलमें २० हैं और दशम मण्डलमें उसके पुत्र अर्चन् ऋषि के ५ मंत्र हैं। सब मिलकर ६६ मंत्र इसके दर्शनमें हैं। हिरण्यस्तूप का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकार है:—

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमिति सूक्तं शंसति । तद्वा एतत्प्रिय इन्द्रस्य सूक्तं निष्कैवल्यं हैरण्यस्तूपम्, एतेन वै सूक्तेन हिरण्यस्तूप आङ्गिरस इन्द्रस्य प्रियं धाम उपागच्छत्, स परमं लोकमजयत् ।" (ऐ० ब्रा० ३।२४)

अग्निर्देवतानां, हिरण्यस्तूप ऋषीणा, बृहती छन्दासां० (श० ब्रा० १।६।४।२) 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि' यह सूक्त (ऋ० १।३२) का है। यह इन्द्रका बड़ा प्रिय काव्य है, यह आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हिरण्यस्तूप ऋषिका है। इस सूक्तके पाठसे उसने इन्द्रका प्रिय धाम प्राप्त किया, और उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया। इस प्रकार हिरण्यस्तूप ऋषिका यह (ऋ० १।३२ वाँ) सूक्त है ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा है। शतपथमें ऋषियोंमें हिरण्यस्तूप ऋषि प्रशंसित हुआ है, ऐसा कहा है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें ये ही इस ऋषिके नामके उल्लेख हैं।

निम्नाङ्कित मन्त्रमें इस ऋषिका नाम आता है—

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वांगिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रतिजागराहम्।
(ऋ० १०।१४६।५)

'(मेरे पिता) आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुए हिरण्यस्तूप ऋषिने सविता देवका जैसा काव्य गान किया था वैसा ही मैं (उसका पुत्र) अर्चन् ऋषि आपकी उपासना करता हूँ'। यहाँ अर्चन् ऋषिने अपना नाम जैसा कहा है वैसा ही अपने पिता तथा गोत्रका नाम भी कहा है।" भा० ४ पृ० ३।

६—कण्व ऋषिके मन्त्र ऋग्वेदमें १०१ हैं, इन मन्त्रोंमें ऋषियों तथा राजाओंके नामोंका उल्लेख निम्न प्रकार है—

"(ऋ० १।३६) के मंत्र १० में 'मेध्यातिथिः काण्वः' तथा मंत्र ११ और १७ में भी मेध्यातिथिके नाम हैं। इसके अतिरिक्त धन-स्पृत (मं० १०), उपस्तुत (मं० १० और १७), तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति (मं० १८) ये नाम भी इसी सूक्तमें हैं। ये नाम कण्वके सूक्तमें हैं। अब प्रस्कण्वके सूक्तोंमें ऋषिनाम देखिये-

ऋ० १।४५ के मन्त्र ३ में प्रस्कण्वका नाम आया है । इसके अतिरिक्त प्रियमेध, अत्रि, विरूप, अंगिरा ये नाम भी इसी मंत्रमें हैं। 'प्रियमेध' का नाम पुनः मंत्र ४ में आया है। इसी सूक्तके ५ वें मंत्रमें ऋषिने अपने गोत्रका नाम 'कण्व' कहा है।

ऋ० १।४६ के नवम मन्त्रमें 'कण्वासः' पद है, यह इसका गोत्रनाम है । ऋ० १।४६ के मन्त्रमें 'कण्वासः' पद है, यही पद मंत्र ४, ५, १० में भी है।

ऋ० १।४६ के मन्त्र ४ में 'कण्वाः' पद है; यह ऋषिका गोत्र-नाम है। ऋ० ८।४६ के मन्त्र ५ और १३ में 'कण्व' नाम है। इसी सूक्तके मंत्र ६ और १० में 'मेध्यातिथि, नीपातिथि, कण्व, त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, ऋजिश्वा' ये नाम हैं।

इस प्रकार कण्व और प्रस्कण्व तथा अन्य ऋषियोंके तथा राजाओंके नाम इन सूक्तोंमें आये हैं। भाग ५ पृ० ४।

१०—तथा च—कण्व शब्दको नीलकण्ठ भट्ट 'सुखमय' इस अर्थसे ग्रहण करते हैं। बृहद्देवतामें कण्वके विषयमें जो उल्लेख पाया जाता है, उसमें लिखा है कि, घोरनामा ऋषिके कण्व और प्रगाथ ये दो पुत्र थे। जबकि ये दोनों पुत्र अरण्यमें रहा करते थे, तब प्रगाथके द्वारा कण्वपत्नीके सम्बन्धमें कुछ अविनयपूर्ण व्यवहार हुआ। कण्व प्रगाथको शाप देनेकेलिये उद्यत हुए । तब प्रगाथने उनकी क्षमा मांगकर कण्व और कण्वपत्नी इन दोनोंको माता-पिता मान लिया। आगे चलकर कण्व तथा उनके वंशज इन्होंने मिलकर ऋग्वेदके अष्टम मण्डलकी रचना की।

सम्भव है कि कण्वका कुल यदु और तुर्वश इनका पौरोहित्य करता होगा। ऋ०में कण्वकुलोत्पन्न देवातिथि इन्द्रकी प्रार्थना करता हुआ दिखाई देता है कि 'तेरी कृपासे यदु और तुर्वश ये सुखी हुए मुझे दिखाई दें।'
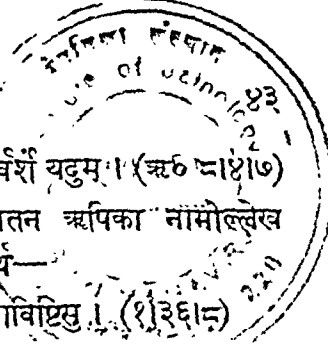
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्। (ऋ० ८।४।७)

कई ग्रन्थोंमें तथा ऋग्वेदमें इस पुरातन ऋषिका नामोल्लेख किया हुआ पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु। (१।३६।८)

यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाम्। (अथर्व ७।१५।१)

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः। (१८।३।१५)

यामस्य कण्वोऽदुहत्प्रपीनाम्। (वा० य० १७।७४)

कण्वो हैतान्नु प्रैषान्ददर्श। (सांख्यायन ब्रा० २८।८) पृ० ४।

कण्व स्वयं आंगिरस गोत्रोत्पन्न है। इस कुलकी उत्पत्ति पुरु वंशसे हुई थी। कुछ स्थानोंमें ऐसा उल्लेख है कि कण्व मतिनारपुर अप्रतिरथसे पैदा हुए। परन्तु एक स्थानपर कण्वको अजमीढपुत्र बताया है। इस प्रकार अनेक कण्वोंका वर्णन वैदिक वाङ्मयमें उपलब्ध होता है। किन्तु मन्त्र-रचयिता प्रथम कण्व ऋषि हैं। जिनका मन्त्रोंमें उल्लेख है।

११—"इस सूक्त (मं० १ सू० ४५) के प्रस्कण्व ऋषि हैं। इस का नाम इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें है। (प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि। मं० ३) प्रस्कण्व ऋषिकी प्रार्थना सुनो, ऐसा अग्निसे कहा है। इस मन्त्रमें प्रस्कण्वके पूर्व समयके चार ऋषियोंका उल्लेख है। प्रियमेधा, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा। इन ऋषियोंकी प्रार्थना जैसी सुनी थी, वैसी प्रभु मेरी (प्रस्कण्वकी) प्रार्थना सुनें, यह मन्त्रका आशय है।

प्रियमेध (आंगिरसः) ऋ० ८।२।१—(४०), ६८—(१६), ६९—(१८), ८७—(६), ९।२८ (६) कुल मंत्र ८६।

अत्रिः (भौमः) ऋ० ५।२७—(६), ३७—४३—(५६), ७६—(५), ७७—(५), ८३—८६—(२७), ९।६७।१०—१२ (३), ८६।४१—४५ (५) कुल मन्त्र १०३।

विरूप (आंगिरसः) ८।४३-(३३), ४४-(३०), ७५-(१६) कुल मन्त्र ७९।

अङ्गिराः—अङ्गिरा ऋषिके मन्त्र अथर्ववेदमें बहुत हैं, इसलिये अथर्ववेदका नाम 'अङ्गिरा वेदः' ऐसा हुआ। ये चार ऋषि प्रस्कण्वके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्योंकि 'जैसी इनकी प्रार्थना सुनी गई थी, वैसी मेरी सुनो, ऐसा इस मन्त्रमें कहा है। मं० ४ में 'प्रयमेध' का नाम पुनः आया है। ५ वें मन्त्रमें प्रस्कण्व ऋषि अपना गोत्र कहता है। (कण्वस्य सूनवः' मं० ५) कण्वके पुत्र जिन मन्त्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करते थे वे ही ये मन्त्र हैं। वैसी प्रार्थना हम करते हैं, इसलिए इनको सुनो। पृ० ४१।

१२—"इस सूक्त (मं० १ सू० ४७) में सूक्तकर्ता ऋषिका और उसके पूर्वजोंका वर्णन निम्न प्रकार आया है—

(१) कण्वासः वां ब्रह्म कृण्वन्ति (मं० २)-कण्वपुत्र या कण्व-गोत्रमें उत्पन्न ऋषि तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। यहाँ (कृण्वन्ति) 'करते हैं' पद है।

(२) सुतसोमाः कण्वासः युवां हवन्ते (मं० ४)-सोमरस निकालकर कण्वगोत्रके ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

(३) कण्वानां सदसि सोमं पपथुः (मं० १०)—कण्वोंकी सभा में सोमपान तुम दोनोंने किया था।

(४) युवां कण्वं प्रावतम् (मं० ५) तुम दोनोंने कण्वकी सुरक्षा की थी। इस प्रकार कण्व ऋषिका और कण्वके गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंका उल्लेख स सूक्तमें है।" पृ० ४७।

१३—(मं० १ सू० ४८) में "त्वां (उषसं) पूर्वे ऋषय जुहुरे (मं० १४)-प्राचीन ऋषियोंने उषाका काव्य किया था। वैसा ही काव्य हम कर रहे हैं, अतः—

नः स्तोमान् अभिगृणीहि (मं० १४)–हमारे स्तोत्रोंको भी सुनो और उनकी प्रशंसा करो। यहाँ जैसा पूर्व ऋषियोंने उषा देवताका काव्य किया था वैसा हम नूतन ऋषि भी स्तोत्र कर रहे हैं, ऐसा कहा है।" पृ० ५१।

१४—इस सूक्त (मं० १ सू० ५१) के मन्त्र ५ और १३ में 'कण्व' का नाम आया है। यह इसी सूक्तके ऋषि प्रस्कण्वका पिता या गोत्र प्रवर्तक है। कण्व ऋषिके मंत्र इसी ग्रंथके प्रारम्भमें दिये हैं।

'मेध्यातिथि और नीपातिथि' ये भी कण्वके गोत्रमें उत्पन्न ऋषि हैं। मेध्यातिथि के मन्त्र ऋ० ८।१।३।२६ (मं० २७), ८।३ में मन्त्र २४ हैं, ८।३३ में मन्त्र १६ हैं, (सब) मिलकर ७० मन्त्र हुए।

नीपातिथिके मन्त्र ऋ० ८।३४।१-१५ कुल मन्त्र १५ हैं। इसके अतिरिक्त त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, ऋजिश्वा ये नाम इस सूक्तके १० वें मन्त्रमें हैं। इनके ऋग्वेदमें ये स्थान हैं—

ऋजिश्वा—भारद्वाजः—ऋ० ६।४६-५२ (मं० ६३), ६।६८ (मं० १२), ६।१०८।६, ७ (मं० २) कुल मन्त्र ७७ हैं।

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः—ऋ० ४।४२ (मं० १०), ५।२७ (मं० ६), ६।१८० (मं० १२) कुल मन्त्र २८ हैं। पक्थ, दशव्रज, गोशर्यके मंत्र मिलते नहीं हैं। ये ऋषि प्रस्कण्व ऋषिके पूर्वके प्रतीत होते हैं।" पृ० ५६।

१५—"गौतम ऋषिका पुत्र नोधानामक ऋषि है। ऋग्वेद मं० १ के ५८ से सूक्त ६३ तक इसके सूक्त हैं। तथा ऋ० के मं० ८ का ८८ वाँ सूक्त और नवम मण्डलमें ६६ वें का सूक्त इसी ऋषिका है। अथर्ववेदमें भी इस ऋषिके मंत्र हैं।" इसके विषयमें पं० सातवलेकरजी अपने सुबोध भाष्यके ७ वें भागमें लिखते हैं कि—

"ऋ० ६।८८ सूक्तके प्रथम दो मन्त्र अथर्ववेदमें दो वार आये हैं। अथर्ववेदके नोधाके मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं, इसलिये उनका पृथक् विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अथर्व (२०।३५)

का ऋषि ऋग्वेदमें नोधा गौतम है, अथर्व—वृहत्सर्वानुक्रमणीमें इसका ऋषि नोधा लिखा है। पर विकल्पसे भरद्वाज भी कहा है, वह नितान्त अशुद्ध है। अथर्व—सर्वानुक्रमणीमें इस प्रकारकी भूलें बहुत हैं। इसीलिये यह सूक्त भरद्वाजका नहीं है, नोधाका ही है। अथर्ववेदमें नोधा ऋषिका उल्लेख निम्नाङ्कित मन्त्रोंमें है—

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च ॥ २६ ॥
श्यैतस्य च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च ॥ २७ ॥
श्येतस्य च वै स नौधसस्य सप्तर्षीणाञ्च ॥ २८ ॥ (१५।२६-२८)

'नौधस्' का यह उल्लेख स्पष्ट है, ऐतरेय ब्रा० में इसका नाम दो-तीन बार आया है—

बृहता साविमां नौधसे नैवे य ममूं जिन्वति। (ऐ० ब्रा० ४।२७)
अस्मा इदु प्रतवसे तुरायेति नोधाः,
त एते प्रातः सवने पलहस्तोत्रियांच्छस्त्वा,
माध्यंदिनेऽहीन सूक्तानि शंसति। (ऐ० ब्रा० ६।१८)
नौधसञ्च कालेयं चानूच्ये (ऐ० ब्रा० ८।१२, १७)
'नौधस्' नामक साम गान है, जो नोधा ऋषिका गाया है।

'अस्मा इदु' (ऋ० १।६१) यह सूक्त नोधा ऋषिका है। नोधा के मन्त्र राज्याभिषेकके समय बोले जाते हैं। यह ऐतरेय ब्रा० में नोधा ऋषिके विषयमें कहा है। ऋग्वेदमें इस ऋषि-(नोधा) का नाम निम्नलिखित मन्त्रोंमें आया है—

सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः। (ऋ० १।६१।१४)
सनायते गोतम इन्द्र नव्यम,
सुनीथाय नः शवसान नोधाः। (ऋ० १।६२।१३)
नोधः सुवृक्ति प्रभरा मरुद्भ्यः। (ऋ० १।६४।१)
नोधा इवाविरकृत प्रियाणि। (ऋ० १।१२४।४)
इन मन्त्रोंमें 'नोधा' ऋषिका नाम आया है और उसका गोत्र

भी 'गोतम' कहा है। ये मन्त्र यहाँ दिये हैं। नोधाके विषयमें इतना ही पता लगता है। पञ्चविंश ब्राह्मणमें भी थोड़ा सा उल्लेख आया है।" तथा "मं० १ सू० ६० के मन्त्र ७ में (वयं गोतमाः सः) हम गोतम गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषिगण ऐसा अपना गोत्र, नाम 'नोधा' ऋषि बता रहा है।

ऋ० १।५८ में 'भृगवः' पद भृगु गोत्रके ऋषियोंका वाचक दीखता है। ऋ० १।५९ में 'भरद्वाज' पद है। 'शातवनेय' पद है। शातवनेय, यह राजा भरद्वाज ऋषिका आश्रयदाता प्रतीत होता है। ऋषि भरद्वाज शातवनेयका पुरोहित होगा।" पृ० १५।

१६—नोधा ऋषिके पश्चात् ऋ० मं० १ के सू० ६५ से ७३ तक तथा मण्डल ९ का सू० ९७ पराशर ऋषिका है।

पराशर ऋषिके मन्त्रोंमें अग्नि देवताके ही मन्त्र विशेषतया हैं। अग्नि और सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मन्त्र नहीं हैं। अथर्ववेदमें पराशर ऋषिके मन्त्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद, निघन्टु ४।३ में पद नामोंमें लिखा है। इसका विवरण श्री यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं—

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ० ७।१८।२१) इत्यपि निगमो भवति। इन्द्रोऽपि पराशर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरः' (ऋ० ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति।

निरुक्त (६।६।३०। (१२१)) अत्यन्त वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बड़ा दमन करता है। इस विषयमें दो मन्त्र देखने योग्य हैं—

प्रये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः।

न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्॥

(ऋ० ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभी दु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतिरक्षसः ॥
(ऋ० ७।१०४।२१, अथ० ८।४।२१)

'पराशर' शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति करके यज्ञगृहमें बड़े आनन्दित होरहे हैं । ये तीनों तेरी मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं । सब विद्वानोंकेलिये शुभदायक दिनोंका ही उदय होजावे ।' इस मन्त्रमें पराशर, शतयातु और वसिष्ठ इन तीनों का नाम है और यह मंत्र वसिष्ठका है । ऊपर दिया हुआ दूसरा मन्त्र भी वसिष्ठ ऋषिका ही है—"इन्द्र दुष्ट शत्रुओंका पूर्णनाश करता है ये शत्रु यज्ञके हविका नाश करते थे । इन्द्रने इनका नाश ऐसा किया, जैसे कुल्हाड़ेसे वनका नाश होता है । अथवा मिट्टीके वर्तन जैसे तोड़े जा सकते हैं ।" यहाँ इन्द्रका विशेषण 'परा-शर' (दूर करके नाशकर्ता) इस अर्थका आया है । पूर्व मन्त्रमें यह नाम ऋषिका नाम है, और यहाँपर यह पद इन्द्रका सामर्थ्य वतला रहा है । ऋग्वेदमें इन दो ही मन्त्रोंमें 'पराशर' पद आया है ।"

भाग ८ पृ० ३ ।

आगे पृ० २३ पर श्री पं० जी लिखते हैं कि—

"पराशर ऋषिके कुल मन्त्र १०५ ऋग्वेदमें हैं । अन्य वेदोंमें इस ऋषिके मन्त्र नहीं हैं । इन १०५ मन्त्रोंमें ६१ मन्त्र अग्नि देवताके हैं और शेष १४ मन्त्र सोम देवताके हैं । इसलिए प्रथम अग्नि-देवताके मन्त्रोंका मनन करते हैं । पराशरके इस मंत्रसंग्रह-रूप काव्यमें उपमा, रूपक, तुलना आदिकी इतनी भरमार है, कि कई मन्त्रोंमें तो प्रत्येकमें चार चार उपमाएँ हैं, और एकसे एक अधिक रोचक हैं । इतनी उपमाएँ किसी अन्य ऋषिके काव्यमें नहीं हैं ।"

१७—ऋग्वेदमें गोतम ऋषिका स्थान वहुत ऊँचा है । रघुगण

ऋषिका यह पुत्र है । ऋ० मं० १ सू० ७४ से ९३ तक, २० सूक्त इनके निर्मित हैं। तथा मं० ९ के ६७ सू० के ३ मन्त्र इनके हैं और ऋ० मण्डल १० का १३७ वें सूक्तका मन्त्र ३ भी इन्हींका है। गोतम ऋषिके दो पुत्र मन्त्र निर्माता ऋषि हुए हैं । १—नोधा, जिसका वर्णन किया जा चुका है । २—वामदेव है। वामदेवका ऋग्वेदका चतुर्थ मण्डल पूरा निर्मित किया हुआ है । यह चतुर्थ मण्डल ५८९ मन्त्रोंका है। इसमें वामदेव ऋषिके मन्त्र ५६६ हैं। २३ मन्त्र दूसरे ऋषियोंके भी हैं । इसकेलिये पं० सातवलेकरजी लिखते हैं कि—

"गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम कहाँ तक आया है सो अब देखिये !"

नोधा ऋषिके मन्त्रोंमें—

तं त्वा वयं पतिमग्नेरयीणां प्रशंसामो मतिभिर्गोतमासः ।

(ऋ० १।६०।५)

इन्द्र, ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।

(ऋ० १।६३।९, अथ० २०।३६।९)

सनायते गोतम इन्द्रनव्यम्, ब्रम्वाग्नि० । (ऋ० १।६२।१३)

अतक्षद् ब्रह्म-हरियोजनाय। (ऋ० १।६२।१३)

गोतम ऋषिके मन्त्रोंमें—

अकारि त इन्द्र गोतमेभि एवाग्नि गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः । (ऋ० १।७७।५)

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ॥१॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ॥२॥ (ऋ० १।७८)

प्रपूतास्तिग्म शोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व० ॥

(ऋ० १।७९।१०)

सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे । (ऋ० १।८५।११)

ब्रह्मकृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः० ।

सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ॥ (ऋ० १ ८८।४-५)

दिवः स्तवे दुहिता गोमतेभिः । (ऋ० १।९२।७)

कक्षीवान् ऋषिके मन्त्रोंमें—

क्षरन्नपो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥

(ऋ० १।११६।९)

अगस्त्यो (मैत्रावरुणिः) ऋषिके मन्त्रोंमें—

युवां गोतमः पुरुमीलहो अत्रिः दस्रा हवते अवसे० ।

(ऋ० १।८३।५)

कुल उनतीस मन्त्र गोतम ऋषिके ऋग्वेदसे अथर्ववेदमें लिये हैं इनमें १-५७।१-६ ये छः मन्त्र ऋग्वेदमें सव्य ऋषिके हैं, जो अथर्ववेदमें गोतमके नामपर लगाये दीखते हैं । यह अथर्वसर्वानुक्रमकी अशुद्धि है, इनका ऋषि ऋग्वेदका ही योग्य है और यही अथर्ववेदमें लिखना चाहिये। ये ऋग्वेदके ही मन्त्र हैं, इसलिए इनका लेख दुबारा नहीं किया है।

वामदेव ऋषिके मन्त्रोंमें—

तन्मापितुर्गोतमा दान्वियाय । (ऋ० ४।४।११, का० ६।११)

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । (ऋ० ४।३२।१२)

नोधा ऋषिके मन्त्रोंमें—

आत्वाय मर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनत् ।

(ऋ० ८।८८।४)

(अथर्ववेदमें) मृगार ऋषिके मन्त्रोंमें—

यौ गोतममवथः ॥ (अथ० ४।२९।६)

अथर्वा ऋषिके मन्त्रोंमें—

भरद्वाज गौतम वामदेव० । मृडता नः । (अथ० १८।३।१६)

इतने ऋषियोंके इन मन्त्रोंमें 'गोतम' पद आया है और यहाँके निर्देश मननीय हैं । (वयं गोतमासः त्वा प्रशंसामः) हम गोतम ऋषि तेरी प्रशंसा करते हैं । 'गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन' गोतम ऋषियोंने स्तोत्र किये । (गोतमः नव्यं ब्रह्म अतक्षत) गोतम ऋषिने यह नया सूक्त तैयार किया । (गोतमेभिः ब्रह्माणि अकारि) गोतम ऋषियोंने अनेक सूक्त किये । (गोतमेभिः अग्निः अस्तोष्ट) गोतमों के द्वारा अग्नि प्रशंसित हुआ । (गोतम दुवस्यति) गोतम स्तुति करता है । (गोतम ! अग्नये वाचः भारस्व) हे गोतम ! अग्निके लिये वाणीसे स्तोत्र भरदे । (गोतमासः ब्रह्म कृण्वन्तः) गोतमोंने स्तोत्र किये । गोतमेभिः दिवः दुहिता स्तवे) गोतमोंने उषाकी स्तुति की । (गोतमः अवसे ह्वते) गोतम अपनी सुरक्षाकेलिये स्तुति करता है । (गोतमाः इन्द्रमवीवृधन्त) गोतमोंने इन्द्रकी वधाई की (गोतमा यमजीजनन्) गोतमोंने स्तोत्रको जन्म दिया । इस तरह पूर्वोक्त मन्त्रोंमें गोतमोंने अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके स्तोत्र बनाये, ऐसा कहा है । यहाँ 'अक्रन् , अतक्षत् , अकारि, कृण्वन्तः' ये क्रियापद विचार करने योग्य हैं । 'अतक्षत्' क्रियापद तो लकड़ीसे रथ निर्माण करनेके समान स्तोत्र निर्माण करनेका भाव बता रहा है ।

यहाँ 'गोतमाः, गोतमासः' ये पद अनेक 'गोतम' थे, ऐसा भाव स्पष्टरूपसे बता रहे हैं । अर्थात् यह पद गोतमके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंका वाचक है । 'गोतम' पदसे मूल 'गोतम' ऋषिका बोध होता है । पर 'गोतमासः' पद गोतम कुलमें उत्पन्न अनेक ऋषियोंका वाचक है । सम्भव है, कि गोतम ऋषिके गुरुकुलमें जो भी विद्वान होंगे उनका सामान्यसे यह नाम भी होगा ।

उक्त मन्त्रोंमें कुछ अन्य बातें भी देखने योग्य हैं । (तुभ्यजे

गोतमाय उत्सं सिञ्चन्) प्यासके गोतमके पानी पीनेकेलिये पानी का हौज भर दिया। (तृष्यते गोतमस्य पानाय अपः क्षरम्) गोतम को पानी पीनेकेलिये मिले, इस कारण पानीका प्रवाह वहा दिया। (यौ गोतममवथः) जिन दोनों अश्विदेवोंने गोतमकी सुरक्षा की थी। इससे पता लगता है, कि गोतम ऋषिके आश्रममें जल नहीं था। अश्विदेवों ने वड़ी दूरसे जलकी नहर लाकर आश्रमके हौज भर दिये; जिसके वाद वहाँ जलकी विपुलता होगई। श० त्रा० १४।१। १०।१८ में गोतम ऋषिका इतिहास आया है।" पृ० ५,६ भाग ६।

तथा च, "इस मन्त्र १ सू० ७८में गोतम ऋषिका नाम और उसका गोत्र भी कहा है—

रहूगणाः अग्नये वचः अवोचाम (मन्त्र ५)

गोतमाः गिरा अभि प्रणोनुमः। (मं० १)

रहूगणके पुत्र गोतम हैं यह वात यहाँ सिद्ध होती है। इस लिये 'गोतमो राहूगणः' ऐसा इस ऋषिका नाम हरएक सूत्रपर दिया है।" तथा "इस सूक्तमें अङ्गिरा ऋषिका नाम आया है। 'अङ्गिरस्वत् हवामहे' अङ्गिरा ऋषिने जैसी स्तुति की थी, वैसी ही हम कर रहे हैं। इस वर्णनसे अङ्गिरा ऋषि गोतमके पूर्व समयका प्रतीत होता है। अङ्गिराः—रहूगणः- गोतमः, यह वंश है। गोतमका पिता रहूगण और पितामह अङ्गिरा ऋषि है।" पृ० २२।

आगे पृ० ३७ पर आप लिखते हैं कि—

"यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति। (१।८३।६)

जहाँ प्रशंसनीय कारीगर कुशलतासे यज्ञ कर्म करनेवाला मंत्रों के रचयिता ऋषि मंत्र गाते हैं और सोम कूटनेके पत्रोंका शब्द होता है।"

२८—कुत्स ऋषिः—

ऋग्वेदमें गोतम ऋषिके पश्चात् कुत्स ऋषिके सूक्त हैं। यह मं० १ सू० ९६ से ९८ तक तथा सू० १०१ से सू० १०४ तक और

१०६ से ११५ तक एवं मं० ६ सू० ६७ के ४५ से मन्त्र ५८ तक तथा च, अथर्ववेद काण्ड १० के सू० ८ का भी यही ऋषि है।

कुत्सके कुलका विचार

"कुत्स ऋषि अनेक होचुके हैं, उनका वर्णन यहाँ करते हैं। देखिये सायण भाष्यमें कहा है—

"अत्र काचिदाख्यायिका श्रूयते। रुरुनामकः कश्चिद्राजर्षिः, तस्य पुत्रः कुत्साख्यो राजर्षिरासीत्। स च कदाचित्, शत्रुभिः सह युयुत्सुः संग्रामे स्वयमशक्तः सन् शत्रूणां हननार्थमिन्द्रस्याह्वानं चकार।" इत्यादि।

अर्थात् एक कथा सुनी जाती है। रुरुनामक एक राजा था, उसका पुत्र कुत्स था। वह अपने शत्रुसे लड़नेमें असमर्थ होनेके कारण सहायताकेलिये इन्द्रको बुलाता था। इन्द्रने उसके शत्रुओंका वध किया। इससे दोनोंकी मित्रता होगई। एक समय कुत्स और इन्द्र इकट्ठे बैठे थे, उस समय इन्द्रकी पत्नी शची इन्द्रसे मिलनेकेलिये वहां आगई। किन्तु वहाँ इंद्र और कुत्स समान वेश धारण किये बैठे थे, इसलिये शची पहिचान न सकी, कि कौनसा इंद्र है। यह भाव निम्नलिखित मन्त्रमें आया है।

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी॥४।१६।१०

अर्थात (हे इन्द्र!) हे इन्द्र! (दस्युघ्ना मनसा अस्तम् आ याहि) शत्रुका वध करनेकी इच्छासे तू कुत्सके घर आया है (कुत्सः च ते सख्ये निकामः भुवत्) कुत्स तेरी मित्रताको भी चाहता ही है (स्वे योनौ निषदतम) आप दोनों अपने घरमें बैठे हैं। (ऋतचित् नारी सरूपा वां वि चिकित्सत) सत्य जाननेकी इच्छा करनेवाली तेरी स्त्री दोनोंका समान रूप देखकर आप दोनोंके विषयमें संदेह करने लगी।

गोतमाय उत्सं सिञ्चन्) प्यासले गोतमके पानी पीनेकेलिये पानी का हौज भर दिया। (तृष्यते गोतमस्य पानाय अपः त्तरम्) गोतम को पानी पीनेकेलिये मिले, इस कारण पानीका प्रवाह वहा दिया। (यो गोतममवथः) जिन दोनों अश्विदेवोंने गोतमकी सुरक्षा की थी। इससे पता लगता है, कि गोतम ऋषिके आश्रममें जल नहीं था। अश्विदेवों ने वड़ी दूरसे जलकी नहर लाकर आश्रमके हौज भर दिये, जिसके वाद वहाँ जलकी विपुलता होगई। श० ब्रा० १४।१। १०।१८ में गोतम ऋषिका इतिहास आया है।" पृ० ५,६ भाग ६।

तथा च, "इस मन्त्र १ सू० ७८में गोतम ऋषिका नाम और उसका गोत्र भी कहा है—

रहूगणाः अग्नये वचः अवोचाम (मन्त्र ५)

गोतमाः गिरा अभि प्रणोनुमः। (मं० १)

रहूगणके पुत्र गोतम हैं यह वात यहाँ सिद्ध होती है। इस लिये 'गोतमो राहूगणः' ऐसा इस ऋषिका नाम हरएक सूत्रपर दिया है।" तथा "इस सूक्तमें अङ्गिरा ऋषिका नाम आया है। 'अङ्गिरस्वत् हवामहे' अङ्गिरा ऋषिने जैसी स्तुति की थी, वैसी ही हम कर रहे हैं। इस वर्णनसे अङ्गिरा ऋषि गोतमके पूर्व समयका प्रतीत होता है। अङ्गिराः—रहूगणः गोतमः, यह वंश है। गोतमका पिता रहूगण और पितामह अङ्गिरा ऋषि है।" पृ० २२।

आगे पृ० ३७ पर आप लिखते हैं कि—

"यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति। (१।८३।६)

जहाँ प्रशंसनीय कारीगर कुशलतासे यज्ञ कर्म करनेवाला मंत्रों के रचयिता ऋषि मंत्र गाते हैं और सोम कूटनेके पत्रोंका शब्द होता है।"

२८—कुत्स ऋषिः—

ऋग्वेदमें गोतम ऋषिके पश्चात् कुत्स ऋषिके सूक्त हैं। यह मं० १ सू० ९६ से ९८ तक तथा सू० १०१ से सू० १०४ तक और

१०६ से ११५ तक एवं मं० ६ सू० ६७ के ४५ से मन्त्र ५८ तक तथा च, अथर्ववेद काण्ड १० के सू० ८ का भी यही ऋषि है।

कुत्सके कुलका विचार

"कुत्स ऋषि अनेक होचुके हैं, उनका वर्णन यहाँ करते हैं। देखिये सायण भाष्यमें कहा है—

"अत्र काचिदाख्यायिका श्रूयते। रुरुनामकः कश्चिद्राजर्षिः, तस्य पुत्रः कुत्साख्यो राजर्षिरासीत्। स च कदाचित्, शत्रुभिः सह युयुत्सुः संग्रामे स्वयमशक्तः सन् शत्रूणां हननार्थमिन्द्रस्याह्वानं चकार।" इत्यादि।

अर्थात् एक कथा सुनी जाती है। रुरुनामक एक राजा था, उसका पुत्र कुत्स था। वह अपने शत्रुसे लड़नेमें असमर्थ होनेके कारण सहायताकेलिये इन्द्रको बुलाता था। इन्द्रने उसके शत्रुओंका वध किया। इससे दोनोंकी मित्रता होगई। एक समय कुत्स और इन्द्र इकट्ठे बैठे थे, उस समय इन्द्रकी पत्नी शची इन्द्रसे मिलनेकेलिये वहां आगई। किन्तु वहाँ इंद्र और कुत्स समान वेश धारण किये बैठे थे, इसलिये शची पहिचान न सकी, कि कौनसा इंद्र है। यह भाव निम्नलिखित मन्त्रमें आया है।

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः।
स्वे योनौ निषदन्तं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी॥४।१६।१०

अर्थात् (हे इन्द्र!) हे इन्द्र! (दस्युघ्ना मनसा अस्तम् आ याहि) शत्रुका वध करनेकी इच्छासे तू कुत्सके घर आया है (कुत्सः च ते सख्ये निकामः भुवत्) कुत्स तेरी मित्रताको भी चाहता ही है (स्वे योनौ निषदतम) आप दोनों अपने घरमें बैठे हैं। (ऋतचित् नारी सरूपा वां वि चिकित्सत्) सत्य जाननेकी इच्छा करनेवाली तेरी स्त्री दोनोंका समान रूप देखकर आप दोनोंके विषयमें संदेह करने लगी।

"कुत्सके वर्णनमें कुत्सको 'आर्जुनेय' कहा है। इसका अर्थ ऐसा होता है, कि यह कुत्स 'अर्जुनी' नामक स्त्रीका पुत्र था। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र प्रमाण हैं—

१—याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू॥ (ऋ० १।११२।२३)

२—अहं कुत्समार्जुनेयंन्यृञ्जे॥ (४।२६।१)

३—त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समाव............शुष्णं कुवयम्.......
अरन्धय-आर्जुनेयाय शिक्षन् (७।१६।२, अथ० २०।३७।२)

४—वहत्कुत्स मार्जुनेयं शतक्रतुः। (८।१।११)

कुत्सकी माताका नाम ऋग्वेदमें चार वार और अथर्ववेदमें एक वार आया है। वे मन्त्रभाग ऊपर दिये हैं। कुत्सके लिये इन्द्रने इभका नाश किया, ऐसा भाव निम्नलिखित मन्त्रमें है—

अहं पितेव वेतसूँ रभिष्टये तुग्रं कुत्सायस्मदिभं च रन्धयम्।
(१०।४६।४)

'मैं (इन्द्र) ने कुत्सके लिए, पिता अपने पुत्रका हित करनेके समान, वेतसूका अभीष्ट सिद्ध कर दिया और उसके शत्रुका वध किया।" भाग १०।

१६—त्रित ऋषिः—कुत्स ऋषिके पश्चात् ऋग्वेदमें त्रित ऋषि के मन्त्र हैं। "त्रित आप्त्य एक ऋषि था। जिसके देखे सूक्त ऋग्वेद में हैं। इसके नामका उल्लेख जैसा ऋग्वेदमें है, वैसा ही अथर्ववेद में भी है 'त्रित' पदका अर्थ 'तीर्णतमः' अर्थात् अज्ञानसे पूर्णतया मुक्त परमज्ञानी, क्लेशोंसे पूर्णतया छूटा हुआ है। ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न ऐसा इसका अर्थ है। 'अपां पुत्रः आप्त्यः' जलों का पुत्र विद्युत अग्नि है, वही आप्त्य त्रित है। अग्नि जैसा तेजस्वी ऋषि ऐसा इसका भाव है। यह विभावसुका पुत्र है ऐसा एक मंत्र में कहा है, वह मन्त्र यह है—

विभावसुका पुत्र त्रित

(वत्सप्रिः भालन्दनः। अग्निः)

इमं त्रितो भूरि अविन्दद् इच्छन् वैभूवसो मूर्धनि अघ्न्यायाः।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिः युवा भवति रोचनस्य ॥
(१०।४६।३)

'(वैभूवसःत्रितः) विभावसुके पुत्र त्रितने इस भूमिके ऊपर अग्नि को प्राप्त करनेकी इच्छा की। वह अग्नि घरोंमें उत्पन्न हुआ और पश्चात् वह प्रकाशका केन्द्र बना।'

यहाँ त्रितका पिता विभावसु है, ऐसा लिखा है। 'आप्त्य त्रित' और 'वैभूवस त्रित' ये एक ही हैं, या दो विभिन्न हैं, इसकी खोज होनी चाहिये। इसके विषयमें वेदमन्त्रोंमें पता नहीं मिला। यदि अन्यत्र किसीको कुछ पता लगे तो वह अवश्य प्रसिद्ध करे। त्रितकी स्त्रियोंके विषयमें आगे दिये मन्त्रमें उल्लेख है—

त्रितकी स्त्रियाँ

(श्यावाश्व आत्रेयः। पवमानः सोमः)

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ (९।३८।२)

'(ये त्रितस्य योषणः) त्रितकी स्त्रियाँ पत्थरोंसे हरिद्वर्ण सोमको कूटतीं और इंद्रके पीनेकेलिये रस निकालती हैं।'

यहाँ त्रितकी स्त्रियाँ सोमरस निकालती हैं और इंद्रकेलिये तैयार करती हैं, ऐसा लिखा है। अन्यत्र यज्ञमें ऋत्विज सोमरस निकालते हैं। यहाँ घरमें घरकी स्त्रियोंद्वारा सोमरस निकालनेका वर्णन है। अर्थात्—यह पेय घरेलू है। त्रित यज्ञ करता था, इससे उसकी गणना देवोंमें की जाती थी, ऐसा अगले मन्त्रसे प्रतीत होता है—

देवोंमें त्रितकी गणना

(गृत्समदो भार्गवः शौनकः । विश्वेदेवाः)

अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत । त्रितं ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपात् ॥ (२।३१।६)

"अहिर्बुध्न्यः" अज एकपात्, त्रितः, ऋभुक्षाः, सविता, अपां नपात् ।" इन देवोंमें त्रितकी गणना की है । अर्थात् त्रित ऋषि भी है और देव भी है । अथवा ऋषि होता हुआ देवत्वको प्राप्त हुआ था । क्योंकि यह त्रितके समान शूर था, देखो—

त्रितके समान इन्द्रका शौर्य

(सव्य आंगिरसः । इन्द्रः)

इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणोऽन्धसा भिनद् वलस्य परिधीरिव त्रितः ।
(१।५२।५)

'अन्नसे उत्साहित हुए वज्रधारी इन्द्रने, त्रितके समान ही वलके दुर्गकी दीवारोंको तोड़ दिया ।'

इस मन्त्रमें कहा है, कि इन्द्रने जो शत्रुके किले तोड़ दिये, वह कर्म त्रितके कर्मके समान ही था । यहाँ इंद्रके शौर्यके साथ त्रितके शौर्यकी तुलना की है । त्रित और इन्द्रकी युद्ध-शौर्यके विषयमें समता यहाँ दिखायी है । देव वीरोंके समान ऋषि भी शूर, वीर, धीर तथा युद्धमें निपुण होते थे, ऐसा इस मन्त्रसे सिद्ध होता है । यही भाव अगले मन्त्रमें देखो—

लड़नेवाला त्रित

(पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्मम् आवन् उत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ।
(८।७।२०)

'वृत्रके साथके युद्धमें इन्द्रके साथ रहकर युद्ध करनेवाले त्रितके बलको और कर्तृत्वशक्तिको तुमने बढ़ाया, या सुरक्षित किया।' यहाँ त्रित इन्द्रके साथ रहकर वृत्रके साथ लड़ता है। इसलिए मरुतोंने त्रितकी सहाहता की और त्रितका बल बढ़ाया। जैसे मरुत् इंद्रकी सहायता करते थे वैसे वे त्रितकी भी सहायता करते थे। इससे भी यह सिद्ध होरहा है कि, त्रित भी इंद्रके समान शूर=वीर था। त्रित युद्ध करनेके लिए अपने शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करके सदा सज्ज रखता था।" भाग ११।

ब्रह्म आदि शब्द

उपर्युक्त मन्त्रोंमें ब्रह्म, स्तोत्र, स्तोम, उक्थ, श्लोक, वाक्, मन्त्र, मन्म, गिर्, वाक्, वचस्, शस्त्र आदि आये हैं। जिनका अर्थ, सायण आदि सभी मान्य भाष्यकारोंने मन्त्र या मन्त्रसमूह अर्थात् सूक्त आदि किया है। जैसा कि उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है। किन्तु एक विद्वान्ने हमारे पास यह लिखकर भेजा था, कि ब्रह्म आदि उपर्युक्त शब्दोंका अर्थ वैदिक-साहित्यमें मन्त्र आदि नहीं है। इसलिए हम यहाँ इस विषयको भी स्पष्ट करना चाहते हैं।

सर्वप्रथम हम ब्रह्म शब्दके ऊपर ही विचार करते हैं। क्योंकि इसी शब्दका अधिक प्रयोग हुआ है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ और ब्रह्म

ब्रह्म शब्दके अर्थ, ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निम्नप्रकार किये हैं—

"वाग्ब्रह्म" (गो० २।१०)

"वाग्वैब्रह्म" (ऐ० ६।३) श० २।१।४।१०।१४।४।१।२३,

"वाग्घिब्रह्म" (ऐ० २।१५।४)

"वागिति ब्रह्म" (जै० उ० २।६।६)

इत्यादि स्थलोंमें वाक् शब्दका अर्थ ब्रह्म किया है।

तथा च—इसी प्रकार "वेदोब्रह्म" (जै० उ० ४।२५।३)

"एतद्वैयजुः ब्रह्मरत्नोहाः" (श० ४।१।१।२०)

उपर्युक्त स्थानोंमें वाक्को ब्रह्म कहा गया है। और वाक् शब्द का अर्थ करते हुए ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें लिखा है कि—

"वाग्वै बृहती" श० १४।४।१।२२)

"वागित्यृक्" (जै० उ० १।६।२)

"वागेव ऋग्वेदः" (श० १४।४।३।१२)

इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि वाक् शब्दका अर्थ ऋग्मंत्र तथा ऋग्वेद है।

तथा च ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें लिखा है कि—

"ब्रह्म वा ऋक्" (कौ० ७।१०) तथा शतपथ ब्राह्मण (३।३।४। १७) में आये हुए ब्रह्म शब्दका अर्थ मन्त्र ही किया है। तथाच, श० प० ब्रा० में स्पष्ट लिखा है कि "ब्रह्म वै मन्त्रः" (७।१।१।५) यहाँपर स्पष्टरूपसे ब्रह्मका अर्थ मन्त्र किया है।

किन्तु एक विद्वान्का कथन है कि यहाँ ब्रह्मको मन्त्र बताया है, न कि मन्त्रको ब्रह्म। उनकी सेवामें हम निवेदन करना चाहते हैं कि वे पूरी कण्डिकाका तथा उसके सायणभाष्यका अवलोकन करें। कण्डिका निम्न प्रकार है—

"ब्रह्म वै पलाशो ब्रह्मणैव तदवसितान्व्यूदूहति मंत्रेण ब्रह्मवै मंत्रो ब्रह्मणैव तदवसितानव्युदूहति तामुदीचिमुदस्यति।"

इस कण्डिकामें स्पष्टरूपसे मंत्रेण कहकर उसका अर्थ करते हुए लिखा है कि "ब्रह्म वै मन्त्रः" अर्थात् मन्त्र ब्रह्म है।

श्री सायणाचार्यने भी यहाँ हमारे ही मतकी पुष्टिकी है। अतः यह सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी ब्रह्मका अर्थ मन्त्र भी है।

निरुक्त व ब्रह्म शब्द

नि० ४।१।६ में "तत्र ब्रह्म इतिहासमित्रं ऋङ् मिश्रं गाथामिश्रं भवति" यह पद आया है। ऋग्वेदके "त्रितं कूपे अविहितम्" सूक्त की व्याख्या करते हुए यह वचन कहा गया है। इस पदमें 'तत्र' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। क्योंकि यह तत्र शब्द ऋग्वेद के "त्रितं कूपे"……इस सूक्तका द्योतक है। इसपर दुर्गाचार्य लिखते हैं कि—

"तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रम। तत्र तस्मिन् सूक्ते ब्रह्म, इतिहासमिश्रम् इतिहासयुक्तमित्यर्थः। "तद् यथा—'त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत उतये"—इत्येवमादि (ऋ० सं० १, १०, ५, १७)" "ऋग्मिश्रं" "गाथामिश्रं" च "भवति"।

इसका अनुवाद करते हुए पं० सीताराम जो शास्त्री भिवानी निवासी लिखते हैं, कि—"इससे भाष्यकारने यह दिखाया है कि यह भी एक सूक्तोंका स्वभाव है। उनमें इतिहास भी होता है।" तथा च—प्रकरणसे भी यहाँ ब्रह्म शब्दका अर्थ सूक्त ही होता है।

इसी प्रकार (नि० अ० १०) में "ब्रह्मणस्पतिः" की व्याख्या करते हुए निरुक्तिकार यास्कने "ब्रह्मणस्पतिः, ब्रह्मणः पाता पालयिता वा लिखकर हमारे मतकी पुष्टि की है। यहाँपर दुर्गाचार्य लिखते हैं कि—

ब्रह्म=अन्नम्, ऋगादि वा, अर्थात् ब्रह्म=अन्न अथवा ऋगादि का पालन करनेवाला होनेसे ब्रह्मणस्पति कहलाता है। इससे सिद्ध है कि निरुक्तिकारके मतमें भी ब्रह्म शब्दका अर्थ मंत्र व सूक्त आदि है।

"तैत्तिरीयसंहिता" जिसका संपादन पं० सातवलेकरजीने किया है, उसकी भूमिकामें प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० गजानन्दजी शर्माने "मन्त्राः ब्रह्मवाचकाः" यह सुर्खी देकर इस विषयमें अनेक प्रमाण उपस्थित किये है। यथा—

(१) विश्वामित्रस्य रक्षति "ब्रह्मेदं" भारतं जनम् (ऋ० ३।५३।१२)

(२) "ब्रह्माणि" मन्दन्गृणतामृषीणाम् (ऋ० १०।८९।१६)

(३) "ब्रह्मणा" ते ब्रह्म युजा युनज्मि (ऋ० २।३५।४,
अथ० २०।८६।१)

(४) नि"ब्रह्मभि"रधमो दस्युमिन्द्र (ऋ० १।३३।९)

(५) ज्येष्ठ राजं "ब्रह्मणां" ब्रह्मणस्पते (ऋ० २।२३।१,
तै० सं० २।३।१४३, का० १०।१३)

(६) गूलहं सूर्यं तमसाऽपव्रतेन तुरीयेण "ब्रह्मणा"ऽविन्द दत्रिः
इति (ऋ० ५।४०।६)

(७) ते च ऋगादयो मन्त्राः वाग्रूपाः वाच एव प्रत्यक्ष ब्रह्मरूपाः परोक्षेण परमेण ब्रह्मात्मना मिथुनीभूताः, सत्याः, ब्रह्मवस्तुवत् नित्याः सत्यधर्मयुक्ताः, परोक्षस्यापि परब्रह्मणो यथावत् स्वरूपतत्त्वावगमे प्रत्यक्षप्रमाणभूताश्च भवन्ति। तथा च (ऋङ् मन्त्रवर्णो) "यावद्ब्रह्मविष्ठितं तावती वाक्" इति (ऋ० १०।११४।८ ऐ० आ० १।३।८) तस्येदमुपव्याख्यानब्राह्मणम् । "यत्र ह्क्वच ब्रह्म तद् वाक्" यत्र वा वाक् तद् वा ब्रह्मेत्येतदुक्तं भवति" इति (ऐ० आ० १।३।८) वाच्यवाचकयोरभेदस्तादात्म्यञ्च क्वचित्तु तदन्यतरद्वा सर्वेषां शास्त्रचिन्तकानां शब्द प्रामाण्यवादिनामभिमतं न्यायसिद्धं प्रसिद्धतरं वस्तुतत्त्वम् । अत एव प्रत्यक्षं ब्रह्मैव वाक्, वागेव प्रत्यक्षं ब्रह्म, परोक्षं परं ब्रह्मैव, तस्याः, अधिपतिः परमः पुरुषः, इति, तत्त्वदर्शनेन वाग्ब्रह्मणोस्तयोः, ब्रह्मब्रह्मणस्पतिशब्दाभ्यां, वेदेषु असकृदभिष्टुतिः सर्वथा संगच्छते । "वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये" (ऋ० १०।८१।७) "ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते" (ऋ० मं० २।

२३।१) "एष उ एव ब्रह्मणस्पतिः" वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिः" इति औपनिषदं ब्राह्मणम्। (वृ० उ० १।३।२१)

इसी प्रकार काण्वसंहिताकी भूमिकामें श्री पं० सातवलेकरजीने "कण्वा ब्रह्म कृण्वन्ति" सुर्खी देकर अनेक प्रमाणोंसे इस विषयकी पुष्टि की है। हम उनमेंसे केवल दो प्रमाण उपस्थित करते हैं—

(१) "कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सशृणुतं हवम्" (ऋ० १।४७।२) इस मन्त्रका निम्न अर्थ किया है—"कण्वा वामश्विनोर्युवयोर्यागे ब्रह्मस्तोत्ररूपं मन्त्रसमूहं कृण्वन्ति कुर्वन्ति। तत्तु यागेऽध्वरे गीयते। तेषां कृण्वानां हवमिममाह्वान शृणुतमिति।

(२) "कृण्वास्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रायच्छन्त्या गहि। (८।४।३) इस मन्त्रका निम्न अर्थ किया है—देवातिथिः काण्व इन्द्रस्तवे कथयति, 'यत्कण्वा, हे इन्द्र! त्वां स्तोमवाहसः स्तोमानां वोढारो ब्रह्मभिः सूक्तैः सहायच्छन्ति, आगच्छन्ति, त्वां प्राप्नुवन्ति'।

तथा च कौत्स्य सूत्रमें स्पष्टरूपसे लिखा है कि "ऋचं गाथां ब्रह्म परं जिगांसन्" (१३५।७६) अर्थात् ब्रह्म शब्द गाथा और ऋचाका वाचक है।

तथा च तै० ब्रा० १।३।२।६ में कहा है—"यद्ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशँस्यभवत्" यहांपर भी ब्रह्म शब्दका अर्थ ऋग्वेद ही है।

तथा च आपस्तम्ब श्रौत सूत्रमें भी स्पष्ट है कि "शौन शेपमाख्यायते" ऋचोगाथामिश्राः परः शताः परः सहस्रा वा" १८।१६ अर्थात् शौनशेपके उपाख्यानसे यह प्रतीत होता है कि बहुत सी ऋचाएँ गाथामिश्र होती हैं। इसीको निरुक्तकारने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"तत्रेतिहासमिश्रमृग्मिश्रं गाथामिश्रं भवति" तथा च आश्वलायन गृह्यसूत्रके टीकाकार नारायण लिखते हैं—"गाथा नाम ऋग्विशेषः" (३।३।१)। अर्थात्—विशेष प्रकारके ऋग्वेदके मन्त्रोंका

नाम गाथा है। इस प्रकार ऋग्वेदमें शौनशेपकी कथावाले सूक्तको सभी आचार्योंने गाथा और इतिहासमिश्र वताया है। तथा च इसी बातको निरुक्तिकारने भी सूक्त शब्दको पर्यायवाची ब्रह्म शब्द रखकर विवेचन किया है।

उपर्युक्त अनेक पुष्ट प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध है कि ब्रह्म शब्द का अर्थ वेद, मन्त्र, सूक्त, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदादि भी होता है।

श्लोक शब्द

जिस प्रकार ब्रह्म शब्द मन्त्रवाचक है, उसी प्रकार श्लोक शब्द भी मन्त्रवाचक है। यथा—

शतपथब्राह्मण (१४।७।२।११) में यजुर्वेदके "अन्धन्तमः प्रविशन्ति" इस मन्त्रको श्लोक कहा है। तथा च—बृहदारण्यकोपनिषद् (अ० ४।३।११) में "तदेते श्लोका भवन्ति" लिखकर आगे मन्त्र लिखे गये हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उपनिषदकार श्लोक शब्द से मन्त्रका अर्थ ग्रहण करते हैं। तथा च—श्री शंकराचार्यने भी इसका भाष्य करते हुए स्पष्ट लिखा है कि—"एते श्लोका मन्त्रा भवन्ति" तथा इसी प्रकार (बृ० १।५।२३) में "अथैष श्लोको भवति" लिखकर भी उपनिषत्कार मन्त्रको उधृत करते हैं। तथा यहां भी श्री शंकराचार्य "एष श्लोको मन्त्रो भवति" लिखकर श्लोक का अर्थ मन्त्र करते हैं।

तथा च—छान्दोपनिषद् (८।६।६) में "तदेष श्लोकः" कहकर श्लोकका अर्थ मन्त्र करते हैं) इसी प्रकार (७।२६।२) में भी इसी प्रक्रिया के अनुसार "तदेव श्लोकः" कहकर मन्त्र उपस्थित किया गया है।

तथा च—(५।१०।८) में भी इसी प्रकार श्लोक कहकर मन्त्र उद्धृत किया है। तथा—(५।२।८) में भी श्लोक शब्दसे मन्त्र ग्रहण किया गया है। पुनश्च—(२।२७।३) में भी यही क्रम है। इसी प्रकार

यजुर्वेद (अ० १८।१) में आये हुए श्लोक शब्दके अर्थ, महीधर आदि सभी आचार्योंने मन्त्र किये हैं।

वाक् शब्द

वैदिक निघण्टुमें वाक्के ५७ नाम आये हैं, उनमें श्लोक, ऋक्, गाथा, अक्षरम, वाक्, अनुष्टुप आदि भी हैं। इनमें स्पष्ट रूपसे ऋक् मन्त्रोंके वाक् शब्दका प्रयोग हुआ है। क्योंकि ये सब शब्द समानार्थक हैं। गाथा शब्दके अपने निरुक्त भाष्यमें श्री दुर्गाचार्य लिखते हैं कि—"ऋक्प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते" अर्थात् ऋक् मन्त्रोंके विशेष प्रकारका नाम गाथा है। अतः सिद्ध हुआ कि ये समस्त शब्द, एकार्थ अर्थात् ऋचाके वाचक हैं।

तथा च—वाक् शब्दके अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निम्न प्रकार किये हैं—

१—"वाग्वैबृहती" (श० १४।४।१।२२)

२—"वागेव संस्तुप् छन्दः" (श० ८।५।२।५)

३—वाग्वा अनुष्टुप्" (कौ० ५।६)

४—"वागित्यृक्" (जै० उ० ४।२३।४)

५—"वागेव ऋग्वेदः" (श० १४।४।३।१२)

६—"वाग्ब्रह्म" (कौ० उ० २।१०)

७—"वागिति तद्ब्रह्म" (जै० उ० २।६।६)

८—"वागुक्थम्" (श० १।५)

९—"वाग्घिशस्त्रम्" (ऐ० ३।४४)

१०—वाक् शंसः" (ऐ० २।४)

११—"वाग्वैरथन्तरम्" (ऐ० ४।२८) इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि बृहती, अनुष्टुप्, संस्तुप्, ऋक्, ब्रह्म, उक्थ आदि शब्द समानार्थक हैं।

शस्त्र और स्तोत्र

"प्रउगं शंसति", "निष्केवल्यं शंसति" इत्यादि वाक्योंमें शंसति क्रियाके द्वारा जिनका विनियोग होता है, वे शस्त्र कहलाते हैं तथा "आज्यैः स्तुवते", "पृष्ठैः स्तुवते" इत्यादि वाक्योंसे स्तुवते या स्तौति क्रियाके द्वारा जिन मन्त्रोंका विनियोग होता है, वे स्तोत्र कहलाते हैं। एवं स्तोत (मंत्र) गाये जाते हैं और शस्त्र गाये नहीं जाते। उपर्युक्त प्रमाणसे स्पष्ट सिद्ध है, कि ऋग्वेदके मंत्रों को ही स्तोत्र कहते हैं। अतः स्तोत्र, मन्त्र, सूक्तादि शब्द एकार्थ-वाचक हैं। प्रमाणार्थ निरुक्त दैवत काण्ड अध्याय १२ को देखें।

"ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमानो मन्त्रं सरथेहोपयातम्।"

यहाँपर आये हुए मन्त्रका अर्थ 'मननीयं स्तोत्रं' किया है। तथा उक्त मंत्रमें आये हुए स्तोम शब्दका अर्थ भी स्तोत्र, अर्थात् सूक्त ही है, इसमें स्तोतको ऋध्याम अर्थात् ऋध्यास्म (वर्द्धयेम) बढ़ानेकी प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार स्तोम, उक्थ आदि सम्पूर्ण शब्द मन्त्रवाचक प्रसिद्ध ही हैं। अतः उनपर लिखना कोई आवश्यक नहीं। क्योंकि इसमें विद्वानोंका मतभेद भी नहीं है।

दो प्रकारके ऋषि

वैदिक वाङ्मयमें दो प्रकारके ऋषि माने गये हैं। १–मन्त्रकृत ऋषि, २–मन्त्रपति ऋषि। यथा—

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः मा मां ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परादुः माऽहं ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम्। (तै० आ० ४।१)

इसी बातकी पुष्टि पुराणकारोंने निम्नप्रकारसे की है—

उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च॥ १०१॥

औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतपास्तथा।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् अङ्गिरसोवराः।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ॥ १०२॥

तथा च—आर्ष्टिषेण द्धरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः।
वैन्यः पृथुर्दिवोदासः प्रश्वारो गृत्समान्नभः।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥ ६७॥
(वा० पु० अ० ५६)

यहाँपर दो प्रकारके ऋषि बतलाये गये हैं, १—मन्त्रकृत् और २—मन्त्र-व्याख्याता। पुराणोंमें इन मन्त्रकृत् ऋषियोंके वंशका विशदरूपसे वर्णन किया गया है। वेदोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि यहाँपर मन्त्रकृत् ऋषि बताये गये हैं। प्रायः उन्होंने और उनके वंशजोंने ही मन्त्रोंका निर्माण किया है।

तथा च—"अहिर्बुध्न्यसंहिता" अ० ११ में लिखा है—

अथ कालविपर्यासाद् युगभेद समुद्भवे।
त्रेतादौ सत्वसंकोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते।
अपान्तरतमानाम मुनिर्वाक् संभवो हरेः॥
कपिलश्च पुराणर्षिरादिदेव समुद्भव।
हिरण्यगर्भो लोकादिरहं पशुपतिः शिवः।
उद्भूत्तत्र धीरूप मृग्यजुः साम संकुलम्।
विष्णु संकल्पसम्भूतमेतद् वाच्यायनेरितम्॥

अर्थात्—वाक्का पुत्र "वाच्यायन" अपर नाम अपान्तरतमा था। (कालक्रमके विपर्यय होनेसे त्रेता युगके आरम्भमें) विष्णुकी

आज्ञासे अपरन्तरतमा, कपिल और हिरण्यगर्भ आदिकोंने क्रमशः ऋग्यजु सामवेद सांख्यशास्त्र और योग आदिका निर्माण किया। अर्थात् कपिलदेवने सांख्य दर्शन बनाया और हिरण्यगर्भने योग-दर्शन बनाया तथा अपान्तरतमाने ऋग्, यजुः व सामवेदका निर्माण किया। तथा वा० पु० अ० ५६ में लिखा है "कि प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते" ॥ ५६ ॥ अर्थात् प्रत्येक मन्वन्तर के समय नवीन श्रुतियोंकी रचना की जाती है। प्रत्येक देवताके लिए ऋग्, यजुष्, साम जिस रीतिसे पूर्व बनाए जाते थे, इसके अलावा आगे चलकर श्लोक ८५ से ६० तक मन्त्रकर्ता (मन्त्रकृतः) ऋ० के नामोंका भी उल्लेख है। तथा च, वा० पु० अ० ५६ में ४ या ५ वर्षका युग माना जाता था। और उन वर्षोंके नाम अग्नि सूर्य, सोम, वायु, आदि दिये हैं। इससे विदित होता है कि अग्नि आदिसे वेदोंकी उत्पत्ति किस तरह है। वह वर्णन भी इन अग्नि आदि संवत्सरोंसे उत्पत्ति बतानेका संकेत कर रहा है। इससे हमारी कल्पनाकी पुष्टि होती है।

वेद-निर्माता ऋषि

वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्यपुराणमें वेदकर्ता ऋषियों का निम्न प्रकारसे वर्णन आया है—

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च ह्यङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूता स्वयमीश्वराः
परत्वेनर्षयो यस्मात् स्मृतास्तस्मान्महर्षयः ॥
ईश्वराणां सुता ह्येते ऋषयस्तान्निबोधत।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा ॥

उतथ्योवामदेवश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ।
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्बालखिल्यास्तथार्वतः ॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा र्चार्षितां गताः ।
ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ॥
वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजस्तथैव च ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव वृहदुक्थः शरद्वतः ॥
वाजश्रवाः सुवित्तश्च वश्याश्वश्च पराशरः ।
दधीचः शंशपाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ॥
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ।
भृगुः काव्यप्रचेताश्च दधीचो ह्यात्मवानपि ॥

(वायु० पु० अ० ५६) (ब्र० पु० २।३२।६२) (म० पु० १४५।५८)

अर्थात्—भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ, पुलस्त्य, काव्य, वृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य, औशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, वालखिल्य, अर्वत, वत्सर, नग्नहू, भरद्वाज, दीर्घतम, वृहदुक्थ, शरद्वत, वाजश्रवा, सुवित्त, वश्याश्व, पराशर, दधीच, शंशपा, वैश्रवण, प्रचेता इत्यादि समस्त ऋषियोंको वेदमन्त्रोंका निर्माता कहा गया है।

तथा च, इतिहासमें भी इस बातकी निम्न प्रकारसे पुष्टि होती है, कि—ब्राह्मण वेदोंके निर्माता थे, "मज्झिमनिकाय" २।५।६ में बुद्ध के श्रावस्तीमें विहार करनेका उल्लेख है, वहाँ उन्होंने कहा है—
"जो वेदोंके कर्ता, मन्त्रोंके प्रवक्ता, ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि थे"—
"अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु आदि।"

इस प्रकारके प्रबल प्रमाणोंसे वेदोंका ऋषियों द्वारा निर्मित होना सिद्ध होता है। किन्तु इतनेपर भी साम्प्रदायिक विद्वानोंका

कथन है, कि यहाँ मन्त्रोंके दर्शक होनेका भाव है, निर्माता आदिका नहीं। वे अपनी पुष्टिमें कहते हैं कि—

ऋषिर्दर्शनात् (निरुक्त) तथा च ऋषयो मंत्रद्रष्टारः।

आदि अनेक प्रमाणाभास देकर अपना मन सन्तुष्ट करते हैं। किन्तु यहाँपर यह शंका उत्पन्न होती है कि मन्त्रद्रष्टासे क्या अभिप्राय है ? क्या साइनबोर्डपर लिखे हुए मन्त्रोंको देखनेवालोंका का नाम ऋषि है, अथवा किसी व्यक्तिविशेषके स्थानपर मन्त्र रख रखे हैं, जहाँ ये ऋषि लोग देखने जाते हैं। तब ये भोले भाई कहते हैं—कि मन्त्र 'द्रष्टा' का अर्थ है 'मन्त्रार्थद्रष्टा'। परन्तु जो प्रश्न पूर्व थे वही अब भी है। अर्थात् मन्त्रार्थ क्या चीज है, जिसको ऋषि लोग देखते थे ? कोई पर्वत था, मनुष्य था अथवा कोई पशु-पक्षी था जिसको देख लेते थे और ये ऋषि बन जाते थे। फिर भाइयोंकी बुद्धिपर जोर पड़ता है तो कहते हैं, कि ऋषि लोग योग समाधि द्वारा मन्त्रोंके अर्थोंको देखा करते थे। यथा—

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत्। (सायण)

अर्थात् ऋषि अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा होनेसे मंत्रकार कहे गये हैं। परन्तु यहाँ प्रश्न होता है, कि जो वस्तु इन्द्रियोंसे परे है उसका देखना कैसे हो सकता है ? यदि कहो—देखनेके अर्थ अनुभवके हैं तो भी नहीं बनता, क्योंकि अनुभव किसका ? यदि कहो कि मंत्रके अर्थका, तो मन्त्रका अर्थ तो है ही नहीं। उसका अनुभव कैसा ? क्या स्वरूपके दर्शनकी तरह दर्शन करते थे ? यदि कहो अर्थ तो विद्यमान था तब सभी दर्शन कर सकते थे।

इनकी क्या विशेषता थी ? यदि कहो, कि सबको तो वे ऋषि नहीं दिखलाते थे तो बात दूसरी है।

मन्त्र-द्रष्टा तथा मन्त्रार्थ-द्रष्टाकी उपर्युक्त व्याख्याओंमें शब्दाडम्बरके अतिरिक्त कुछ भी सार नहीं है। जो भाई ऋषिका अर्थ मन्त्रद्रष्टा आदि करते हैं और (ऋषिर्दर्शनादादि) प्रमाण उपस्थित करते

हैं उनको निम्नलिखित प्रमाणोंपर विचार करना चाहिए—

ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनाम् । 'शङ्करभाष्य'
वेदान्त १।३।३३

यहाँपर शंकराचार्यजीने ऋषियोंको मन्त्रोंका दर्शक तथा ब्राह्मण-ग्रन्थोंका भी दर्शक लिखा है । अब जो भाई दृश् धातुका अर्थ करोति नहीं मानते उनके मतमें इस सूत्रकी क्या संगति लगेगी। या तो उनको मन्त्र और ब्राह्मण-ग्रंथ दोनोंको ईश्वरोक्त मानना पड़ेगा । अथवा दोनोंको ऋषिकृत, दोनों ही बातोंमें उभयतः 'पाशारज्जुन्याय' से उन्हींके पक्षका खण्डन होता है । तथा च—

स एतं त्रिवृतं सप्त तन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत् ॥
(गो० पू० १।१२)

य एव मन्त्रब्राह्मणद्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास-पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ॥
(४।१।६२ वा० भा० न्या०)*

उपर्युक्त सभी प्रमाणोंमें यज्ञ करनेवालेको 'यज्ञमपश्यत्' कहा है अर्थात् यज्ञ किया । तथा दूसरेमें भी ऋषियोंको मंत्र (वेद) और ब्राह्मण ग्रंथोंका 'द्रष्टा' कहा है तथा उन्होंने ही इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि भी देखे, ऐसा कहा है । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मन्त्र बनानेवालोंको ही मन्त्रद्रष्टा कहते थे और वे कृत अर्थमें आदरार्थ दृश् धातुका प्रयोग करते थे । इसीलिये जहाँ २ ऋषियोंको मंत्रद्रष्टा कहा है वहाँ वहाँ मन्त्रकर्तासे ही अभिप्राय है ।

तथा च, न्या० अ० २।२।६७ की व्याख्या करते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति

यहाँपर आचार्यने वेदों तथा वेदार्थके साथ साथ ऋषियोंक

आयुर्वेद आदिका भी द्रष्टा कहा है। यदि दृश् धातुका अर्थ कर्ता न मानें तो इतिहास, पुराण, आयुर्वेद आदि सम्पूर्ण ग्रंथोंको भी ईश्वरकृत मानना पड़ेगा और यदि दृश् धातुका अर्थ कर्ता मानें तो वेद ऋषिकृत सिद्ध हो ही जायेंगे।

निरुक्त और ऋषि

यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थपत्यमिच्छन् स्तुति प्रयुक्ते। तद्दैवतं स मन्त्रो भवति।

(नि०—७।१)

अर्थात्—अर्थकी इच्छासे ऋषि जिस देवतासे प्रार्थनारूप स्तुति करता है वह मन्त्र उसी देवताका होता है। यही भाव बृहद् देवतामें तथा अथर्ववेदीय बृहदनुक्रमणिकामें है। यहांपर निरुक्त तथा अन्य आचार्य देवताकी पहचान बतलाते हैं और कहते हैं, कि जिस विषयको लेकर ऋषि अर्थकी इच्छासे मंत्र बनाता है, वही विषय उस मंत्रका देवता होता है। निरुक्तमें तथा अन्य सब आचार्योंने "ऋषिः स्तुतिं प्रयुँक्ते अथवा प्रयुज्यते" आदि शब्द लिखे हैं। इन सब में पाठभेदके अतिरिक्त अर्थ भेद नहीं है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि इस 'प्रयुँक्ते' आदि क्रियाका कर्ता कौन है? तो आचार्योंने इसका स्पष्ट उत्तर दिया है—कि इस क्रियाका कर्ता ऋषि है। अतः स्तुतिका कर्ता ऋषि ही है, इसमें मतभेद अब प्रश्न यह रहा कि ऋषि स्तुति कहां करता है? तो आचार्य स्पष्ट उत्तर देते हैं कि, वेद में! क्योंकि वेदमें ही देवता और ऋषियोंका सम्बन्ध है। तथा इसीका प्रकरण भी है। तथा च, "समन्त्रो भवति" कहकर निरुक्तकार यास्काचार्यने विवादकेलिए कोई स्थल रखा ही नहीं। यदि आप यह कहें, कि हम यहां ऋषिका अर्थ ईश्वर करेंगे, तो इसका उत्तर अथर्ववेदीय बृहदनुक्रमणिकाकार ने स्वयं दिया है। यथा—

अर्थेप्स्व ऋषयो देवताश्छन्दोभिरुपाधावन् ।

अर्थात्—यहांपर 'ऋषयः' यह बहुवचनान्त पाठ देकर यह स्पष्ट कर दिया है, कि यहां ईश्वरका अर्थ नहीं हो सकता। तथा च बृहद्देवताकारने "प्राधान्येन स्तुवनभक्त्या" कहकर बिल्कुल ही उन लोगोंका मुँह वन्द कर दिया। क्योंकि यदि ईश्वर भी देवताओं की भक्ति करने लगेगा, तब तो उनका नाम ही आप ईश्वर रख सकते हैं।

किं बहुना, सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें ऋषिके अर्थ ईश्वरके नहीं लिये गये, जबकि ऋषि शब्द ईश्वर अर्थमें कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ। तो ऋषि शब्दसे यहां ईश्वरका ग्रहण करना पक्षपातकी पराकाष्ठा है। तथा च इसी प्रकरणमें स्वयं ऋषि शब्दका क्या अर्थ करना चाहिये, यह दिखाते हैं—

एवं उच्चावचैः अभिप्रायैः ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति ।

(नि० ७।३)

अर्थात् इस प्रकारके विविध अभिप्रायसे ऋषियोंकी मन्त्रोंमें दृष्टियां होती हैं। यहां 'ऋषीणाम्' यह बहुवचनान्त पद स्पष्ट इस बातकी घोषणा करता है, कि यहां ईश्वरका ग्रहण नहीं होसकता। यहां भी निरुक्तकारने अपने पूर्व कथनको स्पष्ट किया है। तथा च-

ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः ।

(नि० ३।११)

अर्थात् कुत्स ऋषि मन्त्रोंका कर्ता है। यहां औपमन्यवका नाम आदरार्थ है। तथा च स्वयं यास्क कहते हैं—

ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः ।

(नि० २।११)

अर्थात्—ऋषि दर्शनसे होता है, सूक्तोंको देखा, ऐसा औपमन्यव कहते हैं। अब हमारे मतमें तो दर्शनका अर्थ 'करना' (रचना)

है और वादीके मतमें कर्ताका अर्थ 'दर्शक' है, परन्तु मित्रोंको खुश करनेकेलिये उनके अर्थको स्वीकार करके इसकी परीक्षा करते हैं।

१—प्रथम बात तो यह है कि 'ऋषिर्दर्शनात्' यह वाक्य पहले आया है और इसके पश्चात् आया है 'कर्ता स्तोमानाम्', जिसका स्पष्ट अभिप्राय है, कि ऋषिने दर्शकके स्पष्ट अर्थ करनेको यह पिछली पंक्ति कही है। अतः ऋषिका अभिप्राय दर्शक शब्दसे 'कर्ता' का ही है। क्योंकि अन्तिम निर्णय ही मान्य होता है।

२—'ऋषिर्दर्शनात्' यह निरुक्ति ऋग्वेदमें आये हुए ऋषि शब्द की है। अब यदि वादी चाहे ऋषिको द्रष्टा माने अथवा कर्ता माने, परन्तु व्यक्ति विशेष तो मानता है। अतः दर्शक माननेपर भी वेदोंमें ऋषिका (जो व्यक्ति विशेष है) वर्णन मानना पड़ेगा, ऐसा माननेपर वादीका सम्पूर्ण मनोरथ धूलमें मिल गया। क्योंकि दोनों अवस्थामें उनके अपने सिद्धान्तकी हानि है। वास्तवमें जितना इस विषयपर विचार किया जाता है, उतना ही ईश्वरीय ज्ञानके पक्षका नाम शेष रह जाता है। अतः हमारा पक्ष युक्ति और प्रमाणसे संगत है एवं सर्वमान्य है।'

निरुक्त, १०।४२ में "अवस्रवेत्" शब्दपर विचार करते हुए लिखा है कि—

अभ्यासे भूयांसमर्थं मयते यथाहो दर्शनीयाहो दर्शनीयेति।

अर्थात्—यह अभ्यास प्रायः देखा जाता है। जैसे, दर्शनीयाहो दर्शनीय इति। अतः यहां भी अस्रवेत् शब्द दो बार आया है और विशेषार्थ द्योतक है।

अथवा 'तत्पुरुच्छेयस्य शीलम्', तह पुरुच्छेय ऋषिका स्वभाव है, जोकि इस प्रकारकी वह कविता बनाता है, जिससे एक पद दो बार आवे। इस प्रमाणसे ऋषि-विषयक जितनी समस्यायें थीं वे सब हल हो गईं। अब किसीको ननु नच करनेका अवकाश ही

महर्षि यास्कने नहीं छोड़ा। यदि यास्क मन्त्रोंको ईश्वरकृत मानते होते तब तो इनको यहां पुरुच्छेपका शील न बतलाकर ईश्वरका स्वभाव बतलाना चाहिये था परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अतः स्पष्ट है कि निरुक्तकार पुरुच्छेप ऋषिको मन्त्र-कर्ता मानते थे। यदि आप पुरुच्छेपका अर्थ ही ईश्वर करें तब तो आपपर और भी आपत्तिका पहाड़ आकर गिर पड़ेगा। क्योंकि यह द्विरुक्त सब मन्त्रोंमें तो है नहीं, कुछ मन्त्रोंमें है। अतः जिनमें यह द्विरुक्त है वे ही मन्त्र ईश्वरकृत ठहरेंगे, अन्य नहीं। अतः यहां ईश्वर अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता। जो पाठक इस पुरुच्छेप ऋषिकी इस काव्य पटुताको देखना चाहें वे इस ऋषिके बनाये मन्त्रोंका दर्शन करें। उनको प्रत्यक्ष इस ऋषिके स्वभावका पता लग जावेगा। इसके मन्त्र, ऋग्वेद मं० १ सू० १२७ से १३९ सूक्त तक हैं।

इसी स्थान पर दुर्गाचार्य अपनी व्याख्या में लिखते हैं कि–

पुरुच्छेपस्य मन्त्रदृशः शीलम्
स हि नित्यमभ्यस्तैः शब्दैः स्तौति।

अर्थात् यह पुरुच्छेप मन्त्र-द्रष्टाका स्वभाव है। क्योंकि वह नित्य अभ्यस्त शब्दोंसे ही स्तुति करता है। जो लोग मन्त्र-द्रष्टा शब्द देखकर 'डूबतेको तिनकेका सहारा' इस कथनके अनुसार इसका सहारा लेते हैं, उन्हें यहां विशेष निराश होना पड़ेगा।

क्योंकि जो मन्त्र दर्शक होगा वह तो अपने नित्यके अभ्यस्त शब्दोंके अर्थको जाननेका प्रयत्न करेगा अथवा उसे जानेगा और यदि करेगा भी तो वह स्तुति वेदमें क्यों लिखी

जाती । अतः स्पष्ट है, कि पुरुच्छेप ऋषिने अपने नित्यके अभ्यस्त शब्दों द्वारा कविता बनाकर स्तुति की और वही स्तुति ऋग्वेदमें है । अत: जहाँ जहाँ मन्त्र-द्रष्टा ऋषि लिखा है, वहाँ वहाँ कर्ता अर्थ ही अभिप्रेत है । यह निश्चित होगया ।"

तथाच—वर्तमान समयके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् आचार्य सामश्रमी अपने 'निरुक्तालोचन नामक' ग्रन्थ में लिखते हैं कि—

"द्रष्टृत्वं कर्तृत्वञ्चाभिन्नमेव प्रायः, तत्र अतीव प्राचीनानामज्ञेय-कालिकानामेव कृते दृष्टमिति व्यवहारो नान्यत्रेत्येव विशेषः । तदिमानि "दृष्टं साम (४।२।७)"—इत्यादि पाणिनिसूत्रीयाणि "वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम" इत्यादीनि वृत्तिकृदुदाहरणानि द्रष्टव्यानि; तथैव "य आंगिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभूत्, स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्" इत्येवमादीन्यनुक्रमणी-वचनादीनि च । किञ्चितन्निरुक्तकारोऽप्याह तथा—"ऋषेरक्षपरि-द्यूतस्यैतदार्षम (६।५।४)" इति । "मत्स्यानां जालमापन्नानामेतदार्षम् (६।५।४)" इत्यादि च ।

दृष्टे तत्रैवार्थे कृत इति व्यवहारोऽपि नादृष्टचरः ।

तथा ह्यैतरेयके ब्राह्मणे—"देवाह वै सर्वचरो सत्रं निषेदुस्ते ह पाप्मानं नापजघ्निरे । तान् होवाचार्बुदः काद्रवेयः सर्प ऋषि-मन्त्रकृत् (६।१।१)" इति ।

निरुक्तेऽप्येवं दृष्टान्तो न दुर्लभः । तथाहि—"इदञ्चमेऽदादि-दञ्चमेऽदादित्यृषिः प्रसङ्ख्या ह सुवास्त्वा अधितुग्वनि (४।२।७)" इत्यादि च । यास्कपूर्वप्रवादा अप्यत्र सङ्गृहीताः सन्ति, तत्राप्यस्त्वेव कृतकत्वप्रसिद्धिर्मन्त्राणाम् । तथाहि—"तत्रेतिहासमाचक्षते"—विश्वामित्रऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव । ...... स वित्तं

गृहीत्वा विपाट्छुतुद्रयोः सम्भेदमादयावनुययुरितरे । स विश्वामित्रो नदीं तुष्टाव गाधा भवतेत्यपि, द्विवदपि बहुवत् (२।७।२)" इत्यादि । तथा—"धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा (३।१।७)" इति पाणिनीयस्य सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रसंगतो भगवता पतञ्जलिनापि भाषितम्—"ऋषिः पठति—'शृणोत ग्रावाणः' इति—इति । स्तवनपठनादिकञ्च कृतिविशेष एव; तदेवं मंत्रकर्तृत्वं मंत्रद्रष्टृत्वं च वस्तुतोऽभिन्नमिति स्फुटम् ।"

भावार्थ यह है, कि वैदिक साहित्य में दृश् धातु तथा कृ धातु अभिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुई हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अति प्राचीन कालिक महर्षियों के लिए ही कृत अर्थ में दृश् धातु का विशेष प्रयोग हुआ है । जैसे कि 'दृष्टं साम' वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं-साम' इत्यादि उदाहरण देखे जाते हैं । इसी प्रकार 'य आंगिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभूत्, स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्' इत्यादि सर्वानुक्रमणिका के प्रमाण भी इसी बात की पुष्टि करते हैं । तथा निरुक्तकारने भी 'ऋषेरक्षपरिद्यूतस्यैतदार्षम्, मत्स्यानां जालमापन्नानामेतदार्षम्' इत्यादि वाक्योंसे उक्त विषय को पुष्ट किया है । इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी कृत अर्थ में दृश् धातु का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है । निरुक्त आदिके वाक्यों से भी, जो कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इसी विषयकी पुष्टि होती है । तथाच (नि० ४।२।७) में यास्कने इसी विषयपर होनेवाले महर्षियोंके पूर्वप्रवाद भी संगृहीत किये हैं । इससे भी मन्त्रोंका ऋषिकर्तृत्व सिद्ध होता है । तथाच—(नि०२।७।२)में 'तत्रेतिहासमाचक्षते' आदिसे भी यही प्रकट होता है । इसी प्रकार 'धातोः कर्मणः' इत्यादि पाणिनीय सूत्रकी व्याख्या करते हुये भगवान् पतञ्जलिने भी 'ऋषिः पठति' आदिमें पठ् और श्रु आदि धातुओंका अर्थ भी कृत अर्थ ही माना है । इसलिये यह सिद्ध है, कि मन्त्रद्रष्टाका अर्थ मन्त्रकर्ता ही है ।

निरुक्तका एक और प्रमाण

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान् संयुक्ता (नि० १०।१०)

पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, जोकि आर्यसमाजमें एक तपस्वी एवं योग्य विद्वान् हैं। उन्होंने 'आर्यसिद्धान्तविमर्श' नामक पुस्तकमें जो कि आर्य सार्वदेशिक सभाने छपवाई है, 'निरुक्तकार और—वेदमें इतिहास' नामक लेखद्वारा प्रमाणित कियाहै—

आप लिखते हैं, कि "मन्त्रोंके अर्थोंमें जहाँ जहाँ आख्यान-इतिहास बनाये गए हैं वे सब उन उन ऋषियोंने ऐसा कहनेकी प्रीति-प्रेमके कारण बतलाये हैं।"

समीक्षा—मंत्रों के अर्थोंमें आख्यान-इतिहास बनाये गये हैं, यह भाव निरुक्तके किस पदसे लिया है, यह तो पण्डितजी जानें। सम्भव है 'ऋषेर्दृष्टार्थस्य' का यह भाव समझते हों। यदि ऐसा है तब तो हमें अत्यन्त खेद है। क्योंकि मेरी उनपर विशेष श्रद्धा है। अतः मेरा अपना विचार है, कि ऐसा नहीं है। क्योंकि मूलमें दृष्टार्थस्य, ऋषेः का विशेषण है। अतः दृष्टार्थ ऋषिका यह प्रेम है, कि वह किसी बातको आख्यानरूपसे वर्णन करे, यह ही इसका स्पष्ट अर्थ है। अब दृष्टार्थका झगड़ा रहता है। यहाँ मन्त्रद्रष्टाका अभिप्राय मन्त्रकर्तासे ही है, यह हम पूर्व ही सिद्ध कर चुके हैं। तथा च, यहाँ प्रीतिका अर्थ प्रेम करना भी भारी भूल है। यहाँ प्रीतिका अर्थ स्तुति है। यही अर्थ विद्यामार्तण्ड पं० सीतारामजी भिवानीनिवासीने अपने हिन्दी निरुक्तमें किया है। वास्तवमें तो जिस प्रकार पूर्वमें पुरुच्छेपका स्वभाव बतला चुके हैं, उसी प्रकार गृत्समद ऋषिका यह स्वभाव है; कि वह अपनी कविता आख्यानरूपमें बनाता है। तथा उनमें वह इन्द्रादिक ऐतिहासिक

पुरुषोंका भी वर्णन करता है। दृष्टार्थका अभिप्राय यह भी है, कि जिसने मन्त्रोक्त देवताकी गति आदिका अनुभव किया और पश्चात् उसका अपनी कवितामें वर्णन कर दिया। अतः मन्त्रकार और मंत्रद्रष्टाका एक ही अर्थ है। यदि आपके अर्थको स्वीकार करें तो भी आपके स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती। क्योंकि मन्त्रोंके अर्थोंमें जो इतिहास बनाये हैं, वे किसने बनाये हैं? तथा मन्त्रोंके अनुकूल बनाये हैं अथवा प्रतिकूल? यदि कहो ईश्वरने बनाये हैं, तब तो आपके सिद्धान्तकी हानि। यदि ऋषियोंने बनाये हैं, तो क्या मंत्रों के अनुकूल बनाये हैं? यदि हाँ! तब तो वे इतिहास मंत्रोंके ही होगये। यदि कहो प्रतिकूल बनाये हैं, तो आपकी परिभाषामें ऋषिका अर्थ, मंत्र प्रतिकूलार्थ द्रष्टा हुआ। जोकि आपको मान्य न होगा। जहाँ तक इसपर तर्क उठाया जावे वहीं तक आपके सिद्धान्तकी कलई खुलती है। यदि हम इन सब प्रश्नोंको न भी करें तो भी एक और प्रश्न रहता है। और वह यह है कि वे अर्थ कहां हैं? जिनमें इतिहास बनाये गये हैं? यदि कहो, मन्त्रोंमें ही वे अर्थ हैं तब तो हमारे मतकी पुष्टि। और यदि कहो, कि अन्य स्थानोंमें हैं, तब निरुक्तकार तो मन्त्रका उदाहरण देता है। इसलिए आपका कथन निरुक्त-विरुद्ध है।

यह गृत्समद ऋषि मं० २ सू० २, ३ तथा ८ से २६ तक, तथाच सू० ३० से ४२ तक सूक्तोंका यही ऋषि है। इसके काव्यकी यह विशेषता, जो हमने बतलाई है वह उस जगह प्रत्यक्ष दीखती है।

अतः जो हमने अर्थ किया है 'इस ऋषिका ऐसी कविता बनाने का यह शील है' यही अर्थ निरुक्तकारकी मनसाके अनुकूल है। तथाच-

वृहदारण्यकोपनिषद्में एक कथा आई है, जिसमें लिखा है, कि एक समय श्वेतकेतु पाञ्चाल-परिषद्में गया। वहां उसने कुछ प्रश्न किये। उनका उत्तर देते हुए ऋषिने कहा है कि—

अपि न ऋषेर्वचः श्रुतम् ।

अभिप्राय यह है, हमने ऋषिका वचन सुना है, यह कह कर 'द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्' (ऋ० १०।८८।१५) यह मन्त्र कहा है, उपस्थित किया गया है। अतः मन्त्र ऋषिकृत हैं, न कि ईश्वरकृत ।

तथाच, यस्य वाक्यं स ऋषिः, सर्वानुक्रमणिका आदिमें भी भी स्पष्ट कहा है। किं बहुना, पं० शिवशङ्कर 'काव्यतीर्थ', जो कि आर्य विद्वानोंमें शिरोमणि माने जाते थे, उन्होंने 'वैदिक इतिहासार्थ-निर्णय' में वेदोंको ईश्वर-कृत सिद्ध करनेके लिये अपनी संपूर्ण शक्तिका व्यय किया है। इस पुस्तकसे उनका विशाल पाण्डित्य प्रत्यक्ष सिद्ध है। आगे चलकर इसी पुस्तकके पृ०१३० पर यह लिखा है, कि 'अगस्त ऋषि प्रार्थना करते हैं, अर्थात् ये मन्त्र अगस्त ऋषिकी प्रार्थनारूप काव्य हैं।' यद्यपि उनके मतमें ऋषिके अर्थ प्राणके हैं, परन्तु ये वाक्य तोअगस्त ऋषिके हैं। यह तो उन्होंने मान ही लिया है।

इन उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध होगया, कि वेदोंके कर्ता अनेक ऋषि हैं। ऐसा सिद्ध होनेपर पं० भगवद्दत्तजी बी० ए०ने "ऋग्वेदपर व्याख्यान" नामक पुस्तकमें एक नई युक्ति दी है। आप लिखते हैं कि—

"मन्त्रकार आदि शब्दोंके अर्थ मन्त्र बनानेवाला नहीं करना चाहिये, क्योंकि हम लोकमें सुवर्णकार आदि शब्दोंको देखते हैं, तो क्या ये लोग सुवर्णको बनाते हैं, इसी प्रकार यहाँ 'मन्त्रकार' शब्द है। अतः 'मन्त्रकार' का अर्थ यह हुआ—

१—मन्त्र तथा मन्त्रार्थका अध्यापक।

२—मन्त्रों को लेकर विनियोग करनेवाला।

३—यज्ञादिकमें मन्त्रोंके प्रयोजनका निर्देश करनेवाला।

४—प्राचीन मन्त्रोंको लेकर उनका नया जोड़-तोड़कर उनका विशेष भाव बतलानेवाला।

तथाच—ऋषिकृत, तनूकृत, ज्योतिषकृत, पुरुकृत, मासकृत, पथिकृत, स्तेयकृत आदि वैदिक शब्दोंका भी कहीं किसी गुण और कहीं किसी द्रव्यको प्रगट करनेका भाव मिलता है। अतः यहाँ भी ग्रंथकार आदि शब्दोंसे आपके भाव नहीं लिए जा सकते।"

यह कथन उनके मतकी पुष्टि नहीं करता, अपितु उनका विरोधी है। क्योंकि सुवर्णकार न तो सोनेका अध्यापक है और न सुवर्णार्थ का। तथा ना ही सोनेका विनियोग बतलाता है और न उसका प्रयोजन, न उसका विशेषभाव। यह बातें तो सर्राफ आदि भी बता देते हैं। किन्तु उनको सुवर्णकार नहीं कहा जाता। सुवर्णकार तो सुवर्णको नये रूप (आभूषण आदि)में परिवर्तित कर देता है। इसीलिए वह सुवर्णकार कहलाता है। किन्तु उनके ऋषि तो एक मन्त्रके एक अक्षरको भी इधर उधर नहीं कर सकते। ग्रंथके अध्यापकको ग्रंथकार कहना भारी भूल है। इसी प्रकार अन्य (ऋषिकृत आदि) शब्दोंसे भी आपका अभिप्राय सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि एक मनुष्यको शिक्षा देकर विद्वान् बनानेवालेको ऋषिकृत कहना बिलकुल उसी अर्थमें है जिस अर्थमें हम मन्त्रकारका अर्थ ले रहे हैं। कुम्भकार, अयस्कार, सुवर्णकार, ग्रंथकार, चित्रकार आदि शब्दोंका अर्थ है—कारणरूपसे वस्तुको कार्यरूपमें परिणत करनेवाला। बस, यहाँ भी यही अर्थ है। अर्थात् अपने भावोंको कवितारूपी शब्दोंमें प्रकट करनेवाला, शब्दोंको बनानेवाला नहीं, अपितु शब्दोंको कवितारूपमें करनेवाला है। यही भाव अन्य ग्रंथकारोंके लिये भी है। फिर ये मन्त्र तो ईश्वरकृत माने जावें अन्य ग्रन्थ न माने जावें, यह पक्षपात क्यों? पं० भगवद्दत्तजीकी दो

बातें यहाँ विचारणीय हैं। एक तो प्राचीन मन्त्रोंको लेकर नया तोड़-जोड़कर उनका विशेषभाव बतलाना। दूसरे आपने चित्रकार, ग्रंथकार, सूत्रकार आदि शब्दोंमें भी उदाहरण दिये हैं। आपका कथन है कि—"यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जावे तो संसारमें नूतन वस्तु कोई उत्पन्न ही नहीं होती। सब पदार्थोंमें रूपका-परिवर्तन मात्र किया जाता है। अतः उन उन प्रतीत होनेवाले पदार्थोंके कर्ता वास्तवमें उन उन पदार्थोंका तोड़-जोड़ करनेवाले होते हैं।"

इस प्रकार पं०जीने अपने कथनसे यह सिद्ध कर दिया कि मन्त्रकारका अर्थ वही है जो चित्रकार, ग्रंथकार, कुम्भकार आदिका है। हम भी मन्त्रकार शब्दका अर्थ यही लेते हैं।

जिस प्रकार एक कुशल चित्रकार अनेक रङ्गोंके मेलसे एक चित्र बना देता है अथवा जिस प्रकार पण्डितजीने अनेक ग्रन्थोंका तोड़ जोड़ कर (ऋग्वेदपर व्याख्यान) यह ग्रन्थ बना दिया है और आप ग्रंथकार कहलाते हैं। इसी प्रकार अनेक मन्त्रोंका अथवा शब्दोंका तोड़-जोड़ करके जो 'नये प्रतीत होनेवाले मन्त्र बनाते थे, उन ऋषियोंका नाम मन्त्रकार है।' हम भी इसी अर्थमें मंत्रकार शब्दका अर्थ लेते हैं, तथा अन्य सभी विद्वानोंने भी इसी अर्थका आश्रय लिया है।

एक प्रश्न यहाँ और भी उठता है, कि यदि अध्यापक अथवा प्रचारक आदि लोग मन्त्रकर्ता कहलाते हैं तो आजकलके आर्य-पण्डित अथवा भजनीक आदि सभी मन्त्रकर्ता कहलाने चाहियें। तथा अबसे पूर्व भी असंख्य विद्वान्, प्रचारक, अध्यापक, भाष्यकार लेखक कण्ठस्थ करनेवाले होचुके हैं। उन सबको भी मन्त्रकारकी उपाधि क्यों न मिली? दुःख तो यह है, कि वेदोंके ज्ञाता अनुपम प्रचारक महर्षि दयानन्दको भी वेदकारकी उपाधि प्रदान नहीं की गई। इस कञ्जूसीका क्या कारण है, यह समझमें नहीं आता।
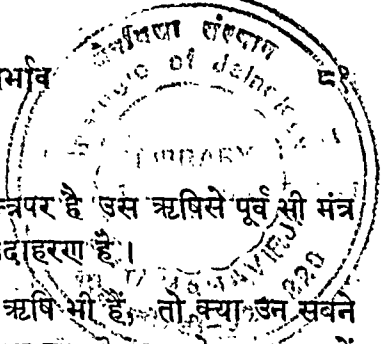
आगे आप लिखते हैं कि—

"जिस ऋषिका नाम जिस मन्त्रपर है उस ऋषिसे पूर्व भी मंत्र थे ? यथा अजीगर्त कक्षीवानका उदाहरण है।

तथाच—एक मन्त्रके अनेक ऋषि भी हैं, तो क्या उन सबने मिलकर यह मन्त्र बनाया था। तथा एक ही मन्त्र जो स्थानान्तरमें या अन्य संहितामें आता है तो उसका ऋषि भी पृथक् होता है वह मन्त्र किस ऋषिका बनाया हुआ मानोगे ?"

उपर्युक्त प्रश्न उसी समय हो सकते हैं जब हम यह मानते हों, कि जिन मन्त्रोंपर ऋषियोंका नाम लिखा है उन मन्त्रोंके बनानेवाले वे ही ऋषि थे। हमारे सिद्धान्तानुसार तो जब मन्त्रोंका संग्रह होता था उस समय जिस ऋषिद्वारा जो मन्त्र प्राप्त होता था उस का नाम उस मन्त्रपर लिख दिया जाता था। चाहे वह बनाने वाला हो या रक्षक हो। हमारे सत्य-सिद्धान्तके आगे पूर्वोक्त प्रश्नोंका कुछ भी सार नहीं है।

रहस्यमय एक प्रमाण

तान्वासतान्संपातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्
तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवोऽसृजत्
स हे र्वां चक्रे विश्वामित्रो यान्वाहं सम्पातान्
दर्शयंस्तान् वामदेवोऽसृजत् कानिन्वहं हि
सूक्तानि सम्पातान् तत्प्रतिमान् सृजेयमिति ।

(गो० उ० प्र० ६ कं० १)

अर्थ—ऋग्वेदके सम्पात सूक्तको विश्वामित्रने पहले देखा (बनाया) परन्तु वामदेवने उनको बना दिया, (अर्थात् अपने नाम

से प्रगट कर दिया कि यह सूक्त मैंने वनाया है) विश्वामित्रने विचार किया, कि अव मैं कौनसे मन्त्रोंका सम्पात नामसे वनाऊँ, तो उसने दूसरे मन्त्रोंका सम्पात नामसे वनाया। उपर्युक्त प्रमाणसे निम्न लिखित वातें स्पष्ट होजाती हैं।

१—दृश् धातुका अर्थ वनाना है, क्योंकि अपश्यत् तथा असृजत् शव्दोंका यहाँ एक ही अर्थ है।

२—एक व्यक्तिके वनाये हुए मन्त्रोंका दूसरा ऋषि अपने नाम से प्रगट कर देता था, जैसा कि आज कल भी क्षुद्र लोग करते हैं।

आगे पण्डितजीने अपनी पुस्तक "ऋग्वेदपर व्याख्यान" में निम्नलिखित आक्षेप भी लिये हैं—

१—मंत्रकारका अर्थ है—विचारकर्ता, अर्थात् 'मन्त्र' के अर्थ 'विचार' के हैं। दूसरे यदि मन्त्रकृत शव्दका अर्थ—मन्त्र वनाने वाला करोगे तो—मन्त्रकृतोवृणीते, "यर्थर्षिमन्त्रकृतो वृणीते" इति विज्ञायते, (दक्षिणस्त उदङ्मुखो मन्त्रकारः) 'पारस्करगृह्यसूत्र' इत्यादि सूत्रोंमें आये हुए मन्त्रकार, मन्त्रकृत आदि शव्दोंका क्या अर्थ होगा? यदि यहाँ भी मन्त्रकृतका अर्थ 'मन्त्र वनानेवाला' ही करोगे तव तो वेद इन सूत्रग्रंथ-कालमें वनते थे—ऐसा मानना पड़ेगा। परन्तु यह मत किसी भी ऐतिहासिक विद्वान्‌को स्वीकृत नहीं हो सकता। यदि अन्य अर्थ लोगे, तो जो अर्थ यहाँ ग्रहण करते हो वही अर्थ, वेदोंमें तथा व्राह्मण ग्रंथोंमें आये हुए मन्त्रकृत आदि शव्दोंका करना उचित है।

समीक्षा—विद्वान् लेखकने पूर्वपक्ष कुछ थोड़ेसे मंत्रोंको रखकर वड़ी वुद्धिमानीसे उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है, वेदविषयक स्वाध्याय भी आपका अपरिमित है, यह भी

निर्विवाद है। परन्तु हम तो सत्यकी गवेषणाके लिये उसपर परीक्षककी दृष्टिसे विचार कर रहे हैं।

१—आपका यह कथन कि पूर्वपक्षमें दिये जाने वाले प्रमाणों में मंत्र शब्दका अर्थ 'विचार' है यह एक प्रकारका वाक्छल प्रतीत होता है, मैं इस कार्यको पण्डितजीके योग्य नहीं समझता हूँ।

किं बहुना, महर्षि दयानदजीने भी—"अयं स्तोमो देवाय जन्मने विप्रेभिः अकारि रत्नधातमः" इस मन्त्रके भाष्यमें स्तोमका अर्थ 'स्तुति' समूह तथा अकारि का अर्थ 'करते हैं' ऐसा ही किया है।

तथाच—मन्त्र शब्दका अर्थ 'विचार' वैदिक साहित्यमें उपलब्ध नहीं होता। ब्राह्मण ग्रंथोंमें स्पष्ट लिखा है कि—

"वाग्वै मन्त्रः" (श० ६।४।१।७)

"ब्रह्म वै मन्त्रः" (श० ७।१।१।५)

"वाग्धि मन्त्रः" (श० १।४।४।११)

अर्थात् वाक् ही मन्त्र है। यहाँ वाक् शब्दसे भी वेद ही गृहीत है। उपर्युक्त प्रमाणोंमें ही 'वै' आदि शब्दोंका प्रयोग करके ऋषिने अन्य अर्थका स्पष्ट खण्डन कर दिया है।

तथाच—ब्रह्मकृत आदि अनेक शब्द हैं जो कि मन्त्रके ही अर्थों में हैं, उनको आपने पूर्वपक्षमें रखनेकी कृपा की है। यहां ब्रह्मका अर्थ ईश्वर नहीं हो सकता, तथा ना ही विचार हो सकता है। अतः तन्त्रकृत आदि शब्द जो वेदोंमें आये हैं उनका अर्थ विचार करनेवाला कदापि नहीं हो सकता। इन प्रमाणोंको हम आगे रखेंगे। जिससे पाठक स्वयं जान जायेंगे कि पण्डितजीका अर्थ, अर्थ कहलानेका अधिकारी नहीं है। विशेष क्या, मन्त्र शब्दका 'विचार' अर्थ अत्यन्त नवीन है, जो कि वेद-मन्त्रोंके आधारपर ही निर्मित किया गया है।

अभिप्राय यह है, कि वैदिकसाहित्यमें मन्त्रका अर्थ 'वेद-मंत्र' ही है था और है। परन्तु जिस समय इनका ही अधिक विचार होता था उस समय लोगोंने मन्त्रके अर्थ 'विचार' कर दिये। अतः वेदोंमें आये हुए मन्त्रके अर्थ 'विचार' कदापि नहीं होसकते।

दूसरा समाधान भी आपके अभिप्रायकी पुष्टि नहीं करता क्योंकि श्रौत सूत्रोंमें जो मन्त्रकार आदि शब्द आये है वे रूढिवाद को लेकर आये हैं -अर्थात् पूर्व समयमें उस क्रियाके लिए मन्त्र बनानेवालेका ही वरण होता था, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु बादमें यह रूढ़ि पड़ गई कि प्रत्येक यज्ञमें, प्रत्येक कालमें उसका वरण करने लगे। इसलिये इससे तो आपके सिद्धान्तकी हानि ही होती है, पुष्टि किसी भी प्रकार नहीं होती।

तथाच—आपके कथनानुसार भी मन्त्रकारका अर्थ है—"मंत्र-प्रष्टा"। जैसा कि आपने इसी पुस्तकमें लिखा है, तो क्या आप इस समय मंत्रद्रष्टा ऋषियोंका सद्भाव मानते हैं। यदि हां, तब तो उनका नाम प्रकट करनेकी कृपा करनी चाहिये। यदि नहीं, तो इस समय मंत्रकार कहकर किसका वरण करते हैं?

यदि कहो विचारकका, तब तो खण्डन-मण्डन करनेवाले सभी विचारक हैं। पुनः विशेषता क्या रही, तथा मण्डन करनेवालोंके भी अनेक सम्प्रदाय हैं। उनमें किस सम्प्रदायके व्यक्तिका वरण करोगे? यदि आर्यसमाजका, तो क्यों?

तथाच —समाजमें भी अनेक प्रकारके विचारक हैं। कोई वेदोंमें मिलावट मानता है कोई नहीं मानता, कोई एक ऋषिपर प्रगट हुए मानता है, कोई चारपर, कहां तक लिखें? "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" है। इसलिये यह युक्ति भी आपके पक्षका पोषण नहीं करती। तथा निरुक्तकारने इसको स्पष्ट कर दिया है, कि ऋषि, मन्त्रोंके कर्ता थे, उनके अध्यापक आदि नहीं थे।

तथाच—आगे पं० भगवद्दत्त जीने 'ऋग्वेद पर व्याख्यान' अपनी पुस्तकमें वेदको ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करनेके लिए वामदेव सूक्त का आश्रय लिया है, इसीके बलपर आपने मोटे अक्षरों में लिखा है कि:—

"ऋग्वेद, शब्दार्थ सम्बन्धरूपसे किसी मनुष्यकी कृति नहीं।"

अर्थात्—आपको इस प्रमाण पर बड़ा अभिमान है; हम भी उस पर पूर्णरूपसे विचार करते हैं। (ऋग्वेद, मं० ४ सू० १–४१) तक तथा (४५ से ४८ तक) सूक्तोंका ऋषि वामदेव है; इन्हींमें वे सम्पात सूक्त भी हैं। जिनको विश्वामित्रने बनाया था और वामदेव ने अपने नामसे प्रगट कर दिया था। पं० भगवद्दत्तने ऋग्वेद मं० ४ सू० २६ के ३ मंत्रोंको अपनी पुस्तकमें लिखा है, तथा उन पर किये गये पाश्चात्य विद्वानोंके भाष्यकी एवं सायणाचार्यादि भारतीय विद्वानोंके भाष्यकी समालोचना की है, तथा श्री स्वामी दयानन्दजीके भाष्यको ही सर्वोत्तम बतलाकर यह सिद्ध किया है कि वे ईश्वरकृत हैं।

हम भी पाश्चात्य विद्वानोंके भाष्योंके तथा भारतीय विद्वानोंके भाष्योंके अनुयायी नहीं हैं। अतः हमको उस विषयमें कुछ नहीं लिखना। परन्तु स्वामीजीके भाष्यकी विवेचनात्मक दृष्टिसे परीक्षा करनी है। स्वामीजीका भाष्य निम्नप्रकार है:—

स्वामी भाष्य—

१—"हे मनुष्यो ! जो मैं सृष्टिको करने वाला ईश्वर, विचार करने और विद्वान्के सदृश सम्पूर्ण विद्याओंके जानने वाला और सूर्यके सदृश सबका प्रकाशक हूँ और मैं सम्पूर्ण सृष्टिकी कक्षा अर्थात् परम्परामें युक्त, मन्त्रोंके अर्थ जानने वालेके सदृश बुद्धिमान् के सदृश सब पदार्थोंके जानने वाला हूँ, और मैं सरल विद्वान्से

उत्पन्न किये हुए वस्त्रको अत्यन्त सिद्ध करता हूँ, और मैं सबके हित की कामना करता हुआ सम्पूर्ण शास्त्रोंको जानने वाला विद्वान् हूँ उस, मुझको तुम देखो !"

२—"हे मनुष्यो ! जो सबका धारण करने और सबका उत्पन्न करने वाला मैं ईश्वर धर्म्मयुक्त, गुण, कर्म, स्वभाव वालेके लिए पृथ्वीके राज्यको देता हूँ, मैं देने वाले मनुष्यके लिए वर्षाको प्राप्त कराऊँ, मैं प्राणों व पवनोंको प्राप्त कराऊँ, जिस मेरी कामनाको करते हुए विद्वान् लोग बुद्धिको जाननेके लिए अनुकूल प्राप्त होते हैं उस, मुझको तुम देखो !"

३—"हे मनुष्यो ! जो मैं आनन्द स्वरूप और आनन्द देने वाला मैं जगदीश्वर प्रथम मेघके अत्यन्त असंख्यात उत्तम वेशों वा प्रवेशोंसे उत्पन्न निन्नानवे पदार्थोंके साथ प्रेरणाको करूँ, सबमें ही मिलने योग्य जगत्में जिस विज्ञानस्वरूप प्रकाशके देने वाले अतिथियोंको प्राप्त हो वा प्राप्त करावे, उसकी रक्षा करूँ। उस मेरी उपासना करो और वह आनन्दयुक्त होता है।"

इसपर पण्डितजीकी सम्मति

"यही एक अर्थ है जो पूर्वोक्त सब आक्षेपोंसे रहित है। इसपर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। इसके अनुसार इन मन्त्रोंकी रचना किसी ऋषिकी नहीं की जा सकती, प्रत्युत यह रचना तो ऋषि परमर्षि परमात्माकी अपनी है।"

हमारी भी इच्छा नहीं होती कि इसपर कुछ आक्षेप करें; इसके दो कारण हैं—

१—यह भाष्य महर्षि दयानन्दजीका है, जिसमें मेरी अत्यन्त श्रद्धा है।

२—मेरे मित्र पं० भगवद्दत्तजीका यह आग्रह है, कि इसपर कोई आक्षेप नहीं हो सकता।

भला इसपर आक्षेप करके कौन अपने मित्रका क्रोधभाजन बने, परन्तु सत्यकी रक्षार्थ इसपर विचार करना ही पड़ता है।

१—इस भाष्यसे ईश्वरका ईश्वरत्व कुछ भी नहीं रहा, क्योंकि इसमें ईश्वरको विद्वान्के सदृश ज्ञाता, विचारक, मन्त्रार्थ जानने वालेके सदृश, बुद्धिमान्के सदृश जानने वाला, सब शास्त्रोंको जाननेवाला ही ईश्वर है, तो साधारण पुरुषमें और ईश्वरमें क्या अन्तर है? इसमें एक बात और विचारणीय है, कि इसमें ईश्वरकी उपमा विद्वानोंसे दीगई है, जिसमें ईश्वरसे तो विद्वान् ही श्रेष्ठ सिद्ध होगये। अस्तु; जो हो।

परन्तु फिर भी यह कैसे सिद्ध होगया, कि ये मन्त्र ईश्वर-रचित हैं। क्या इसलिए कि इस भाष्यमें ईश्वर, अपने आप ही प्रशंसा करता है जो कि स्व-आत्मप्रशंसाके सिवाय कुछ गौरव नहीं रखती।

३—यदि इसी प्रकारके भाष्योंसे कोई पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान हो सकती है तो संसारमें एक भी पुस्तक ऐसी नहीं बचेगी जिसको ईश्वरकृत न कहा जा सके। यदि संदेह हो तो परीक्षा करके देख सकते हैं। फिर इन्हीं पुस्तकोंमें ऐसी क्या विशेषता है जिससे इन को तो ईश्वरकृत माना जावे तथा औरोंको न माना जावे।

४—धर्मयुक्त गुणकर्म स्वभाववालोंको यदि ईश्वर पृथ्वीका राज्य देता है तो आर्यसमाजपर उसकी क्रूर-दृष्टि क्यों?

५—पवनों वा प्राणोंको ईश्वर किससे प्राप्त कराता है तथा किसको आज्ञा देकर कराता है। अथवा उससे प्रार्थना करके कराता है किंवा लोभ, लालच देकर कराता है।

६—वे निन्यानवे पदार्थ कौनसे हैं जिनके साथ ईश्वर प्रेरणा

करता है। तथाच अत्यन्त उत्तम वेश था प्रवेश क्या हैं, जिनमें ईश्वर प्रेरणा करता है। ये पदार्थ निन्यानवे ही क्यों रखे? पूरे १०० तो कर देने चाहियें थे। प्रतीत होता है, इन मन्त्रोंका ईश्वर सौ तक गिनती नहीं जानता था।

पं० भगवद्दत्तजीने प्रयत्न किया, कि उपर्युक्त भाष्यकी कमियों को पूरा किया जावे, इसीलिये उन्होंने अपनी इस पुस्तकमें भाष्यके सम्पूर्ण शब्द न लिखकर संक्षेपमें लिखा है। अब हम मन्त्र तथा उनका स्पष्टार्थ करते हैं—

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवान् ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यतामा ॥१॥
अहं भूमिमददामार्य्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन् ।२।
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नवसाकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ।३।

(ऋ० मं० ४ सू० २६)

१—अर्थ—मैं पहले मनु हुआ, सूर्य हुआ, तथा कक्षीवान् ऋषि हुआ, विद्वान हुआ। मैं आर्जुनेय कुत्स हुआ, मैं उशना कवि हुआ, मैं सब कार्य्योंको सिद्ध करनेवाला हूँ। मुझको देखो।

२—मैंने खेती करनेवालोंको भूमि दी, मैंने दानी पुरुषको अन्न दिया। (वृष्टि नाम अन्नका है)। (गो० प० ४१४।५)

मैं तेज धारण कराऊँ, देवता लोग मेरी इच्छाके अनुकूल चलें।

३—मैंने सोमके प्रतापसे शम्बर (असुर) के निन्नानवे पुरोंको एक साथ नष्ट किया, मैंने दिवोदासके १०० नगरोंकी सब ओरसे रक्षा की।

यह है सरल और स्पष्ट अर्थ, उपर्युक्त मन्त्रोंका। अब वाचक-वृन्द अपने आप परिणाम निकाललें कि उपर्युक्त वाक्य किसके हैं। इन मन्त्रोंमें आये हुए प्रत्येक शब्दसे ऐतिहासिक पुरुषोंके नाम प्रगट होते हैं, परन्तु फिर भी बिलकुल स्पष्ट करनेके लिए मन्त्रकार ने कुछ शब्द ऐसे रखे हैं, जिससे किसी प्रकारका सन्देह न रहे। यथा, कक्षीवान् ऋषिरस्मि, आर्जुनेयकुत्स, उशनाः कवि दिवोदास, शम्बरके निन्नानवे किले अथवा नगर।

उपर्युक्त सभी नाम प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषोंके हैं, कक्षीवान् को तो स्वयं वेद भगवानने बतलाया है। 'ऋषि' का अर्थ ईश्वर करना वैदिक-साहित्यसे विपरीत है। तथाच—कक्षीवान्को ताँड्य-ब्राह्मणमें 'औशिजः' व्यक्ति विशेष लिखा है। इसके पिताका नाम दीर्घतमा था, यह प्रसिद्ध ही है। जिसको सायण भाष्यमें देख लें।

२—कुत्सके लिए निरुक्तमें स्पष्ट 'ऋषिः कुत्सो भवति' लिखा है जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। तथाच—उशना कवि भी प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं, (कविनामुशना कविः) गीतामें लिखा है। दिवोदास, शम्बर असुर, तथा उसके नगर आदिका नाश, ये सब प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनायें हैं, जो कि दाशराज्ञ युद्धके समय घटी थीं।

तथाच—इनसे ईश्वरका ग्रहण नहीं हो सकता। क्योंकि किसी भी संस्कृत पुस्तकमें ईश्वरका वर्णन उपर्युक्त नामोंसे नहीं आया। परन्तु हमारे अर्थकी पुष्टिमें सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य विद्यमान है। अब रह गया यह प्रश्न कि ये बातें इस ऋषिने कहाँ कहीं और कैसे कहीं? इसके विषयमें सभी भाष्यकारोंने भारी भूल की है। अतः हम सबसे प्रथम इस भ्रमके उस मूलकारणको आपके सन्मुख रखते हैं।

गर्भे नु सन्न वे वाम वेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुरा अयसी रक्षन्नधश्येनो जवसा निरदीयम् ॥

अर्थात्—ऋषि कहता है कि मैंने इन देवोंके सम्पूर्ण जन्मोंको गर्भमें जाना । धातुके १०० किलोंने मेरी रक्षा की । अब मैं श्येन की तरह उपस्थित हूँ, मैं जोरसे निकल आया । श्री स्वामीजी महाराजने तो इन मन्त्रोंके अर्थमें बड़ी भारी भूलकी है । यथा— (मं० ४ सू० २७ मं० १) का स्वामी भाष्य—हे मनुष्यो ! जैसे मैं विद्वान्, गर्भमें वर्तमान इन श्रेष्ठ पृथ्वी आदि पदार्थ वा विद्वानोंके सम्पूर्ण जन्मोंको अनुकूल जानता हूँ, जिस मेरी सुवर्ण वाली वा लोह वाली सौ नगरी रक्षा करती हैं । इसके अनन्तर सो मैं बाज-पक्षीके सदृश इस शरीरसे अत्यन्त वेगके साथ शीघ्र निकलूँ ।

समीक्षा—प्रथम तो स्वामीजीने ईश्वरको विद्वान् बनाकर गर्भमें स्थित कर दिया । यह अच्छा किया । क्योंकि यह स्वतन्त्र रहकर विशेष उद्दण्ड होगया था । कभी विहारमें भूचाल उत्पन्न कर देता था तो कभी क्वेटामें, ऐसे उपद्रवीकी स्वतन्त्रता छीनकर स्वामीजीने बुद्धिमानी हीका काम किया है । परन्तु इसको यहाँ चैन कहाँ है, इसीलिए बाजकी तरह अत्यन्त वेगके साथ अत्यन्त शीघ्र भागना चाहता है । हमारी सम्मतिमें तो ऐसे खतरनाक व्यक्तिको इस जेल से निकलने नहीं देना चाहिये । यदि निकल जाये तो जमानत ले लेनी चाहिये । ऐसा न हो कि अबकी वार यह हाथ ही न आवे और संसार दुःखी हो जावे ।

दूसरे यह विद्वान् गर्भमें स्थित ही पृथ्वी आदिके और विद्वानों के जन्मोंको अनुकूल जानता है । यदि ऐसा है तो पं० भगवद्दत्तजी ने व्यर्थ ही (सायण पर रोष प्रगट करनेके लिए) कई पृष्ठ काले किये । एक आश्चर्य है कि इस विद्वान्ने विद्वानोंके ही जन्मोंको अनुकूल क्यों जाना ? क्या मूर्ख लोग इसके अनुकूल नहीं हैं ?

एक बात यह बतलाना और भूल गये—कि इसने यह नहीं बतलाया कि किस देशके विद्वानोंको अनुकूल जानता है ? और न किसी भाषाका संकेत किया। सम्भव है गर्भके दुखोंके कारण सम्पूर्ण बातें न बता सका हो। इन्हीं दुःखोंके कारण तो यह भागना चाहता है।

३—लोहे या सोनेके १०० नगर (शहर) रखा करते हैं। यह १०० शहर वह भी लोहे या सोनेके इस विद्वान्की माताके पेटमें बतलाते हुए स्वामीजीको इतना विचार कर लेना चाहिए था कि वह बेचारी किस प्रकार जीवित रहेगी। मालूम नहीं एक-एक नगरीमें कितने-कितने आदमी थे तथा कितने पशु-पक्षी थे। प्रतीत होता है इन नगरियोंका राजा कोई नहीं था। लावारिस माल था इसीलिए ये नगरियाँ उठाकर ऐसे सुरक्षित स्थानमें रखी गई हैं। अथवा डाकुओंके भयसे ऐसा किया गया होगा।

अब, जब वेद ही इस बातको लिख रहा है कि यह ज्ञान गर्भमें हुआ तो पण्डितजीको सायणपर इतना क्रोध क्यों आया। इन मन्त्रोंमें गर्भ और श्येन ये दो शब्द ऐसे हैं जिनमें सम्पूर्ण गुप्त रहस्य निहित है। मेरी तो धारणा है कि इन शब्दोंमें वेदके बहु-भागका रहस्य भरा हुआ है। अतः हम इन शब्दोंके भावको एवं अभिप्रायको प्रथम दर्शाते हैं।

१—स्वामीजीने, सायणने तथा अन्य विद्वानोंने भी यहाँ गर्भके अर्थ माताके गर्भके ही समझ लिये। इसीलिये सम्पूर्ण बातें अस्त-व्यस्त और बेशिर पैरकी लिखी गईं जिससे वेद वचोंका मजाक सा बन गया। इसमें वेदको ईश्वरीय ज्ञानके वायुयानपर चढ़ानेवालोंकी ही अधिक कृपा है।

गर्भ—वास्तवमें यहां गर्भके अर्थ सम्वत्सरके हैं जिसका वर्णन हम विस्तारपूर्वक करेंगे। अब तो संक्षेपसे इस विषयमें प्रमाण देते

हैं। यथा—सम्वत्सरो वाच गर्भाः पञ्चविंशः, तस्य चतुर्विंशतिरर्ध-मासाः सम्वत्सर एव गर्भाः पञ्चविंशति। (श० ८।४।१।१६)

अर्थात्—सम्वत्सर गर्भ है, २५ (पचीस), जिसके २४ तो अर्ध-मास हैं, और यह पच्चीसवां विशेष, इसी विशेषमें यह यज्ञ होता था, तथा उस समय बड़ी २ सभायें होती थीं और कविसम्मेलन भी होता था, इन सब बातोंका वर्णन हम विस्तारपूर्वक सप्रमाण आगे करेंगे, पाठक आगेके पृष्ठोंपर देखें। इसी यज्ञको देवोंका जन्म कहते थे; क्योंकि इससे विद्वान् उत्पन्न होते थे। बस, इसी यज्ञमें अर्थात् सम्वत्सरमें इस मन्त्रकर्ता ऋषिको उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओंका ज्ञान हुआ था, तथा विद्वानों (कक्षीवान् आदि) के जीवन-चरित्र भी उसने सुने थे। अर्थात् गर्भसे अभिप्राय है सम्वत्सरमें होनेवाली सभायें। ये सभायें युगान्तरमें अर्थात् चौथे वर्षमें होती थीं, इसी चतुर्थ वर्षका नाम सम्वत्सर है।

श्येन—अब रह गया श्येन, जिसके अर्थ हैं चन्द्रवंशियोंमेंसे निकलकर सूर्यवंशियोंमें आ मिलना, यथा—

यदाह श्येनोऽसि इति, सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वा अस्मिंल्लोके संश्यायति।

(गो० पू० ५।१२)

अर्थात् तू श्येन है यह कहता है, तो वह सोमकी प्रशंसा करता है, क्योंकि यह सोम ही अग्नि होकर (श्येनरूपसे) इस लोकमें घूमता है। अर्थात् जो सोम अग्नि होकर लोकमें चलता (घूमता) है, उसे श्येन कहते हैं। अभिप्राय यह है कि जो सोमवंशी, सूर्यवंश के पक्षमें जा मिलते थे उनको श्येन संज्ञा थी, उन्हींमेंसे वामदेव भी एक था। जिसने अपनेको कहा कि मैं श्येनरूपसे उपस्थित हूँ। प्रकृत विषय यह है कि यहां गर्भके अर्थ हैं सम्वत्सरमें होनेवाली सभा,

तथा श्येनके अर्थ हैं, चन्द्रवंशसे सूर्यवंशमें सम्मिलित होना। अथवा क्षत्रियसे ब्राह्मण बनना*। ये क्षत्रिय और ब्राह्मण वैदिक-युगमें जातिविशेष नहीं थो, अपितु सम्प्रदाय थे। तथा इनके सिद्धान्तोंमें भी भेद था, अतः वामदेव ऋषि अथवा अन्य कोई ऋषि जिसने ये मन्त्र बनाये हों, वह ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मण सम्प्रदायमें दीक्षित हुआ है, विश्वामित्र इस विषयमें इतिहासप्रसिद्ध व्यक्ति है जोकि क्षत्रियसे ब्राह्मण हुआ था; गोपथके प्रमाणसे (जिनको हम आगे लिखेंगे) यह सिद्ध है, कि इन मन्त्रोंका रचयिता विश्वामित्र है, विश्वामित्रने अपनी इस रचनाको वामदेवको दिखलाया था तथा उस (वामदेव) ने इन मन्त्रोंको अपने नामसे प्रकट कर दिया था। विश्वामित्र भी एक अभिमानी राजा था, यह उसके जीवनसे प्रत्यक्ष अतः वामदेवने अपना विश्वामित्र आदि किसी अन्य ऋषिने अपने अपने भावोंको उपर्युक्त कविता में प्रगट किया, यह वर्णन काव्य-शैलीसे ही किया गया है, दार्शनिक ढङ्गसे नहीं। इस प्रकार कवितायें पहिले भी होती थीं तथा अब भी होती हैं। बस, यदि इस वर्णन-शैलीसे ही वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं तो बाकीकी भी सब कवितायें ईश्वरकृत होजावेंगी। प्रथम तो पूर्वसमयकी कविता 'भगवद्गीता' को ही लेलें, जो वर्णन जिस शैलीसे इन मन्त्रोंमें है, वही वर्णन उसी शैलीसे गीतामें भी है, यथा—

> आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
> मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥
>
> वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
> इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

---

*निरुक्तमें इन्द्र अर्थ भी श्येन का है। (अ० ११)

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥
उच्चैःश्रवः समश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणाञ्च नराधिपम् ॥ २७ ॥
आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

(गी० अ० १०)

तथाच—स्वामी रामतीर्थजीकी कविताओंमें भी यही शैली है; तथा वर्तमान समयकी छायावादकी कवितायेंभी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हां! एक भेद, इन कविताओंमें और वैदिक कविताओंमें अवश्य है। यह है, नवीनताका और प्राचीनता का । यही भेद बतलाकर पं०जीने गीताका समाधान किया है। यदि इसका नाम युक्ति है तो अवश्य वेद ईश्वरीय ज्ञानरूपी पर्वतपर चढ़ सकते हैं। इसको हम भी स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु इस युक्तिसे एक बात सिद्ध होगई है, वह यह कि जिस समय वेद बने थे अथवा आर्य पुरुषोंकी भाषामें प्रगट हुए थे उस समय वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं थे; क्योंकि उस समय वेद नवीन थे; और पं० भगवद्दत्तजीके कथनानुसार जो नवीन होता है वह ईश्वरीय नहीं हो सकता। अतः यह सिद्ध होगया कि वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान माननेकी भ्रान्ति या कल्पना बिलकुल नवीन है। आज भी प्राचीन पुस्तकें ईश्वरीय ज्ञान समझी जाने लगी हैं। यथा—गीता, गुरुग्रन्थसाहब और

कुछ कालबाद सत्यार्थप्रकाश भी ईश्वरीय ज्ञान होनेवाला है। अभी भी आर्यसमाजमें वेदोंसे अधिक मान्यता या इज्जत सत्यार्थप्रकाश की है। कई भाइयोंको तो हमने स्वयं कहते सुना है कि जब इसमें सब बातें वेदानुकूल हैं और वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं तो सत्यार्थप्रकाश भी ईश्वरीय ज्ञान हुआ; उसके विरुद्ध न होनेसे।

इसी प्रकार स्वामी जी का भी आसन ईश्वर से एक आसमान ऊपर बिछाये जानेका प्रयत्न हो रहा है, परन्तु क्या करें बेचारे, समय उनका साथ नहीं देता। श्री पं० भद्वद्दत्तजीने एक युक्ति और बड़ी सुन्दर दी है, आप कहते हैं, कि श्रीकृष्णने परमात्माको जानकर अपनेमें परमात्माकी ओरसे अहंभाव धारण किया था। यदि ऐसा है तो क्या अन्य व्यक्ति किसी प्रकारका अहंभाव धारण नहीं कर सकते। यदि कर सकते हैं तो बस, मिश्वामित्र और वामदेवने भी ऐसा ही किया।

फिर ये उपर्युक्त मन्त्र ईश्वरीय कैसे होगये। यदि कृष्णजीके सिवाय अन्य कोई ऐसा नहीं कर सकता तो क्यों? बस, यह सिद्ध होगया, कि वेद ईश्वरीय ज्ञान अथवा ईश्वरकृत नहीं हैं, अपितु गीता आदिकी तरह मनुष्य रचित हैं।

तथाच—'ऐतरेयारण्यक' (२—५) में भी—'उक्तं ऋषिणा' कहकर इसी मन्त्र को उपस्थित किया है। तथा मन्त्र देकर लिखा है कि—'वामदेव एवमुवाच'।

इसमें भी वामदेवने ऐसा कहा है अर्थात् यह ऊपरका वृत्तान्त वामदेव ऋषिने कहा, यह स्पष्ट है। यदि वेद ईश्वरीय ज्ञान होते, अथवा इन मन्त्रों में ईश्वरका वर्णन होता तब तो ब्राह्मणग्रन्थमें यह कहा जाता कि 'ईश्वरीय एवमुवाच'। 'उक्तं ऋषिणा' से परमात्मा का अभिप्राय समझना घोर अन्याय है।

शतपथका प्रमाण—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् । तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्माऽस्मीति तस्मात् तत्सर्वमभवत् तद्यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम् ॥२१॥

तदेतत् पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे । (अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति) तदिदमप्येतीदं य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति ॥२२॥

(श० कां० २४ प्र० ३ ब्रा० १)

अर्थ—पहिले ब्रह्म ही एक था, उसने यह जाना कि मैं ब्रह्म हूँ। उससे यह सब होगया। जो जो देवोंमें ऐसा जानता है वह भी वैसा ही होता है, वैसे ही ऋषियोंमें से तथा मनुष्योंमें से भी।२१।

इसी प्रकार वामदेवने अपने आपको ब्रह्म जाना और कहा, कि मैं मनु हुआ और मैं सूर्य हुआ इति। अतः अब भी जिसे यह ज्ञान होजाता कि मैं ब्रह्म हूँ, वह भी यह सब कुछ होजाता है।२२।

श्री पं०भगवद्दत्तजीने भी उपर्युक्त ब्राह्मण का उल्लेख किया है, किन्तु अर्थमें खेंचातानी करके अपने भाव इस ब्राह्मण से कहला.. प्रयत्न किया है। परन्तु बुरी तरह असफल हुए हैं। अब यह स्पष्ट होगया कि, शतपथकार ऋषि भी इन मन्त्रोंको ऋषिप्रणीत मानते हैं। तथा जो भाव गीता में है अथवा अन्य किसी अद्वैतवादीकी कवितामें होसकता है, उसी भावसे ऋषिने पूर्वोक्त मन्त्रोंको बनाया है; ईश्वरने नहीं।

प्रश्न—ब्राह्मणकारोंका प्रायः यह नियम है कि प्रतीक रखकर अपनेही वेदकी व्याख्या करते हैं। तथा जब कोई दूसरे वेदकी

बात कहनी होती है, तो ब्राह्मणकार सम्पूर्ण मन्त्रको लिखते हैं सो शतपथब्राह्मण तो यजुर्वेदका है और उपर्युक्त मन्त्र हैं ऋग्वेदके। पुनः यहां मन्त्रका प्रतीक ही क्यों रक्खा। सम्पूर्ण मन्त्र क्यों नहीं लिखा ?

उत्तर—प्रथम तो यह कोई नियम नहीं है। यदि थोड़ी देरके लिए हम आपकी बात मान भी लें तो इससे आपके पक्षकी पुष्टि कैसे होसकती है। अपितु—इससे तो यही सिद्ध होता है कि ये मन्त्र यजुर्वेदमें भी थे। अब किसी कारण से उसमें नहीं रहे, तथा और भी मन्त्र ऐसेही निकल गये हैं।

प्रश्न—हम आज भी देखते हैं कि वेद मन्त्रोंके पदोंको लेकर ऐसेही कार्य्य चलाये जाते हैं।

यथा 'सत्यं ब्रवीमि' (ऋ० १०।१२७।६)

'अहमेव स्वयमिदं वदामि' (ऋ० १०।१२५।५)

अर्थात् मैं सत्य कहता हूँ, तथा मैं ही स्वयं यह कहता हूँ। वामदेवने भी इसी प्रकार मन्त्रों द्वारा अपने भाव प्रगट किये थे; न कि उसने मन्त्र बनाये थे।

उत्तर—यह है—पक्षपातका प्रत्यक्ष उदाहरण। भला 'सत्य कहता हूँ' इस वाक्यमें और 'मैं मनु था' 'मैं ही सूर्य था' इस वाक्यमें कुछ भेद है या नहीं ? यदि कुछ भेद नहीं है तब तो ठीक है, और यदि कुछ भेद है, जो कि प्रत्यक्षही दीखता है तो थोदी दलीलका आसरा लेकर आपने अपने मतकी सिद्धि समझी, यह बालवत् क्रीडाके अतिरिक्त और क्या है ?

एक मनुष्य कहता है कि मैं वैश्य हूँ, मैंने पहले बी० ए० पास किया, फिर शास्त्री, अब डाक्टरी कर रहा हूँ और फिर मैं अपना

व्यापार करूँगा, इत्यादि वाक्योंसे मूर्खसे मूर्ख भी यह समझ लेगा कि यह मनुष्य अपना जीवन सुना रहा है।

तथा च—एक मनुष्य कहता है कि 'मैं सत्य कहता हूँ, मैं स्वयं कहता हूँ' इन वाक्योंसे आर्य पुरुषोंके सिवाय अन्य तो कोई जीवन चरित्र नहीं समझ सकता। फिर इन शव्दोंका सामंजस्य ही क्या है, जो इनका उदाहरण दिया।

तथा च—

एतान् भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मताः।
सप्तैते सप्तभि श्चैव गुणैः सप्तर्षयःस्मृताः ॥ ६३ ॥
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुष·।
वुद्धाः प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥ ६४ ॥

(वा० पु० अ० ६१)

अर्थ—इनमें सप्तऋषियोंको तथा उनके वंशजोंको मन्त्र-कर्त्ता कहा है। भृगु, अत्रि, अंगिरा, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य और कश्यप ये सप्तऋषि हैं। वास्तवमें वेदोंके स्वाध्यायसे भली-भाँति ज्ञात होजाता है कि इन्हीं सप्तऋषियोंका तथा इनके वंशजोंकाही वर्णन वेदोंमें प्रायः आता है। ये ही प्रजापति आदि उपाधियोंसे विभूषित थे।

यथा—वेद भी इसीका समर्थन करता है—

तमुनः पूर्वे पितरो नग्वाः सप्त विप्रासो अभिवाजयन्तः।

(ऋ० ६।२२।२)

अर्थात् नौ महीनेमें यज्ञ करने वाले पुरातन सप्तसंख्यक मेधावी हमारे पितर अङ्गिरा आदिने इन्द्रको वलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों अर्थात् मन्त्रसमूह द्वारा उनका

स्तवन किया था। इत्यादि मन्त्रों द्वारा निर्विवाद सिद्ध है कि अङ्गिरा आदि चिरन्त (पुरातन) ऋषियोंके वंशजों द्वारा वेदोंका निर्माण हुआ है। वेदों के अध्ययन से भी यह बात स्पष्ट सिद्ध होजाती है, तथा वायुपुराणादि आर्ष ग्रन्थोंने भी इसी बातकी पुष्टि की है।

प्रश्न—वेदोमें ही वेदोंकी उत्पत्तिका वर्णन ईश्वरसे बताया गया है।

यथा—तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
(ऋ० १०।९०।९)—(यजु० ३१।७)

अर्थात्—उसी यज्ञरूप परमात्मासे ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद उत्पन्न हुये। तथा च—

कालादृचः समभवत् यजुः कालादजायत।
(अथर्व० कां० १९ सू० ५४।३)

अर्थात्—उस कालवाचक परमात्मासे ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि पैदा हुए। तथा च—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा अधिश्रिताः ॥
(अथर्व० ११।७।२४)

अर्थात्—उसी परमात्मासे ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद और पुराणादि उत्पन्न हुए।

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध है कि वेद ईश्वरसे उत्पन्न हुए हैं।

उत्तर—इन मन्त्रोंमें तो क्या, सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें कहीं भी ईश्वरसे वेदोंकी उत्पत्तिका वर्णन नहीं है।

वेदोंमें तो जैसा कि हम प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर चुके हैं, अनेक ऋषिद्वारा वेद-निर्माणका समर्थन है। यहाँ इन मन्त्रोंमें, यज्ञ, काल और उच्छिष्ट आदि शब्द अश्वमेधादि यज्ञ तथा संवत्सर के वाचक हैं। यथा—

यज्ञोंके समय मन्त्र-रचना

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि कउतच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता षष्ठिर्नचलाचलासः।

(ऋ० १।१६५।४८)

इसका भावार्थ यह है कि सम्वत्सररूपी कालचक्रके १२ महीने तथा ३६० दिन होते हैं, एवं तीन ऋतुएँ होती हैं।

ब्राह्मणग्रंथोंमें भी इसके प्रमाण मिलते हैं, यथा—

त्रयो वा ऋतवः सम्वत्सरस्य।

(श० प० ३।४।४।१७)

तथा च—

संवत्सरो वै प्रजापतिरग्निः तस्य वा एतस्य संवत्सरस्य प्रजापते सप्त च शतानि च विंशति च अहोरात्राणि॥

(श० १०।४।२।१-२)

अर्थात्—ऋतुएं तीन तथा ७२० दिनरात होते हैं। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व समयमें वर्ष ३६० दिनका माना जाता था। परन्तु वास्तवमें वर्ष होता है ३६५¼ दिनका। अतः एक वर्षमें सवा पाँच दिन वढ़ते थे। वे लोग इन सवा पाँच दिनकी कमीको चौथे वर्षमें पूरा करते थे। उस समय पूरे २१ दिन वढ़ जाते थे। इसीलिए चौथे वर्षमें २१ दिनका एक और मास

बढ़कर उस चौथे वर्षको १३ मासका करते थे। इस चौथे वर्षके अन्तिम २१ दिनोंमें राष्ट्रपतिकी राजधानीमें अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेधादि यज्ञ होते थे। उस यज्ञके समय कवि लोग अपनी अपनी कविताएँ बनाकर ले जाते थे। उन्हींका नाम मन्त्र होता था। इस विषयमें अनेक प्रमाण शास्त्रोंके हैं।

इन्हीं चार वर्षोंका नाम पूर्व समयमें युग था। युगान्तमें वेदों की उत्पत्तिका वर्णन जो हम पूर्व लिख चुके हैं इसी चतुर्थ वर्षसे अभिप्राय है। तथा यज्ञसे वेदोंकी उत्पत्तिका भाव भी यही है कि इन अश्वमेधादि यज्ञोंके लिये मन्त्र बनाये जाते थे। तथा इसी काल से वेदोंकी उत्पत्तिके कथनका अभिप्राय है कि कालरूप संवत्सरके लिए मन्त्र बनाये जाते थे। तथा च—यही भाव उच्छिष्टसे वेदोंकी उत्पत्तिका है कि उच्छिष्ट अर्थात् बचे खुचे जो २१ दिन हैं उनसे वेद प्रगट हुए, अर्थात् उस समयके लिए बनाये गए। इस प्रकार सबकी सङ्गति लग जाती है। इसी समय पूर्वके मन्त्रोंका संग्रह होता था। तथा नये मन्त्रोंकी रचना होती थी। इस युगके प्रथम वर्षका नाम इद्वत्सर था तथा दूसरेका नाम अनुवत्सर था व तीसरेका नाम परिवत्सर और चतुर्थका नाम संवत्सर होता था इस अन्तिम संवत्सरमें यज्ञ आदि होते थे।

संवत्सरवेलायां प्रजा वाचं प्रवदन्ति ॥

(श० ७।४।२।३८)

अर्थात्—संवत्सरके समय, (चौथे वर्ष अश्वमेधादिके समय*) प्रजा वाचं काव्यं कुर्वन्ति, अर्थात् उस समय आपसमें मुशायरा होता था। तथा च, लिखा भी है कि—

---

*ये अश्वमेधादि यज्ञ, राजा जनमेजयने बन्द किये। क्योंकि उनमें घृणित विकार होगये थे। उसी समयसे मन्त्ररचना भी बन्द होगई।

सम्वत्सरो वै देवानां जन्म ॥

(श० ८।७।३।२१)

अर्थात्—सम्वत्सर विद्वानोंका जन्म है (उत्पादक) है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय विद्वान् कवियोंको पारितोषिक तथा उपाधियां दी जाती थीं । इसीसे विद्वान् उन्नति करते थे तथा अन्य पुरुषोंको भी विद्वान् बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करनेका उत्साह होता था। इसीलिये भारतवर्षमें विद्वान् होते थे । उसी समय उन विद्वानोंसे पाश्चात्य देशोंके मनुष्य विद्या-दान लेने आते थे। इसीका नाम मन्वन्तर था, वेद स्वयं कहता है—

युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योरयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।

(ऋ० ६।८।५)

अर्थात्—ऋषि कहते हैं कि प्रत्येक युगमें नये मन्त्र बनानेवालों को (हमें), आप धन तथा यश प्रदान करो, अर्थात् पारितोषिक और उपाधि दो। तथा च—

सम्वत्सरो वै प्रजापति अग्नि, सऋचो व्यौहत्······॥

(श० १०।४।२।१८)

अर्थात् सवत्सर ही प्रजापति अग्नि (ब्रह्मा) है। जब उस प्रजापतिने (सम्वत्सरमें) ऋग्वेदका संकलन किया तो उसकी संख्या १२००० वृहती हुई, इतने ही उसके बनाये हुए मन्त्र थे। (एतावत्योऽर्चोयाः प्रजापतिसृष्टाः) पुनः उसने यजुर्वेद और सामवेदका संग्रह किया तो यजुर्वेद ८००० और सामवेद ४००० वृहतियोंका हुआ, इतने ही प्रजापतिके मन्त्र बनाये हुए थे । यह संकलन आज से १०००० वर्ष पूर्व हुआ; उस समय तीन ही वेद थे तथा उनकी मन्त्रसंख्या संभवतः २४००० थी। पुनः इन्हींमेंसे लेकर एक चतुर्थ वेदकी रचना हुई है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रबल प्रमाणों से यह बात सिद्ध होगई कि वेद सम्वत्सरके अन्तमें बने थे। तथा उनका पुनः संकलन भी होता था।

प्रजापतिरकामय महान् भूयान् स्यामिति, स एताश्वमेधं महिमानौ ग्रहावपश्यत्, तावजुहोन् ततो वै स महान् भूयान् अभवत्॥

(श० १३।२।५)

अर्थात् प्रजापति संवत्सरको बड़ा होने की इच्छा हुई, उसकी इच्छा पूर्ति कराने वाले दो ग्रह उसको अश्वमेध में दिखलाई दिये। उसने उनसे अश्वमेध यज्ञ किया। उस (यज्ञ)से वह बड़ा हुआ। इसका स्पष्ट भाव यही है कि उस समय बड़े वर्षमें अश्वमेध यज्ञ किया जाता था। तथा च—२१ यूप इस यज्ञ में होते हैं। उसका भी अभिप्राय यही है, कि यह शेष बचे हुए २१ दिन तक होता था।

असौ वा आदित्य एकविंशः सो अश्वमेधः॥

(श० १३।५।१।५)

प्रजापतिर्वा अश्वमेधः॥

(श० १३।२।२।१३)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है, कि उस (चतुर्थ) वर्षमें अश्वमेधादि यज्ञ होते थे, तथा उस समय मन्त्र बनाकर ऋषि लोग लाते थे और उनको पुरस्कार तथा उपाधियाँ वितीर्ण की जाती थीं। जिससे उनका यश भी फैलता था और उनको भोजनादिकी चिन्ता भी नहीं रहती थी। इसीलिए वे लोग रातदिन तत्व-विचार में निमग्न रहते थे। महाभारतकी एक कथासे ज्ञात होता है, कि ऐसे ऋषियोंकी संख्या एक लाख अड़तीस हजार थी। ये सब

मन्त्र-रचयिता रातदिन तत्व-विचारमें लगे रहते थे। परन्तु भारतके दुर्भाग्यसे ऐसा समय आया कि इन वेदोंको ईश्वरीयज्ञान अथवा नित्य मानने लगे, तथा जनताके हृदयमें यह विश्वास जमा दिया, कि मन्त्र कोई वना ही नहीं सकता। वस, फिर कोई क्यों प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार यह प्रथा वन्द होगई। उसी समयसे भारतमें विद्वानोंका अभाव होना आरम्भ होगया। इन भोले भक्तोंने इतना भी विचार नहीं किया, कि वेदको ईश्वरीय ज्ञान कहनेसे वेदोंका क्या महत्व होसकता है। जव किसी अनुभवी विद्वान्ने अपने अनुभव उसमें लिखे हों। मनुष्योंने सुख, दुःख, आशा, निराशा, कष्टसाध्य, सुसाध्य आदि वातों का अनुभव ईश्वरको कैसे होसकता है। एक राजा, दरिद्रीके दुःखोंका अनुभव कैसे कर सकता है। इसीलिए एक दरिद्र किसी प्रकार उन्नति करे, यह उपदेश राजा किस प्रकार देसकता है। यदि सुना-सुनाया दे भी तो एक गरीव-हृदयमें उसपर क्या श्रद्धा होगी।

कहां तक कहें—वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान माननेसे न तो वेदोंका कुछ गौरव रहता है और न भारतवर्षका, तथा न ही भारतके ऋषियोंका, एवमेव न ईश्वरका ही अस्तित्व रहता है। अतः यह कल्पना विना विचारे की गई है। इसका जितनी शीघ्रता से मूलोच्छेद किया जावेगा, उतनी ही जल्दी मनुष्य जातिकी उन्नति होकर उसका उपकार होगा।

ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनामृषिर्विप्राणाम्

(निरुक्त-परिशिष्ट)

अर्थात्—ब्रह्मा उन विद्वानोंकी पदवी है, जो कि तपस्वी और कवि थे। अव प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि पदवी (उपाधि) कव प्रदान की जाती थी? इसका उत्तर अश्वमेधके समय ही, हो

सकता है। इसमें कवि शब्द सुन्दररूपसे मन्त्र-निर्माता विद्वानोंका बोध करा रहा है। तथाच—

तिस्रो वाचमीरयति प्रवह्निर्ऋतस्य धीति ब्रह्मणो मनीषाम्।
(नि० परि०)

अर्थात्—वह्नि (अग्नि) ब्रह्माने तीन वेद बनाये। यहाँ ब्रह्मा शब्दसे उन सम्पूर्ण मन्त्र-प्रणेता कवियोंसे ही अभिप्राय है। जिनको ब्रह्माकी उपाधि प्राप्त हुई थी। निरुक्तकार वह्नि शब्दका अर्थ सूर्य करके 'उसीने तीन वेदोंको बनाया' ऐसा लिखा है। यह भ्रममूलक है; वास्तवमें यहाँ वन्हि शब्द उपलक्षणमात्र है जोकि सम्पूर्ण कवियों का बोध कराता है। संभव है निरुक्तकारका अभिप्राय प्रथम साम-वेद बननेसे हो और अन्य दो वेदोंको बादके बने हुये समझता हो, जैसा कि अनेक विद्वानोंका मत है।

एते वै कवयो यद् ऋषयः॥
(श० ५।२।१।२४)

अर्थात्—कवि लोग (मन्त्र-प्रणेता) ही ऋषि कहलाते थे उन्हीं को ऋषि, ब्रह्मा आदिकी उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। विश्वा-मित्र और वामदेवकी कथा जो पूर्ववर्णित है, उससे भी यह सिद्ध होता है, कि वामदेवने विश्वामित्रके बनाये हुए मन्त्रोंको अश्वमेधके समय उपाधि तथा अनेक लोभसे अपने बनाये हुए कहकर प्रगट किया था। इसी प्रकारके और भी अनेक प्रमाण हैं। यथा—

प्रपूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने।
(ऋ० ७।५३।२)

अर्थ—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि, हे मित्रावरुण! तुम्हारी स्तुति के लिये नये मन्त्रात्मक स्तोत्र बनाये जायें तथा मेरे द्वारा निर्मित और संगृहीत स्तोत्र तुम्हें प्रसन्न करें। तथा च—

ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

(ऋ० ७।१०३।८)

अर्थ—वसिष्ठ ऋषिने वर्षाकी इच्छासे पर्जन्यकी स्तुति की थी और मण्डूकोंने उसका समर्थन किया था । मण्डूकों (मेंढकों) को समर्थक जानकर उनकी भी स्तुति की है । वे स्तुत्यात्मक मन्त्र इस सूक्तमें ग्रथित हुए हैं । इस मन्त्रमें वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि सोम से युक्त और वार्षिक कवि-सम्मेलनमें कविता-पाठ करनेवाले मंत्रकार कवियोंकी तरह मेंढक शब्द करते हैं । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पूर्व समयमें वार्षिक कवि-सम्मेलन होते थे और उनमें मन्त्रनिर्माता ऋषि अपनी अपनी रचनाएँ सुनाते थे ।

वेद ईश्वरकृत नहीं

वेदोंको ईश्वरकृत माननेमें प्रथम तो यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि ईश्वरसे वेद किस प्रकार उत्पन्न हुए ? क्या जिस प्रकार माताके गर्भसे बच्चा उत्पन्न होता है, उस तरह उत्पन्न हुए, किंवा दूधसे घी उत्पन्न होता है, ऐसे उत्पन्न हुए, अथवा पृथ्वीसे उद्भिज जन्तु उत्पन्न होते हैं—इस प्रकार उत्पन्न हुए । इनमेंसे आप किसी प्रकारसे मानें, सब ही तरहसे आपको ईश्वर साकार मानना पड़ेगा; जब ईश्वर साकार होगया तो उसकी उत्पत्ति आदि भी माननी पड़ेगी । ऐसी अवस्थामें उसकी मृत्यु भी अवश्यम्भावी है । पुनः वह ईश्वर है, इसमें कुछ प्रमाण नहीं रहेगा । तथा च—जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसके तीन कारण अवश्य होते हैं—

(१) उपादानकारण (२) निमित्तकारण (३) साधारणकारण ।

यदि ईश्वर वेदोंका उपादान है—ऐसा कहें तब तो ईश्वर अवयवी सिद्ध होगा । वेदोंको हम जड़ देखते हैं, परन्तु ईश्वरको आप चेत-

न्य मानते हैं। 'कारणके गुण कार्यमें होने चाहियें' यह नियम नहीं रहेगा। इसलिये वेदोंका ईश्वरसे उत्पन्न होना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। तथा च, वेदोंमें ब्राह्मणग्रन्थों और इतिहास आदिसे हम यह सिद्ध कर चुके हैं, कि वेद ब्रह्माने बनाये जो कि मनुष्य था, अतः हमारा मत ठीक है।

प्रश्न—ईश्वरसे उत्पन्न हुएका अभिप्राय यह है कि सृष्टिके आदिमें चार मनुष्योंके मनमें परमेश्वरने वेदोंका ज्ञान दिया?

उत्तर—यह निराधार, मिथ्यावागाडम्बर है। क्योंकि 'प्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई' यही असिद्ध है, क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं। यदि कहो कि 'हमारे शास्त्रोंमें लिखा है' तो यह साध्य समानिग्रह स्थान है। क्योंकि आपके शास्त्र भी अभी असाध्य हैं। यदि आपको प्रसन्न करनेके लिये हम यह मान भी लें, कि सृष्टि उत्पन्न हुई, तो वेदोंको देते हुए किस ने देखा? सम्पूर्ण शास्त्रोंमें एक भी ऐसे व्यक्तिका नाम नहीं लिखा, जिसने यह साक्षी दी हो, कि मैंने परमात्माको वेद अथवा ज्ञान देते हुए देखा है। दुःख तो केवल इस बात का है, कि उन ऋषियोंने भी यह कहीं नहीं कहा कि हमको ये वेद परमात्माने दिये हैं। ऐसा एक भी वेदमन्त्र नहीं है। पुनः यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि ज्ञान या मन्त्र दिये किस प्रकारसे? ताड़पत्रपर लिखकर अपने किसी दूतके हाथ अथवा पोस्टआफिसके द्वारा भेजे?

प्रश्न—ईश्वर सर्वव्यापक है, अतः जीवके अन्दर भी व्यापक है। बस, उसने उनके दिलोंमें प्रेरणा की।

उत्तर—प्रथम तो ईश्वरका जीवके अन्दर व्यापक होना, पुनः जीव और ईश्वर दो पृथक् २ भी हों—यही असम्भव है; परन्तु

इसका विचार तो हम फिर कभी करेंगे। यहाँ तो आपकी बात मानकर हम यह पूछना चाहते हैं कि प्रेरणा किस प्रकार की। अर्थात् किसी शारीरिक संकेतसे, या वाणीद्वारा बोलकर, किंवा कागजपर लिखकर। उपर्युक्त तीनों प्रकारों से ईश्वर साकार सिद्ध होगा। यदि कहो, कि उन ऋषियों के मनमें भाव उत्पन्न हुए; तो ये भाव उनकी अपनी आत्मा के थे, तब तो उसके मन मानना पड़ेगा, क्योंकि बिना मन के भाव उत्पन्न कहाँ होंगे ? यदि कहो, कि ऋषियोंके थे तो आपके सिद्धान्तकी हानि है, और यदि थोड़ी देरके लिये उपर्युक्त प्रश्न न भी करें तो भी ईश्वर एक रस नहीं रहता। क्योंकि उसके ऐसे भाव कि 'मैं वेद-ज्ञान हूँ' किसी समय-विशेषमें उत्पन्न होते हैं। तथा च, एक प्रश्न और भी उत्पन्न होता है, कि इन चार ही ऋषियोंको वेद क्यों दिये, सबको क्यों नहीं दिये ? यदि कहो, कि उनके ही कर्म ऐसे थे तो ईश्वरकी यह दया नहीं है, अपितु ज्ञान देना न्याय है, जो कि इस गिरे जमानेके भी सर्वथा विरुद्ध है। आज कल तो निःशुल्क विद्या होनी चाहिये—यह आन्दोलन हो रहा है और आपका तो ईश्वर भी, बिना फीसके ज्ञान नहीं देता। ऐसे स्वार्थी तथा अनुदार ईश्वरकी तो स्वामी दयानन्दजीके शब्दोंमें बहिष्कार ही अच्छा है*। अतः इस कल्पनामें कोई भी सार नहीं है। इसलिये सरल अर्थोंको छोड़कर क्लिष्ट कल्पना करना (और वह भी असम्भव) क्या बुद्धिमत्ता है। अतः जहाँ २ वेदोत्पत्तिका वर्णन है, वहाँ वहाँ अग्नि (ब्रह्मा) ऋषिसे वेद उत्पन्न हुए यही अर्थ लेना चाहिये।

---

*पुनः सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें यह लिखा है कि माता पिता की तरह सब मनुष्योंकी ईश्वर उन्नति चाहता है। इसलिये ईश्वरने कृपा करके वेदोंको प्रकाशित किया। यह भी मिथ्या सिद्ध होगा।

वेदोंकी रचनाका समय विचार

'विश्ववाणी' (वर्ष २ भाग ३ सं० १ पृ० १५०)

प्राचीन कालके अन्य सभ्य देशोंकी तरह वैदिक कालके आर्यों को भी वर्ष गणनाकी रीतिका स्पष्ट और ठीक ठीक ज्ञान था। गर्मी, वर्षा और जाड़ेकी ऋतुओंके नियमित चक्रने संसारके लगभग समस्त प्राचीन निवासियोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। वे इस बातसे परिचित होगये थे कि ये सब वस्तुएं क्रमानुसार बारह बारह महीनोंके बाद आती हैं। शुरु शुरुमें उन्होंने चान्द्र तिथियोंके हिसाबसे बारह महीनों या ३५६ दिनके वर्षकी कल्पना की होगी। किन्तु इस सिद्धान्तके अनुसार थोड़े कालके उपरान्त ही उन्हें ऋतुओंका समय ठीक ठीक निर्धारित कर सकना बहुत कठिन जान पड़ा होगा। इस बातकेलिये किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं है कि समस्त कृषिप्रधान जातियोंको ऋतुओंके शुरु और अंत होनेकी निश्चित जानकारी आवश्यक है। जिस किसीने ऋग्वेदका बहुत थोड़ा सा अंश भी पढ़ा है उसको उसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता कि कृषि, वैदिक कालीन आर्योंका एक महत्वपूर्ण धन्धा था और पूर्णिमा और शुक्ल दूजके दिन यज्ञ करना वैदिक कालीन आर्योंके लिये धार्मिक और नितान्त आवश्यक था। यह बहुत सम्भव है कि शुरु शुरुमें अपने हितमें ऋतुओंके ठीक ठीक और यज्ञ आदिके लिये पूर्णिमा आदि तिथियोंका निश्चित बोध करनेमें वैदिक ऋषियोंको बहुत परेशानी हुई होगी। सौर वर्षके स्थानपर चान्द्र वर्षके कारण जो गड़बड़ी हुई, उसके सम्बन्धमें 'शतपथ-ब्राह्मण' (काण्ड ६, १, ८) में लिखा है—

"ऋतुओंको इच्छा हुई कि वे भी देवताओंके समान यज्ञमें हिस्सा पावें और उन्होंने कहा, 'हमें भी यज्ञमें हिस्सा दो! हमें

यज्ञके अंशसे वंचित न करो। हमें भी यज्ञमें हिस्सा दो!' किन्तु देवताओंने इसे स्वीकार न किया तो ऋतुएं देवताओंके ईर्षालु और नृशंस शत्रु असुरोंके पास गईं। तब वे असुर धन-धान्यसे इतने पूर्ण हुये कि देवताओंने उसे सुना और जबकि असुरोंमें प्रधान अभी जोत-बोरहे थे, उनके अन्य लोग कटाई और मडाई कर रहे थे। उनके लिये बगैर जोते हुये ही फसलें पकने लगीं।"

इस उद्धरणसे यही अर्थ निकलता है कि देव और असुर चाहे वे हिन्दू और जरथुस्त्री रहे हों या आक्रामक आर्य या भारतकी आदि जातियां रही हों, ऋतुओंके सम्बन्धमें उनका ज्ञान बहुत गड़बड़ था, जब कि एक वर्ग उसे बोनेकी ऋतु समझता तो दूसरेके लिये वही काटनेकी ऋतु होती थी।

यजुर्वेदमें इस तरहके वाक्य बहुधा आते हैं—

"ऋतुओंमें गड़बड़ हो सकती है" (५, ६, ३,) और "यदि उचित रूपसे निश्चित तिथियों पर यज्ञ किये जायं, तो ऋतुयें अपनी जगह निश्चित रहती हैं।" (६,३,३, १८, और ७,१,१०)।

इसका अर्थ यह है कि वैदिक ऋषियोंने अनुभवसे चान्द्र तिथियोंके वर्ष अनुसार ऋतुओंका समय निर्धारित करनेकी निरर्थकता देखली और वे चार तरहकी वर्ष गणनाका आविष्कार करनेमें सफल हुये। वे वर्ष ये थे—३५४ दिनका चान्द्र वर्ष, ३६० दिनका सावन वर्ष, ३६५¼ दिनका सौर और वर्ष ३६६ दिनका नक्षत्र-गणनाके अनुसार वर्ष। चान्द्र वर्ष और नक्षत्रोंकी गणनाके अनुसार निश्चित किये वर्षके अन्तरको ठीक करनेके सम्बन्धमें शतपथब्राह्मण (११, १, २, १०) में निम्नलिखित वाक्य आते हैं—

"वास्तवमें जो लोग पूर्णिमा और शुक्ल दूजके दिन यज्ञ

करते हैं, वे (समयके साथ) दौड़ लगाते हैं। यह १५ वर्षोंकी अवधिमें करना चाहिये—इन १५ वर्षोंमें ३६० दिन पूर्णिमा और शुक्ल दूज होती हैं और १ वर्षमें ३६० रात्रियां होती हैं। इस तरह वह इन दिनोंको प्राप्त करता है।"

'भगवत्गीता' (८, २४, २५) के पाठकोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि सूर्य जब तक छः महीने दक्षिणायनमें रहता है, हिन्दू उसे रात्रि समझते हैं, और जब सूर्य छः महीने उत्तरायण में रहता है तो उसे दिन समझते हैं। इसके अनुसार उपर्युक्त वाक्यका यह अर्थ होता है, कि १५ नक्षत्र वर्षोंमें यज्ञ करने वालेको प्रत्येक २४ घन्टोंके १८० दिन मिलेंगे या प्रत्येक १२ घंटोंकी ३६० रातें मिलेंगी। दक्षिणायनमें प्रति १२ घण्टोंके १८० दिन, रात्रिमें शुमार किये जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें ३६६ दिनोंके १५ नक्षत्र वर्षोंमें ६ मल-मास या अधिक-मास पड़ते हैं, क्योंकि ३५४ दिनके प्रत्येक चान्द्र वर्ष से नक्षत्र वर्ष १२ दिन बढ़ जाता है। इस तरह १५ नक्षत्र वर्षोंमें १५×१२=१८० मलमासके दिन पड़ेंगे।

इससे यह जाहिर होता है कि चान्द्र वर्षमें लगातार ३० वर्षों तक गड़बड़ी चलती रहती थी और ३० वर्षके बाद वह फिर उपर्युक्त हिसाबसे शुरु होता था। इन तीस वर्षों तक उसमें मलमासके दिन न जोड़े जाते थे। यजुर्वेदमें ज्योतिषियोंके दो दलोंका जिक्र आता है, जिनमें एक दल 'उत्सर्गी' कहलाता था, जो बीचमें मलमासके दिन जोड़ता था; किन्तु दूसरा दल चान्द्र वर्षको स्वतः ही ठीक होने देता था। यजुर्वेद इस दूसरे दलकी वकालत नीचे लिखे शब्दोंमें करता है—

तदाहुर्यां वै त्रिरेकस्याह्न उपसीदंति दह्नं वै साऽपराभ्यां दोहाभ्यां दुहेऽथ कुतस्सां धोक्ष्यते मां द्वादशकृत्व

उपसीदतीति । संवत्सरं संपाद्योत्तमे मासि सकृत्पृष्ठान्युपेयु-स्तद्यजमाना यज्ञं पशूनवरुंधते । समुद्रं वै एतेऽनवारमपारं प्रप्लवंते ये संवत्सरमुपयन्ति । (७।५।३)

इसलिये वे कहते हैं—"(गाय) जिसे वे दिनमें तीन बार दुहते हैं, अगले दो बार दुहनेमें बहुत थोड़ा दूध देगी । फिर वह गाय कैसे दूध देगी, जिसे वे बराबर दुहने बैठते हैं । इस तरह पूरा वर्ष होनेपर अन्तिम मासके अन्तमें वे छः 'पृष्ठ दिवस' मनाते हैं । इस तरह यज्ञ करनेवाले अपनी बलि (वर्ष) और बिना दुही हुई गायों को बचा रखते हैं । इस तरह यज्ञ करनेवाले मलमासयुक्त वर्ष लेकर ऐसी स्थितिमें होते हैं, जैसे किसी असीम समुद्रमें तैर रहे हों ।"

वर्षको तीन बार दुहनेका अर्थ है वर्षमें चार चार महीनेके तीन भाग, और बारह बार दुहनेका अर्थ है बारह मलमास । 'पृष्ठ' शब्द छः दिनके समयके लिये प्रयुक्त होता है, जो शायद यजुर्वेदिक कालमें सप्ताहके लिये प्रयुक्त होता था ।

जो दल मलमास जोड़नेके विरुद्ध था उसके सम्बन्धमें नीचे लिखे वाक्य आते हैं—

यदहर्नोत्सृजेयुर्यथा दृतिरुपनद्धो विपत्येवं संवत्सरो विपतेत् । आर्तिमार्च्छेयुः पौर्णमास्यामासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति संवत्सरायैव तदुदानं दधाति । तदुसत्रिण उदानंति नार्तिमार्च्छन्ति । पूर्णमासे वै देवानां सुतः । (७।५।६)

"यदि वे दिनको नहीं छोड़ते, तो जिस तरह एक चमड़ेकी हवा भरी थैली फट जाती है उसी तरह वर्ष भी बैठ जाता है और वे आफतमें फंस जाते हैं जो (मलमास) का दिन वे छोड़ देते हैं वह मासके साथ मिलकर पूर्णिमाको निश्चित करता है और वर्षको

जीवन देता है। इस तरह यज्ञ करनेवाले पुरोहितोंको जीवन मिलता है और वे आफतमें नहीं आते हैं। पूर्णिमाके दिन देवताओंको 'सुत' (सोमरस) की अञ्जलि दी जाती है।"

मलमास जोड़ा जाय या न जोड़ा जाय इस विषयको लेकर मालूम होता है कि वैदिक कालके ज्योतिषियोंमें चख-चख और गरमागरमी रही। यजुर्वेदमें इस सम्बन्धमें नीचे लिखा उद्धरण आता है—

उत्सृज्यां ३ नोत्सृज्या३मिति मीमांसते ब्रह्मवादिनः तद्वाहुरुत्सृज्यमेवेत्थमावस्यां च पौर्णमास्यांचोत्सृत्यमित्याहुरेते हि यज्ञं वहत इति ते त्वाव नोत्सृज्ये इत्याहुः ये अवांतरं यज्ञं भेजाते इति (७।५।७)

"ब्रह्मवादी इसपर बहस करते हैं कि वे इसे छोड़ें या न छोड़ें। वे कहते हैं कि इसे नये चान्द्र दिवसपर और पूर्णिमापर छोड़ना चाहिये; वे इसलिये कहते हैं कि उसे नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि वही यज्ञके दिन हैं। किन्तु जो लोग कहते हैं कि उसे नहीं छोड़ना चाहिये; वे इसलिये कहते हैं कि नया चान्द्र दिवस और पूर्णिमा विशेष यज्ञोंके दिन हैं।"

किन्तु यह स्पष्ट नहीं लिखा है कि दिनों या महीने या चार महीनोंमें मलमास जोड़ने या न जोड़नेका प्रश्न सौर वर्षके संबंधमें था या नक्षत्रवर्षके सम्बन्धमें ? ऊपरकी बहस यज्ञोंके सम्बन्धमें है। वे यज्ञ 'गवाम आयने' या 'गोपथ' कहलाते थे और गोपथ चूंकि मलमासके दिन मिलाकर बनाया जाता था इसलिये उपर्युक्त उद्धरण ३६६ दिनके मलमासके सम्बन्धमें ही होगा। उपर्युक्त उद्धरणमें मलमासके चाहे जिस रूपकी बहस हो, चाहे वह सौर वर्ष,

नक्षत्रवर्ष या चान्द्रवर्षको दूर करनेके लिये हो या सौरवर्षमें दिन का हिस्सा जोड़नेके लिये हो, यह बात बिल्कुल निश्चित है कि वैदिक ऋषि मलमासकी समस्यासे, पूरी तरह परिचित थे। यह स्वतः प्रामाणिक वास्तविकता है कि जब तक किसी जातिको वर्ष, मास और दिन गिनने न आयें और उस समय गणनामें उसे कोई गलती न दिखाई दे, तब तक वह जाति स्वप्नमें भी मलमास जोड़ने की बात नहीं सोच सकती। इसलिये यह स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियोंने वर्ष, काल और दिन गिननेका कोई तरीका निकाल रखा होगा, किंतु यह भी एक मानी हुई बात है कि वैदिक कालमें, चाहे उसका कुछ समय हो, लिखनेकी कलासे लोग परिचित नहीं थे। लिखनेकी कला के अभावके कारण किसी भी बातकी स्मृति रखनी पड़ती थी। इस बातको कहनेकी जरूरत नहीं कि वैदिक ऋषि, स्मरण शक्ति बढ़ानेको बहुत महत्व देते थे। कितने वर्ष बीतते जाते हैं, इस बातका हिसाब कैसे रखा जाय। इसके लिये वैदिक ऋषि प्रतिवर्ष किसी न किसी छन्दमें ऐसे नये मन्त्र रचते थे जिनके अक्षरोंकी संख्या ३६० होती थी। चूंकि 'सावन' वर्षमें ३६० दिन ही होते थे, इस हिसाबसे मन्त्रोंके अक्षर उतने दिनोंकी अवधिको व्यक्त करते थे। शतपथब्राह्मण में पारिप्लवोपाख्यान (१३,४,१,१५) में इस विचारकी पुष्टि मिलती है। होताद्वारा दस प्राचीन राजाओं और उनके अश्वमेध यज्ञोंके कारनामोंको व्यक्त करनेवाले मन्त्रोंपर टीका करते हुए शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"इन चक्राकार कहानियोंमें, राजाओंकी कहानी, समस्त धर्म, समस्त वेद, समस्त देवता, समस्त प्राणियों और सच पूछा जाय तो होता जो कुछ भी जानता है, इन कहानियोंमें हमें बताता है। जो भी इसे (सुन लेता है) जान लेता है, वह राजत्व और जनताके ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करता है। वह वेदोंका ज्ञाता है और देवताओं

को सन्तुष्ट करके सब प्राणियोंके ऊपर अपनी श्रेष्ठताको स्थापित करता है। यह क्रम बार-बार पूरे वर्ष तक चलता रहता है और फिर भी समाप्त नहीं होता; चलता ही रहता है। इसलिये इसे चक्राकार या क्रम-गत (कहानी) कहा जाता है। ३६×१० दिन तक होता इसे कहता है—वृहती छन्दमें ३६ मात्रायें हैं और पशुओंका सम्बन्ध वृहति छन्दसे है वृहतोके द्वारा वह अपने लिये पशुओंका आयोजन करता है (१३, ४, ४, १५)।

ऐतरेय आरण्यकमें इस बातको भी स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि प्रत्येक दिन मन्त्रके प्रत्येक अक्षरको जाहिर करता है:—

"एक हजार वृहती छन्दोंमें यह सम्पूर्ण होता है और वह मन्त्र पूर्ण हैं जिनमें एक हजार वृहती छन्द हों जिनके (३६,०००) अक्षर हों। एकसौ वर्षमें इतने ही (३६,०००) दिन होते हैं। व्यञ्जनोंसे रातें बनती हैं और स्वरोंसे दिन।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि ३६० दिनके सावन वर्ष को ३६, ३६ दिनके दस हिस्सोंमें बांटते थे और इन दस हिस्सों को विविध पशुओंका हिस्सा नाम देते थे और ३६ अक्षरोंके १० वृहती छन्दोंमें भी प्रत्येक वर्षके दिनोंका हिसाब रखते थे जिनकी वे एक वर्षमें या १ नियुक्ति अवधिमें रचना करते थे। प्राचीन मिस्री भी वर्षको ३६ हिस्सोंमें बाँटते थे। मिस्रियोंको यह ज्ञान हजरत ईसाके सैंकड़ों वर्ष पूर्व था। चूंकि ये दोनों देश एक दूसरेसे स्वाधीन यह समय गणना प्रणाली ईजाद नहीं कर सकते, इसलिये यही सम्भव है कि मिस्रियोने यह वर्ष-गणना आर्योंसे सीखी। इस बातके प्रमाण मौजूद हैं कि आर्योंको यह ज्ञान बहुत पहलेसे था। हमारी दलील यह है कि प्रतिवर्ष वैदिक मन्त्रोंमें ३६ अक्षरोंके १०-१० छन्द जुड़ते जाते थे। इससे दोनों काम पूरे होते थे—बीते हुए दिनोंका भी हिसाब रहता था और देवताओं

की पूजा और यज्ञ आदिकी तिथियों में भी कोई गड़बड़ न होती थी।

'वेद' शब्दसे भी यही तात्पर्य है। वेद शब्दका दो अर्थोंमें उपयोग होता है—(१) 'कुश' (घास) की संख्या और (२) 'पवित्र मन्त्रों का संग्रह'। वेदका शाब्दिक अर्थ है 'ज्ञान'। इससे स्पष्ट है कि वैदिक कवि वेदसे कुश (घास) की संख्या और पवित्र मन्त्रों के अक्षरों की संख्या (जिनसे उनके युगको प्रारम्भ हुए कितने दिन बीते) इन दो बातों का हिसाब रखते थे। हिन्दुओं में अब भी यह रिवाज है कि वे समस्त यज्ञों में 'वेद' यानी कुशकी ग्रन्थियाँ बनाते हैं और यज्ञके बाद उन्हें हवनकुण्डमें डाल देते हैं। प्राचीन मेक्सिकोके निवासी दिनों या वर्षका हिसाब रखनेके लिये उतनी ही बेतों का बण्डल बनाते थे। प्रेस्काट अपनी 'हिस्ट्री आफ मेक्सिको' में लिखता है कि "मेक्सिको वाले ५२ वर्षोंका एक युग शुमार करते थे और उसे वे 'गट्ठा' या 'बण्डल' कहते थे और इसके लिये वे उतनी ही बेतोंको रस्सीसे बाँधकर एक साथ रखते थे"। इसलिये यह बहुत सम्भव है कि मेक्सिकोवासियोंका जो काम बेतों के बण्डलसे पूरा होता था वही वैदिक कवि कुशसे पूरा करते थे। वैदिक मन्त्र दिमाग और कानको मधुर लगते थे तो वैदिक कुश आँखोंको सन्तोष देते थे। इस तरह ये दो प्रकारके वेद वर्ष और दिनोंका हिसाब रखने और उनमें किसी तरहकी गलती न होने देने के सच्चे उपाय थे; जबकि वैदिक कुशको ४ अथवा ५२ वर्षोंके युगके बाद यज्ञमें आहुतिकी तरह छोड़ देते थे। वैदिक मन्त्रोंको जिनमें नईसे नई और बिलकुल शुरूसे पुरानी ऋचायें शामिल होती थीं इतनी सावधानीके साथ कण्ठस्थ कर लिया जाता था कि उनका एक भी अक्षर घट-बढ़ नहीं सकता था। सभी प्राच्य-विशारद इस बातको जानते हैं कि ब्राह्मण लोग वैदिक मन्त्रोंकी रक्षापर बेहद जोर देते थे और अब भी देते हैं। किन्तु यह बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती कि वैदिक मन्त्रोंके अक्षरोंमें बादमें कुछ भी

हेर-फेर नहीं किये गये और या मन्त्रोंके क्रममें भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया। हमें यजुर्वेदके ही मन्त्रोंके विभाजनमें तीन क्रम मिलते हैं जो 'कृष्णयजुर्वेद', 'शुक्लयजुर्वेद' और 'मैत्रायणीय-यजुर्वेद कहलाते हैं। उनके क्रम और उनके पाठोंमें यत्र तत्र इतना अन्तर मिलता है कि यह माननेके लिये विवश होना पड़ता है कि वेदोंके क्रम और विषयतत्वमें भी थोड़े बहुत हेर-फेर अवश्य हुये होंगे। फिर भी एक लम्बे काल तक वेदोंसे दो मतलब सिद्ध हुये—(१) देवताओंकी उपासना और (२) दिनों और वर्षकी गणना। हमारे इस कथनकी पुष्टि ऋग्वेदके इतने अधिक मन्त्रोंसे होती है कि उन सबको यहाँ उद्धृत कर सकना असम्भव है। अतः उनमेंसे हम यहाँ कुछ मन्त्र देरहे हैं—

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रैभिः सत्यैः।

(ऋग्वेद १, ६७, ३)

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि। ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य के स्तस्येदिन्द्रो अभि-पित्वेषु रण्यति।

(ऋग्वेद १, ८३, ७)

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तन्ये मघवा नाम बिभ्रत।

(ऋग्वेद १, १०३, ४)

इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः।

(ऋग्वेद ३, ६० ६)

युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्

(ऋग्वेद ६, ८, ५)

वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण । चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ।
(ऋग्वेद १, ७१, २)

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः । ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ।
(ऋग्वेद १, १७७, २)

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः । त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
(ऋग्वेद ७, १८, ४)

आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ।
(ऋग्वेद ७, ४२, ५)

सा त्वा न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
(ऋग्वेद ५, ३६, २)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
(ऋग्वेद ४, ४४, १)

अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ।
(ऋग्वेद ४, ३१, ४)

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ।
(ऋग्वेद ३, ४१, ३)

"सहज बुद्धि हमें यही माननेके लिये विवश करती है कि वैदिक ऋषि दिनोंकी गणना मन्त्रोंके अक्षरों और कुश आदिसे करते थे। इन चीजोंका कोई पौराणिक या धार्मिक तात्पर्य नहीं हो सकता। ऋग्वेदकी उपर्युक्त और अन्य ऋचाओंसे मुख्य आशय यह निकलता है कि इन्द्र और अग्नि शुक्ल दूज और पूर्णिमाके विशेष तिथियोंके नाम थे और इनके आनेका जिक्र बार बार आता है। यह समझ लेनेपर हम उस कथाको अच्छी तरह समझ सकते हैं कि जिसके अनुसार किसी पक्षी या गाय द्वारा शुक्ल दूजके लानेका जिक्र मिलता है। 'जगती' और 'तृष्टुब्' छन्दोंमें दो या तीन अक्षरोंकी कमी होजानेकी कहानी प्रचलित है। उस समय मंत्रके अक्षरोंसे दिनोंकी गणना होती थी। यदि नया चन्द्रमा या पूर्णिमाका चंद्रमा छन्दके अक्षरोंकी संख्यासे दो या तीन दिन बाद निकलता तो उस समयके प्रचलित तरीकेसे लोग कहते थे, कि नये चन्द्रमाको लानेमें यह छन्द दो या तीन अक्षरोंसे घट गया। उस कालमें एक प्रथा यह भी थी कि यज्ञ मण्डपके बीचमें अलग अलग सूखी और हरी दूर्वा बिछा देते थे। सूखी दूर्वा दिनकी प्रतीक थी और हरी दूर्वा रात्रिकी प्रतीक थी। इन्हीं दूर्वाओंको देखकर लोग प्रार्थना-मन्त्र कहते रहते थे।

इसलिये यह स्पष्ट है कि प्रत्येक युगकी समाप्तिपर उस युगमें जितने दिन होते थे उतने ही अक्षरोंके मन्त्र रचे जाते थे। इस तरीकेसे वैदिक ऋषि बीते हुए दिनोंका हिसाब रखते थे और इसी हिसाबसे वे दूज आदि तिथियोंका ठीक ठीक अनुमान कर सकते थे। इसी तरीकेसे वे मलमासके दिनों और यज्ञके विशेष दिनोंका भी हिसाब रखते थे। इसी सिद्धान्तको सामने रखना शतपथ-ब्राह्मणके रचयिताने ऋग्वेदके समस्त अक्षरोंको जोड़ डाला है और हिसाब लगाया है कि पूरा ऋग्वेद कितने वर्षोंमें लिखा गया है।

'प्रजापतिने अपने मनमें सोचा कि सृष्टिकी जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब त्रिगुणोंमें आ जाती हैं तो मैं अपने लिये एक ऐसी देह बनाऊँ कि जो इन त्रिगुणोंको अपने अन्दर रख सके।'

उसने ऋग्वेदके मन्त्रोंको १२ हजार बृहती (हर बृहती छन्दमें ३६ अक्षर होते हैं) में बांटा, (यह इसलिये) कि प्रजापतिने इतने ही मन्त्रोंको रचना की थी। तीसवें भागमें पंक्ति (पंक्तिमें ४० अक्षर होते हैं) को रखा, चूंकि ३० भागोंमें बृहती रखा गया, इसलिये महीनेमें ३० रातें होती हैं। इसके बाद प्रजापतिने पंक्तिकी रचना की। कुल पंक्ति १०,८०० हैं। फिर उसने अन्य दो वेदोंको १२००० बृहतीमें लिखा। ८००० यजुमें और ४००० साममें। इन दोनों वेदोंमें (भी) प्रजापतिने इतने ही मन्त्रोंकी रचना की।"

(शतपथब्राह्मण (१०, ४, २, २२, २४)

यहांपर प्रजापतिसे तात्पर्य वर्षसे है। ऊपरके उद्धरणमें प्रजापतिका प्रयोग वर्षके अर्थमें ही किया गया है। प्रजापतिकी देहसे तात्पर्य एक युग या कुछ वर्षोंके कालसे है। वैदिक आर्य ३६० दिन के सावन वर्षको मानते थे और ३६५¼ सौर वर्षके अन्तरको वे हर चौथे सावन वर्षके बाद २१ दिन जोड़कर पूरा करते थे। इस तरह ऋग्वेदक ३६ अक्षरोंके १२,००० बृहती मन्त्रोंके ४,३२,००० अक्षर होजाते हैं। इस हिसाबसे ४,३२,००० दिन या १२०० वर्ष होते हैं। इस तरह शतपथब्राह्मणके रचयिताके अनुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद १२०० वर्षोंमें लिखा गया। शतपथब्राह्मणका रचयिता यजुर्वेदका और सामवेदका रचनाकाल भी १२०० वर्ष मानता है। इस हिसाबसे समस्त वेद २४०० वर्षोंमें लिखे गये, किन्तु अन्य बातों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यजुर्वेद और सामवेदके मंत्रों की रचना ऋग्वेदके मंत्रोंकी तरह दिनोंकी गणनाको ध्यानमें रखते हुये नहीं हुई।

ईश्वरीय ज्ञान एवं भाषाकी आवश्यकता

अनेक विद्वानोंका कथन है कि जिस प्रकार आँखको प्रकाशकी आवश्यकता है अर्थात् उसके विना मनुष्य देख नहीं सकता, उसी प्रकार ज्ञानके विना वुद्धि कुछ भी उन्नति नहीं कर सकती। अभिप्राय यह है कि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई भी गुरुके विना ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। यदि कर सकता, तो आज कालेजों, स्कूलों और पाठशालाओंकी आवश्यकता न होती। इनकी आवश्यकता यह वतला रही है कि मनुष्यको ज्ञानदाताकी आवश्यकता है। अतः जव सृष्टि उत्पन्न हुई और उसमें जव प्रथम ही मनुष्य उत्पन्न हुए तो उनको ज्ञान किसने दिया ? यदि कहो, कि उन्होंने अपने आप उन्नति करली, तो आज भी मनुष्य अपने आप उन्नति कर लेंगे। पुनः स्कूल आदिकी आवश्यकता ही क्या है ? वस, इससे यह सिद्ध हुआ कि सृष्टिके आदिमें जिसने प्रथम मनुष्योंको ज्ञान दिया, वह परमात्मा है तथा वह ज्ञान, वेद है। यही अवस्था भापा की है। भाषा भी मनुष्य किसीके सिखाये विना नहीं सीख सकता। अतः जो भाषा मनुष्यको पहले पहल सिखाई गई, वह वेद-भापा है। उस भाषाके सिखानेवाला ईश्वरके सिवाय अन्य कोई नहीं हो सकता। इसलिये वेद ईश्वर-कृत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

उत्तर—सृष्टि उत्पन्न हुई या नहीं। यदि हुई तो किस प्रकारसे हुई ? इसका विवेचन तो हम 'ईश्वर मीमाँसा' नामक ग्रन्थमें कर चुके हैं। जिज्ञासु पाठक वहाँ देखनेकी कृपा करें। यहां तो हम इतना ही कह देते हैं, कि अभावसे मनुष्योंकी उत्पत्ति मानना ऐसा ही है जैसा कि खपुष्पोंकी माला पहिनना। संसारमें जितनी भी प्राणवाली वस्तुएँ हैं, वे सब अपने वीजसे ही उत्पन्न होती दीखती हैं। मनुष्य, पशु,

पक्षी आदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । जो क्षुद्र जन्तु चतुर्मासमें उत्पन्न होते हैं, चाहे उन्हें हम न देख सकें, परन्तु होते वे भी बीजसे ही हैं । अतः जब मनुष्यका बीज ही नहीं था, तो मनुष्य किस प्रकार उत्पन्न होगया ? यदि कहो, कि परमात्माने परमाणुओंमेंसे बीजके परमाणुओंको लेकर एकत्रित कर दिया था । तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि उसका क्या प्रकार था ?

१—क्या ईश्वरने अपने हाथसे उन परमाणुओंको एकत्रित किया था ?

२—किंवा ज्ञानमात्रसे ?

३—या ईश्वरने प्रकृतिको आज्ञा दी, कि तू मनुष्य आदि सब बीजों के परमाणु एकत्रित करदे ?

४—अथवा ईश्वर तो केवल देखता रहता है, कार्य सब प्रकृति ही करती है, अर्थात् प्रकृतिने उसके भयसे स्वयं इनको एकत्रित कर दिया ?

प्रथम पक्षमें तो ईश्वर सशरीरी सिद्ध होता है। अतः अब यह प्रश्न होता है, कि वह शरीर स्वनिर्मित है या परनिर्मित ? यदि स्वनिर्मित है तब तो शरीरके लिये किसी अन्य निर्माताकी आवश्यकता न रही। यदि उस ईश्वरका शरीर परनिर्मित है तो वह ईश्वर न रहा, अपि तु जिसने ईश्वरका शरीर बनाया वह ईश्वर होगया। पुनः उस विषयमें भी वही प्रश्न उठेगा । अतः यह पक्ष तो आपके पक्षकी पुष्टि करनेमें बिलकुल असमर्थ है।

दूसरा पक्ष भी आपके मनोरथकी सिद्धि नहीं कर सकता। क्योंकि ज्ञानमात्रसे संसारमें कोई किसी कार्यकी सिद्धि करते नहीं

दीखता। यदि ज्ञानमात्रसे कार्य हो जावे तो किसीको पुरुषार्थ करनेकी आवश्यकता न रहेगी। अतः यह भी पक्ष ठीक नहीं।

तीसरे यदि हम यह मानलें, कि ईश्वर प्रकृतिको आज्ञा देता है तो भी उस आज्ञाके लिये मुखकी आवश्यकता होगी। अतः इसमें भी पूर्वोक्त (जो प्रथम पक्षमें उठ चुके हैं) सब प्रश्न आ उपस्थित होंगे। अतः यह प्रश्न भी अत्यन्त दुर्बल है।

अब रह जाता है चतुर्थ पक्ष, जिसको हम संसारका उदासीन कारण कह सकते हैं। परन्तु इस अवस्थामें प्रश्न यह उठता है, कि प्रकृति ईश्वरका भय क्यों मानती है ? तथा क्या इसमें भय आदि विद्यमान हैं ? यदि प्रकृतिमें भय, लज्जा एवं शंका आदि हैं तो उसको जड़ किस प्रकार कह सकते हैं ? यदि भय आदिकी बातें कल्पनामात्र हैं, और इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि ईश्वर की सत्तासे ही सब कार्य होते हैं, तब तो ईश्वरकी सिद्धि ही नहीं हो सकती। तथा न यह सिद्ध हो सकेगा, कि ईश्वर चैतन्य एवं बुद्धिमान् है। क्योंकि ईश्वर उस बुद्धिका उपयोग नहीं ले रहा है। अतः ईश्वर उन चीजोंको बनाता है, यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। यदि हम इन दार्शनिक प्रश्नोंको न भी उठावें तो भी एक और प्रश्न उठता है, और वह यह है कि आरम्भमें मनुष्य युवा उत्पन्न हुए या बालक ? यदि बालक, तब उनका पालन पोषण कौन करेगा ? यदि कहो कि, युवा मनुष्य उत्पन्न होते हैं तो निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं—

१—युवा अवस्था बाल्य अवस्थाके पश्चात् आती है अतः उन्होंने बाल्य अवस्था कहाँ व्यतीत की ?

२—उन्होंने बाल्यकालमें खानेका क्या प्रबन्ध किया।

३—सिंह आदि हिंसक जन्तुओंसे वचने तथा शीत आदि प्राकृतिक कष्टोंके निवारणका क्या उपाय किया।

४—इन सब बातोंका प्रवन्ध इन्होंने अपने आप किया था अथवा इनका रक्षक कोई अन्य व्यक्ति था। यदि बाल्य अवस्थामें इन्होंने स्वयं प्रवन्ध कर लिया था तब तो उन में ज्ञान था ही, पुनः युवा अवस्थामें ईश्वरने ज्ञान क्या दिया? यदि कहो—कि उनका पालक कोई अन्य था, तो वह मनुष्य था या ईश्वर? यदि कहो मनुष्य था तव तो आपके सिद्धान्तकी हानि होगई। क्योंकि मनुष्य तो अभी उत्पन्न भी नहीं हुए थे। यदि आप यह कहें कि उनका पालक ईश्वर था, तव तो ईश्वरको अत्यन्त कष्टका अनुभव करना पड़ा होगा। इस वातके अनुभवी वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जिनके यहाँ एक ही अवस्थाके वहुतसे वालक होते हैं। यदि कहो कि वे मनुष्य पृथ्वीके अन्दर वढ़ते गये और वहां उनको भोजन आदिकी आवश्यकता न थी। जव वे युवा होगये तव वाहर आगये और उसी समय ईश्वरने उनको ज्ञान दे दिया, तो भी ठीक नहीं। क्योंकि विना भोजनके उनका शरीर किस प्रकार वढ़ सकता था। यदि कहो कि, पृथ्वीमें ही मिट्टी आदि खाकर जीवित रहते थे तो यह नितान्त असम्भव है। क्योंकि मनुष्यका खाद्य मिट्टी नहीं है। तथा च, जव मनुष्यके मुख आदि उत्पन्न नहीं हुए थे उस समय वह खुराकको किस प्रकार धारण करता था? कहाँ तक लिखें, जितना इस विषयपर लिखते हैं उतनी ही इसकी निस्सारता प्रकट होती जाती है।

वस, जवकि आपकी मानी हुई यह मनुष्योत्पत्ति युक्तियुक्त नहीं

है तब उनको ज्ञान अथवा भाषा सिखानेका तो प्रश्न ही नहीं जंचता। पुनः इसके आधारपर वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान कैसे कहा जा सकता है। यदि हम उपर्युक्त सब प्रश्न न भी करें तो भी ईश्वरीय ज्ञानकी आवश्यकता कुछ भी नहीं रहती। क्योंकि अभी एक बालिकाने अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्त बतलाये हैं, यह घटना इतनी सत्य है कि उसके विषयमें किसीको भी सन्देह नहीं रह गया है। क्योंकि देशके सर्वमान्य व्यक्तियोंने इसकी परीक्षा करके इस को प्रामाणिक बतलाया है। इस घटनामें निम्नलिखित बातें सर्वमान्य हैं—

(१) बालिकाकी आयु इस समय ७ वर्षकी है तथा वह तीन वर्ष पूर्वसे ही अपने पूर्व जन्मकी बातें बतलाती थी।

(२) उसने अपने पूर्वजन्मके सम्बन्धियोंको पहिचाना है।

(३) उसने अपने पूर्वजन्मके पतिके घरको तथा उस गली आदिको आश्चर्यके ढङ्गसे पहिचाना है।

(४) वह बालिका मथुरामें जब ले जाई गई तो उसने उन शब्दोंका उच्चारण किया जोकि मथुराके विशेष पारिभाषिक शब्द थे, अर्थात् जिनको मथुराके रहनेवाले ही बोल सकते हैं।

परन्तु यह लड़की तो आजसे पूर्व इस जन्ममें कभी मथुरा गई ही नहीं थी, पुनः इसने इन शब्दोंको कहाँसे सीखा, यह देखकर मनुष्योंके आश्चर्यका कुछ भी पारावार नहीं रहा। उसने मथुरा निवासियोंके उन शब्दोंको सहज स्वभावसे समझा था जिनको साधारण जनता नहीं समझ सकती थी।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब इस समय एक कन्या अपने पूर्वजन्मके संस्कारोंसे बिना सिखाये मथुराका ज्ञान प्राप्त कर लेती है, तथा मथुराकी भाषा भी बोल लेती है तो क्या कारण

है कि आदि सृष्टिमें ऐसे मनुष्य उत्पन्न नहीं हो सकते जो कि पूर्वके संस्कारोंके कारणसे भाषा बोल सकें। बस, आपकी मान्यताके अनुसार भी आपकी असम्भव कल्पनाकी कोई आवश्यकता नहीं है। अपि तु यह कल्पना आपकी कल्पनासे उत्तम है कि—"यदि सृष्टि में ऐसे मनुष्य उत्पन्न हुए, जोकि पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण भाषा बोलते थे तथा ज्ञानी भी थे"।

प्रश्न—यूनानका राजा सेमिटिकल तथा द्वितीय फ्रेडरिक एवं महान् अकबर आदि बादशाहोंके आधिपत्यमें अनेक विद्वानोंद्वारा १०-१०, १२-१२ छोटे छोटे नवजात बालकोंको शीशोंके मकानोंमें रखा गया और उनकी परवरिशके लिए धाइयाँ रखी गईं। उनको समझा दिया गया कि वे बच्चोंको खिला-पिलाकर प्रत्येक प्रकारसे उनकी रक्षा करें। परन्तु उनको किसी प्रकारकी कोई शिक्षा न दें, न उनके सामने कुछ बोलें। उन धाइयोंने ऐसा ही किया। इस प्रकार परवरिश पाकर जब बच्चे बड़े हुये तब जाँच करनेसे मालूम हुआ कि वे सभी गूंगे और बहरे थे। यदि बिना शिक्षा दिये स्वयमेव किसीमें ज्ञान उत्पन्न हो सकता हो तो इन बच्चोंको भी बोलना आदि स्वयमेव आ जाता। इनका बहरा और गूंगा रह जाना, स्पष्ट रीतिसे प्रगट करता है, कि स्वयमेव ज्ञान, न उत्पन्न होता है और न उसकी वृद्धि होती है।

उत्तर—आपकी यह युक्ति भी आपके सिद्धान्तका ही खण्डन करती है। क्योंकि यदि ईश्वर ज्ञान और भाषाका दाता होता, तो इन बच्चोंको भी ज्ञान दे देता और भाषा सिखा देता। दूसरी बात यह है कि ईश्वर इन बालकोंको ज्ञान और भाषा सिखाना तो चाहता था, क्योंकि यदि ईश्वर न

चाहता तो उनको बुद्धि और वाणी ही न देता । तथा ईश्वरकी इच्छा यह भी थी कि वे बालक शब्दोंको सुनें। क्योंकि उसने इसीलिए उनको कान दिये थे । परन्तु इस बेचारे ईश्वरकी संपूर्ण इच्छाओंपर इन राजाओंके जरासे हुक्मने पानी फेर दिया । परन्तु निराकार ईश्वर मन मसोस कर रह गया । वाह रे ईश्वर ! धन्य हैं तेरे समर्थक, जिन को यह भी पता नहीं, कि यह युक्ति हमारा खण्डन करेगी या मण्डन। इसके उत्तरमें सम्भव है, ये भोले प्राणी यह कहें, कि ईश्वर तो आदि सृष्टिमें एक ही वार ज्ञान और भाषा सिखानेका कष्ट करता है, प्रत्येक समय वह यह कार्य नहीं करता । परन्तु यह कथन भी उनकी ईश्वर की कल्पनाका विरोध ही करता है। क्योंकि ईश्वरको एक रस माना जाता है तथा उसकी क्रिया और इच्छाको भी नित्य माना गया है। जैसा कि हम दिखला चुके हैं। परन्तु एक रसात्मकमें यह विचार विकार किस कारणसे हुआ, कि अमुक कार्य अब नहीं करना चाहिये । तथा उसको नित्य इच्छामें यह परिवर्तन कैसे हुआ ? दूसरा प्रश्न यह है कि ईश्वर भाषा व ज्ञान किस प्रकार सिखाता है, अर्थात् ईश्वर शब्दों द्वारा ज्ञान देता है या संकेत से, अथवा मान सिक प्रेरणासे ही। ये सभी उपाय ईश्वर नहीं कर सकता, क्योंकि संकेत और शब्द आदिके लिए शरीरकी आवश्यकता होगी। परन्तु वह गरीब शरीर रहित है । मनः प्रेरणामें भी सूक्ष्म शरीरका होना आवश्यक है, किन्तु ईश्वरके पास वह भी नहीं है।

तथा च, एक अटल नियम यह है कि शब्द किसी भी अर्थका द्योतक नहीं है। यदि शब्द ही अर्थका बोधक होता तो प्रत्येक

प्राणी प्रत्येक शब्दके अर्थ समझ लेता। परन्तु ऐसा नहीं है, अतः यह सिद्ध है कि शब्दके अर्थ जाननेके लिये सिखानेवालेकी आवश्यकता है। परन्तु सिखानेवाला शरीरी हो तभी वह सिखा सकता है। यह संसारका अटल नियम है। अब यदि ईश्वरको भाषा सिखानेवाला मानोगे तो उसको साकार और शरीरी भी मानना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें ईश्वरका ईश्वरत्व ही नष्ट होजावेगा।

इसके अलावा एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि ईश्वर मनुष्योंको ही ज्ञान और भाषा सिखानेके लिये क्यों लालयित होरहा था ? क्या ईश्वरकी और मनुष्योंकी कुछ रिश्तेदारी थी या ईश्वर को इनसे अपना कुछ कार्य कराना था ? पुनः मनुष्योंमेंसे भी उसने चार ही मनुष्योंको क्यों पसन्द किया ? इन्हींपर विशेष कृपाका क्या कोई गुप्त रहस्य है। यदि ये सब प्रश्न न भी उठाये जायें तो भी भाषाके लिये ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है।

भाषा

भाषाके विषयमें डा० मङ्गलदेवने अपनी 'भाषाविज्ञान' नामक पुस्तकमें लिखा है कि—

(१) "भाषाके विषयमें सम्प्रदायवादियोंका कथन है, कि हमारे धर्मशास्त्रोंकी परिभाषा ही अनादि एवं स्वाभाविक है। जैसा कि वैदिकधर्मी कहते हैं, कि सबसे प्राचीन एवं ईश्वरप्रदत्त भाषा ही वैदिक भाषा है। यही भाषा सृष्टिके आरम्भमें ईश्वरने मनुष्योंको सिखलाई। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं। इसी प्रकार बौद्धोंका कहना है, कि पाली भाषा ही समस्त भाषाओं की मूल भाषा है। सम्पूर्ण भाषाओंकी यही जननी है। उनके ग्रन्थोंमें लिखा है, कि यदि माता-पिता अपनी भाषा बच्चेको

न सिखलावें तो वह स्वाभाविकतया मागधी (पाली) भाषाको ही बोलेगा। इसी प्रकार एक निर्जन वनमें रक्खा हुआ मनुष्य यदि स्वभाववश बोलनेका प्रयत्न करे तो उसके मुखसे मागधी ही निकलेगी। इसी भाषाका प्राधान्य तीनों लोकोंमें है। अन्यान्य भाषाएँ परिवर्त्तनशीला हैं। परन्तु यही एक (मागधी) भाषा सदा एक रूपमें रहती है। भगवान् बुद्धने अपने 'त्रिपिटक' की रचना भी इसी सनातन भाषामें की है।

(२) इसी प्रकार ईसाई लोग और विशेषकर रोमन कैथलिक मतानुयायी कहते हैं कि 'हिब्रू' भाषा जिसमें कि उनकी 'प्राचीन विधान' नामक धर्म-पुस्तक है। पृथ्वीकी सारी भाषाओं से प्राचीन भाषा है और सारी भाषाएँ इसीसे निकली हैं। क्योंकि सृष्टिके आरम्भमें अदनके बागमें रहनेवाले आदम और हव्वा इसी भाषा में बातचीत करते थे। एक महाशय लिखते हैं, कि दुनियाका सारा प्राचीन इतिहास इसको सिद्ध करता है, कि 'हिब्रू' से ही मनुष्य-भाषाका आरम्भ हुआ है।"

प्रत्येक व्यक्ति अपनी धर्मपुस्तकको ईश्वर या खुदाका कलाम बताकर जनताको धोखेमें डालकर अपना उल्लू सीधा करता है। सबसे बढ़कर इनकी हठधर्मीकी पराकाष्ठा यह है, कि ये लोग अपने अपने अन्धविश्वासोंको पुष्ट करनेके लिये बड़े बड़े ग्रन्थ लिखनेका साहस करते हैं। जैसे कि 'वैदिकसम्पत्ति' आदि अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। इन पुस्तकों में झूठे प्रमाण और मिथ्यार्थके अतिरिक्त कुछ भी सार नहीं है। यह तो केवल भोली भाली जनताको फंसाये रखनेका एक कुत्सित प्रयत्न है।

डा० मङ्गलदेवने वहीं लिखा है कि "इस मतसे भाषाविज्ञान की उन्नतिमें बड़ी भारी बाधा पहुंचती रही है। यूरूपमें अठारवीं

शताब्दी तक लोग यह मानते रहे कि 'हिब्रू' से ही.........पृथ्वी की सारी भाषायें निकली हैं। इस अन्धविश्वासके दिनोंमें भाषाओंकी परस्पर तुलना आदिके द्वारा उनका वर्गीकरण आदि करना; जोकि भाषाविज्ञानकी मूलभित्ति है नितरां असम्भव था।

इसी कारण मनमानी व्युत्पत्तियों और युक्तियोंके द्वारा किसी भाषाके एक शब्दका सम्बन्ध दूसरी भाषाके शब्दके साथ दिखलाया जाता रहा।"

तथा च, आप आगे लिखते हैं कि "भाषाके देशकृत और कालकृत भेदोंपर दृष्टि डालनेसे जैसाकि ऊपर दिखाया जा चुका है, भाषाकी परिवर्तनशीलता स्पष्ट होजाती है। साहित्यकी दृष्टिसे किसी उन्नत भाषाको लें, जिसका इतिहास मिलता हो, उससे यह स्पष्ट होजाता है कि भाषाकी उन्नति धीरे धीरे क्रमविकासके अनुसार होती है। इसलिये सभ्य और असभ्य जातियोंकी भाषाओं में बड़ा अन्तर दीख पड़ता है। भाष्य का सारा इतिहास इसका साक्षी है, कि लेखनकला, कविता, चित्रविद्या, वास्तुविद्या आदि अन्यान्य कलाओंकी तरह जो धीरे-धीरे सभ्यताके उन्नत होनेके साथ उन्नत होती हैं। भाषा भी मनुष्यके आश्रयमें अनेक परिवर्तनोंके भिन्न भिन्न प्रकारकी आवश्यकताओंके अनुसार नये अनुभव और ज्ञानकोषके द्वारा प्रकट करनेके लिये नये नये रूपोंमें गुजरती हुई उत्कृष्टताकी ओर बढ़ता रही है। इस प्रकार देखनेसे किसी भी भाषाको लेवें हमें उसमें एक बहुत बड़ा भाग ऐसा मिलेगा जिस को स्पष्ट रीतिसे मनुष्योंने अपनी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये बुद्धि और विचारको काममें लाकर बनाया है।"

तथा च—श्री पं० गोविन्दरामजी त्रिवेदी "वैदिकसाहित्य" पृ० १९ पर लिखते हैं कि—

"परन्तु सभी हिन्दू वेदोंकी नित्यताके कायल नहीं हैं। कुछ लोगोंका मत है, भाषा-विज्ञानके अनुसार अपनी अभावपूर्तिके लिये मनुष्य भाषाएँ बनाया करते हैं और भाषाएँ बदलती रहती हैं। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही रूपोंमें आ चुकी है। ऋग्वेद-संहिता और अथर्ववेदसंहिताकी भाषाओंमें पर्याप्त भिन्नता है। शतपथब्राह्मण और गोपथब्राह्मणकी भाषा शैलीमें बड़ा भेद है। यजुर्वेदकी तैत्तिरीयसंहिता और माध्यन्दिनीसंहिताकी भाषाओंमें भी मार्मिक भिन्नता है। इससे सिद्ध होता है कि वैदिकसंहिताओंकी रचना समय समयपर हुई है, एक साथ नहीं।"

भाषा-विज्ञानवेत्ता (Pilo logists) फिलोलो जिस्ट्स कहते हैं कि 'मनुष्यकी स्वाभाविक ध्वनियोंकी नकलपर ही शब्दोंकी सृष्टि हुई है। जिस समय माता बच्चेको दूध पिलाने लगती है, उस समय यदि बच्चेकी इच्छा दूध पिलानेकी नहीं होती, तो वह स्वभावतः "नि-नि" करने लगता है। इसी "नि-नि" की नकलपर ना, न, नो, नोट, नहीं आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई है। मनुष्यके श्लेष्मा फेंकते समय थू, पिच-पिच आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार कुत्तेके भौंकनेपर भों-भों, घोड़ेके हिनहिनानेपर हिनहिनाहट, मेंढकके टर्रानेपर टरटराहट आदि शब्दोंकी सृष्टि हुई। एक ही विषयकेलिये विभिन्न जातियोंमें विविध ध्वनियाँ भी हुआ करती हैं। अंग्रेजी पिचकेलिये 'स्पिट' और माताके लिये 'मा-मा' ध्वनियाँ हैं। इस प्रकार विविध जातिगत ध्वनियोंकी विभिन्नता, विभिन्न समयोंके जल-वायुकी विभिन्नता और विविध अनुकरणोंकी विभिन्नताके कारण विविध संकेतों, शब्दों और भाषाओंकी सृष्टि हुई है। फलतः वैदिक भाषा हो या कोई भी भाषा हो, इसी अनुकरण-प्रणालीपर मनुष्यके द्वारा ही बनाई गई है। मनुष्य ही भाषाको भी बनाता है और गायत्री जगती आदि छन्दोंकी रचना करके उनमें वैदिक मन्त्रोंको निबद्ध

करता है। इसलिये वेद, कुरान व वाइबिल मानव-निर्मित ग्रंथ हैं। इलहामी वा छन्दों, शब्दों और अक्षरोंके रूपोंमें समाधि-दशामें प्राप्त नहीं हैं।"

निरुक्त और वैदिक इतिहास—

यास्कका निरुक्त देखनेसे पता चलता है कि पुराणोंके अनुसार यास्क भी वेदोंमें इतिहास मानते थे।

निरुक्त (२।४) में अन्तरिक्षके नामोंमें आए हुए समुद्र नामकी निरुक्ति करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं कि समुद्र, सागर और अन्तरिक्ष दोनों को कहते हैं। उदाहरणमें यास्कने एक वेद-मन्त्र दिया है, जिसकी भूमिकामें वे लिखते हैं कि—ऋष्टिसेन अथवा इषितसेनके शन्तनु और देवापि नामक दो कुरुवंशी भाई थे। छोटे भाई शन्तनु ने अपना अभिषेक कर लिया देवापि तप करने लगा। इस कारण उसके राज्यमें १२ वर्ष तक पानी नहीं बरसा। ब्राह्मणोंने उससे कहा कि तुमने अधर्म किया है जो बड़े भाई का अभिषेक न कर स्वयं अपना अभिषेक कर लिया है। इसी कारण पानी भी नहीं बरसता है। तब शन्तनुने देवापिसे राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। देवापिने कहा—"मैं तुम्हारा पुरोहित बनूंगा और यज्ञ करा दूँगा जिससे पानी बरसेगा।"

ये हैं निरुक्तकार यास्काचार्यके शब्द। इनसे महाभारत और यास्क के आख्यानोंमें घनिष्ठता आगई है। ऋष्टिसेन, शन्तनु और देवापि ये महाभारतके ऐतिहासिक चरितनायक हैं। इतना ही नहीं, यास्कने फिर अधिक स्पष्ट करनेके लिये "तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय, यद्देवापि, शान्तनवे" आदि मन्त्रलिखकर अपनी सम्मति को और दृढ़ किया है।

नदी नामोंकी निरुक्ति करते हुए यास्कने इतिहास लिखा है—"विश्वामित्र ऋषि पिजवनके पुत्र सुदारु के पुरोहित थे। वे यज्ञमें प्राप्त हुए धनको लेकर विपाट् और शुतुद्री नामक नदियोंके संगम पर आये।" ये पंक्तियाँ २ अध्याय ७ पादके "रमध्वं मे वचसे सोम्याय" आदि मन्त्रको भूमिकामें हैं, जो यास्ककी स्वयं अपनी ओरसे लिखी गई टिप्पणियाँ हैं। इसी मन्त्रमें आये हुए "कुशिकस्य सुनुः" की व्याख्यामें—"कुशिको राजा वभूव" अर्थात् कुशिक नामक राजा हुए थे, विश्वामित्र उन्हीं कुशिकके लड़के थे, यह भाव निकलता है। विश्वामित्र कुशिकके लड़के थे, यह ऐतिहासिक बात पौराणिक साहित्यमें यथेष्ट रूपसे मिलती है।

अब हम इस प्रकारके और उदाहरणोंको छोड़ कर कुछ ऋषियोंके नामोंका उल्लेख करेंगे, जिससे मालूम होगा कि यास्कके मतानुसार वेदमन्त्रोंमें उनका वर्णन आता है। इनके लिखनेसे वेदोंकी ऐतिहासिकताके विषयमें यास्काचार्यकी सम्मति और अधिक प्रकाशमें आजायेगी।

"वत्" उपमा वाची शब्द पर लिखते हुए अ० ३ के तृतीय पादमें यास्कने एक मन्त्र दिया है—

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अंगिरस्वन् महिव्रतप्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्॥

अर्थात् हे ईश्वर! जैसे तुमने प्रियमेध आदि ऋषियोंकी प्रार्थनाको सुना है, उसी प्रकार मुझ प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना सुनो।
हमें यह अच्छीतरह स्मरण रखना चाहिए, कि इस मन्त्रमें आये हुए सब नाम, यास्कके अनुसार ऋषियोंके ही हैं। यास्काचार्य उनके विषयमें लिखते हैं—"प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" आदि। इसी प्रकार "च्यवन-

ऋषिर्भवति” (४।३), “भार्म्यश्वोभृम्यश्वस्य पुत्रः” (६।२) आदि वर्णन भी पर्याप्त मात्रामें मिलता है।

मूप शब्द की निरुक्ति में “सन्तपन्ति माम्” आदि दिए गए मन्त्रोंके अर्थ लिखनेके पश्चात् यास्क कुछ शब्द अपनी ओर से लिखते हैं—

त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तं प्रति बभौ।

अर्थात् ‘कुएँमें गिरे हुए त्रित नामक ऋषिको इस सूक्तका ज्ञान हुआ।’ इसके साथ ही कमसे कम ५–६ स्थलों पर “तत्रेतिहासमाचक्षते” के बाद जो कुछ लिखा गया है, क्या वह सब कुछ यास्ककी ऐतिहासिक प्रवृत्तिका द्योतक नहीं है? पूर्वोक्त “सन्तपन्ति” इत्यादि मन्त्रके नीचे ही यास्काचार्यने अपनी सम्मति भी इस विषयमे लिख दी है—

तत्रब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति।

अर्थात् ‘वैदिक सूक्त, इतिहास, ऋचा और गाथासे युक्त है।’

ऊपरके विवेचनसे हम इस परिणाम पर पहुचते हैं कि, यास्क को वेदोंमें इतिहास अभिलपित था।

इसीलिये महाभारतमें महर्षि व्यास कहते हैं—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति॥ २६७॥

(म० आ० अ० १)

इतिहास और पुराणोंसे वेदके अर्थका प्रकाश करें, क्योंकि थोड़ी विद्या पढ़े हुए जनसे वेद को भय उत्पन्न होता है, कि वह मुझे बिगाड़ेगा

वेदोंमें प्राचीन बजुर्गोंका इतिहास है। जब तक ऐतिहासिक सामग्रीका पूरा ज्ञान न हो, उस समय तक भी वेदोंका समझना कठिन है।

वेद और पारसी जाति

ऋग्वेदमें अनेक स्थानोंपर 'जरूथ' व 'दस्यु' आदि शब्द निन्दित लोगोंके लिए आये हैं, परन्तु पारसियोंके धर्मशास्त्रोंमें इनका सुन्दर एवं श्रेष्ठ अर्थ है। तथा ये शब्द पूज्य व्यक्तियोंकेलिए प्रयुक्त हुए हैं। हम इनको सप्रमाण उपस्थित करते हैं—

विश्वा अग्नेऽपदहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्।
(७।१।७)

'हे अग्नि! जिस तपसे तूने जरूथको जलाया, उसीसे द्वेषको जला'।

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि रायेपुरन्धिम्।
(ऋ० ७।१०।६)

'हे अग्नि! वसिष्ठने तुझे प्रज्वलित करके जरूथको मारा। हमें समुचित धन दे।'

अग्निर्हत्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्।
(ऋ० १०।८०।३)

'पानीसे अग्निने जरूथको जलाया'। ऋग्वेदमें इन तीन स्थानों पर जरूथका नाम आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जरूथकी मृत्यु आगमें जलाकर अथवा अग्निबाण चलाकर बन्दूक या तोप से की गई। पारसियोंके दीनकर्द, वेहेरामयश्तदाहेस्तान आदि ग्रन्थोंमें भी स्पष्ट उल्लेख है कि जरथुश्त्रकी मृत्यु अग्नि द्वारा हुई। अतः यह स्पष्ट है कि ऋग्वेदका 'जरूथ' पारसियोंका पैगम्बर 'जरथुश्त्र' ही है।

ऋग्वेदमें दस्यु शब्द कहीं एक वचनमें और कहीं बहुवचनमें आता है। पारसियोंके ग्रन्थोंमें जरथुस्त्रको दस्यु (दख्युमा) और कहीं कहीं दख्यु नाम सूरो (दस्युओंमें विद्वान्) भी आया है। यद्यपि वैदिक साहित्यमें दस्युको बड़े अनादरसे देखा जाता है और अथर्ववेदमें तो उसके सर्वदमन और सर्वसंहारकी प्रार्थनाएं की गई हैं। पर पारसी साहित्यमें दस्यु शब्द सम्मान-सूचक है। दस्युका अर्थ 'दीप्यमान' ('दस्' चमकना) है, पर बादको यह शब्द दंस् धातु से भी निकाला गया, जिसका अर्थ 'काटना' है।

दस्यु असुर अथवा अहुरमज्दके उपासक थे। इसीलिये वे असुर भी कहलाते थे। दस्यु और असुर एक ही हैं, यह बात ऋग्वेद में भी स्पष्ट है। ऋग्वेदमें दो मन्त्र इस प्रकारके हैं—

अयमग्नि पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून्।
(३।२९।९)

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुरान् अभिदेवा असाम्।
(१०।५३।४)

दोनों मंत्रोंका तात्पर्य एक ही है। (१) यह अग्नि युद्ध-विजेता वीर है, जिसकी सहायतासे देवोंने दस्युओंको जीता और (२) दूसरे मन्त्रका भाव है कि मैं इस प्रथम वाणीको अब कहूँगा, जिससे देवता असुरोंको जीत लें। यह मन्त्र भी अग्नि द्वारा कहलाया गया है। तात्पर्य यह है कि वेदमें असुर और दस्यु शब्द एक ही भावके प्रदर्शक हैं। दस्यु और असुर एक ही हैं, यह बात अथर्ववेद के मन्त्रसे और भी स्पष्ट होजायेगी—

राजा देवो वनस्पतिः। समें शत्रून् विबाधतां इन्द्रो दस्यूनिवासुरान्॥
(१०।३।११)

इस मन्त्रमें दस्यु और असुर दोनों शब्द साथ साथ एक ही भाव के लिये प्रयुक्त हुए हैं। समस्त जरथुश्त्री साहित्य इस बातका प्रमाण है, कि पारसियोंका नाम ही असुर या अहुर था। प्रारम्भमें देव और अहुर दोनों एक ही देशमें भाई भाईके रूपमें रहते थे। दोनों ही आर्य-संस्कृतिके पालक थे। महाभारतमें असुरोंको तो देवोंका बड़ा भाई तक कहा है।

महात्मा जरथुश्त्रका 'जरूथ' नाम तो वेदमें है ही, पर जहाँ एक वचन दस्यु शब्दका प्रयोग किया गया है, वहाँ भी जरथुश्त्रसे ही तात्पर्य समझना चाहिए। जरथुश्त्र समस्त दस्युओंका नेता था। अतः वैदिक साहित्यवाले इसे अकेले दस्यु शब्दसे ही सम्बोधित करते थे। ऐसा होना बहुत ही स्वाभाविक है। हाँ, बहुवचनान्त दस्यु शब्दका भाव उन सर्व अहुरमज्दियन दस्युओंसे था, जो जरथुश्त्रके अनुगामी थे।

तथा च "ताण्ड्यब्राह्मण"में लिखा है कि—

देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन्।

(१८।१।२)

असुर ज्येष्ठ और देव कनिष्ठ थे, यह बात ब्राह्मणग्रन्थोंमें उल्लिखित है—"कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः"। शतपथ १४।४।१।१ देवोंने राज्य माँगा—(जब देव बड़े हुए तो उन्होंने दैत्यों और दानवोंसे कुछ भूमि-राज्य माँगा)।

काठकसंहितामें लिखा है कि—

असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त-नोऽस्या इति। ३१।८।

अर्थात् देवोंने यह बात स्वीकार न की। दोनोंमें घोर युद्ध

हुए। संख्यामें ये १२ थे। संस्कृत वाङ्मयमें ये संग्राम देवासुर-संग्रामोंके नामसे प्रसिद्ध हैं

इन्हीं देवासुरसंग्रामोंके विषयमें महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२ में निम्न प्रकारसे लिखा है—

इदं तु श्रूयते पार्थ ! युद्धे देवासुरे पुरा ।
असुरा भ्रातरो ज्येष्ठा देवाश्चापि यवीयसः ॥
तेषामपि श्रीनिमित्तं महानासीत्समुच्छ्रयः ।
युद्धं वर्षसहस्राणि द्वात्रिंशदभूत्किल ॥
एकार्णवां महीं कृत्वा रुधिरेणपरिप्लुताम् ।
जघ्नुर्दैत्यांस्तथा देवास्त्रिदिवं चाभिलेभिरे ॥

उपर्युक्त समस्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि देव और असुर पहिले भाई भाई थे और आपसमें मित्रतासे एक साथ मिलकर रहते थे। तत्पश्चात् उनका राजनैतिक व आर्थिक कारणोंसे परस्पर में वैमनस्य होगया। और इस वैमनस्यने भयानकरूप धारण कर लिया। जिसके परिणामस्वरूप इनके वार वार भयानक युद्ध होने लगे। जो पीढी दर पीढ़ी तक चलते रहे। उन युद्धोंका वर्णन वेदों में भी सूत्ररूपसे अनेक स्थानोंमें किया गया है। अतः स्पष्ट है कि वे मन्त्र जिनमें इन युद्धोंका वर्णन है उनका निर्माण उन ऐतिहासिक घटनाओंके पश्चात् हुआ है। अतः इनको नित्य कहना, युक्ति और प्रमाणोंके विरुद्ध है।

तथा च, गुरुकुल कांगड़ीके सुयोग्य स्नातक डाक्टर प्राणनाथ जी विद्यालङ्कार डी० एस० सी० के मतानुसार ऋग्वेदके बहुतसे "राजा, सूसा, सुमेर, अक्कद, हित्त, फीनिसिया, मिश्र आदि देशोंके शासक थे, उनकी तिथि, भूमि, वंश आदि भी ज्ञात हैं" आपने इस

विषयको नागरीप्रचारिणीपत्रिकामें प्रबल प्रमाणों व युक्तियोंसे सिद्ध किया है कि इन्द्रादि वैदिक देवता मिश्र आदि देशोंके राजा थे। और इन्द्रादि शब्द उपाधिवाचक हैं।

तथा च—वैदिक साहित्यमें यथेष्ट ऐतिहासिक सामग्री भी है। 'शतपथब्राह्मण' १४।५।४।१० और 'अथर्ववेद' में इतिहासको एक कला माना गया है। 'मनुस्मृति' (२।७२) में इतिहासकी महिमा है। 'छान्दोग्योपनिषद्' और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासको पञ्चमवेद माना है। इतिहासमें धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, पुराण आदिकी गिनती थी। 'महाभारत' (१।१।८३) में इतिहासको मोहान्धकार दूर करनेवाला बताया गया है। वैदिकसंहिताओंमें विविध ऋषियों और राजाओंके वंशोंका विवरण है। इसी प्रकार शतपथमें मिथिला, विदेह, दुष्यन्त, भरत, जनमेजय, उग्रसेन आदि आदिका वर्णन है। ताण्ड्यब्राह्मणमें भी विदेह आदिकी कथाएँ हैं। तैत्तिरीयब्राह्मणमें कालकञ्ज असुर और वाराहावतारकी बातें हैं। ऐतरेयब्राह्मण तथा तैत्तिरीय और सांख्यायन आरण्यकोंमें शुनाशेप, अहिल्य; पाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, काशी, पाञ्चाल आदि की स्पष्ट कथाएं हैं। ऋग्वेदमें उर्वशी, पुरुरवा, यम-यमी आदिकी क्रमबद्ध कथाएं हैं। ऋग्वेदका दाशराज्ञ युद्ध सूर्यचन्द्र वंशियोंका प्रसिद्ध युद्ध है। संस्कृत साहित्यके सैकड़ों ग्रन्थोंमें आर्योंका इतिहास भरा पड़ा है। हाँ, यह अवश्य है, कि वेदोंमें क्रमबद्ध इतिहास नहीं है।

लोग कहते हैं कि वेदमें वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि नामोंके दूसरे अर्थ हैं, उन्हें लोगोंने वेदसे लेकर व्यक्तिविशेष तकमें प्रयुक्त किया। अच्छा नामोंकी तो यह बात है; परन्तु वसिष्ठ, विश्वामित्र, उर्वशी आदिकी कथाओंकी क्या गति हो? उत्तर दिया जाता है कि, वे कथाएँ रूपक हैं। यह ठीक नहीं। यदि वैदिक इतिहास रूपक है, तो वसिष्ठ, विश्वामित्रकी पुराणकालीन व रामायणीय

अथवा महाभारतीय कथाएँ भी रूपक क्यों नहीं ? यद्यपि माननें वाले तो, रामायण, महाभारतको भी रूपक मानते ही हैं, परन्तु इस तरह किसी भी जातिके सारे इतिहासको रूपक मान लेना अन्याय है। वेद जैसे, प्राचीनतम ग्रन्थरत्नमें निबद्ध हमारी समूची संस्कृति, इतिहास, आचार आदि रूपक हैं, काल्पनिक हैं—यह कहना अनुपयुक्त है। हम पहले लिख आये हैं कि सारी संहिताओं में इतिहास है। कोई भी सज्जन किसी वेदसंहिताको उठाकर निष्पक्ष भावसे देखे, तो उसे वहाँ ऐतिहासिक बातें यथेष्ट मिलेंगी।

ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, सबमें इतिहास भरा पड़ा है। वेदको ईश्वरका विश्वास माननेवाले सायण, भट्टभास्कर, स्कन्द स्वामी आदि भी वेदमें इतिहास मानते हैं। शङ्कर, रामानुज, वल्लभ आदि सभी आचार्य वेदमें इतिहास मानते हैं। यास्कने भी वैदिक इतिहासोंका कई बार उल्लेख किया है, और यही विज्ञान-सम्मत प्राचीन परम्परा भी है।

वेदका सा प्राचीनतम इतिहास पाकर भी यदि हम उसे रूप-कालङ्कारमें उड़ाकर इतिहासहीन जाति बन जायें, तो खेदकी बात होगी। प्राचीनतम वैदिक इतिहास ही तो हमारा प्रधान बल है, जिसके द्वारा हम युगों तक गौरवान्वित रह सकते हैं। लोकमान्य-तिलक, डा० अविनाशचन्द्र दास, श्रीयुत पावगी आदि भी इस बात का समर्थन करते हैं।

हमारे विचारसे वैदिकसंहिताएं अनेक कालकी रचनाएं हैं। मण्डलों, अनुवाकों, सूक्तोंसे यह बात स्पष्ट विदित होती है। एकसे एक सूक्त सम्बद्ध नहीं। एक सूक्तके सब मन्त्र भी सम्बद्ध नहीं। किसी किसी मन्त्रमें तो एक वचन और बहुवचन दोनोंका एक ही व्यक्तिकेलिये प्रयोग हुआ है। एक ही सूक्तमें कई देवोंकी प्रार्थनाएँ भी हैं। कहीं की भाषा अत्यन्त प्राचीन मालूम होती है और कहीं

की लौकिक संस्कृतकी तरह । ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तीनों की भाषाओंमें कहीं कहीं बहुत भेद दिखाई देता है । किसी मंत्रमें ऐसी भौगोलिक परिस्थितिका वर्णन है, जो कम से कम २५ हजार वर्षोंकी है । तथा किसी किसीमें गङ्गा, यमुना, सरयू, कीकट आदि का भी वर्णन है कहीं उच्चतम सामाजिक परिस्थितिका वर्णन है और कहीं कहीं निम्नतम का भी । कहीं जादू टोनेकी बातका उल्लेख है और कहीं अनिर्वचनीय ब्रह्म का । इस प्रकार नई और पुरानी बातोंको देखकर स्पष्ट ही विदित होता है, कि वे मन्त्र विविध समयोंमें रचे गये और सबको संहिता-रूपमें वेदव्यास, याज्ञवल्क्य आदि महर्षियोंने ग्रथित किया ।

वेदविभाग

ब्रह्मणा ब्राह्मणानाञ्च तथानुग्रहकांक्षया ।
विव्यास वेदान्यस्मात्स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ।३०।
वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकञ्चैव स्वमात्मजम् ।३१।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ।३२।

(महाभारत, आ० प० अ० ४)

तथा च—

ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान्स जग्राह चतुरो वेदपारगान् ।
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ॥

जैमिनिं सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् ।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः ॥
विभेद प्रथमं विप्रः पैल ऋग्वेदपादपम् ।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद्वाष्कलाय च संहिते ॥
चतुर्धा स विभेदाथ वाष्कलिर्द्विजसंहिताम् ।
यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन् महामुनिः ॥
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥
शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जग्रहुस्तेऽप्यनुक्रमात् ।
(विष्णुपु०, ३।४।५)

तथा च १—महीधर अपने यजुर्वेदभाष्यमें लिखता है—

तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान् विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा व्यस्य ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यांश्चतुरो वेदान् पैशम्पायनजैमिनिसुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश ।

अर्थात् वेदव्यासको ब्रह्माकी परम्परासे वेद मिला और उसने चार विभाग किये।

२—महीधरके पूर्ववर्ती भट्टभास्कर अपने तैत्तिरीय-संहिता-भाष्यके आरम्भमें क्या लिखते हैं—

पूर्वं भगवता व्यासेन जगदुपकारार्थमेकीभूयस्थिता व्यस्ताः शाखाश्च परिच्छिन्नाः ।

अर्थात् भगवान् व्यासने एकत्र स्थित वेदोंके दो विभाग करके शाखाएँ नियत कीं।

भट्टभास्करसे भी बहुत पहले होने वाले आचार्य दुर्ग, निरुक्त १।२० की वृत्तिमें लिखते हैं—

वेदं तावेदकं सन्तमतिमहत्वाद् दुरध्येयमनेकशाखा-भेदेन समाम्नासिषुः। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः।

अर्थात् वेद पहले एक था, पीछे व्यास द्वारा उसकी अनेक शाखाएँ निर्मित हुईं।

इसी लिये महाभाष्यकार पतञ्जलिने वेदोंके ज्ञानको नित्य माना है किन्तु मन्त्रों, छन्दों, अर्थों और संहिताओंको अनित्य माना है।—यथा

न हिच्छन्दांसि क्रियन्ते। नित्यानिच्छन्दांसीति। यद्यप्यर्थो नित्यो यात्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या। तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति

अर्थात् छन्द कृत नहीं हैं। छन्द नित्य हैं अर्थात् छन्दोंका अर्थ नित्य है, पर वर्णानुपूर्वी उनकी शब्द रचना अनित्य है। उसी अनित्य वर्णानुपूर्वीके भेदसे ही काठक, कापालक, आदि भेद होगए हैं।

इसी लिये पृथक्-पृथक् आचार्योंके अनेक मत हैं। कोई यजुर्वेदको प्रधानता देता है। उसीको नित्य मानता है और अन्य वेदोंको उसीकी शाखारूप मानता है जैसा कि—

एक एव यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्

(वि० पुराण)

तथा च—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः

इसी प्रकार ऋग्वेदी "ऋग्वेद" को प्रथम बतलाते हैं, और अथर्ववेदी अथर्व वेद को ही मुख्य मानते हैं।

वेद ईश्वर रचित नहीं—

"प्रत्यक्ष प्रमाणसे वेदका ईश्वररचितत्व सिद्ध नहीं होता। वेदके ईश्वर रचितत्व विषय में अनुमान दोषदुष्ट हैं।

वेदके साथ भी उनका सम्बन्ध नहीं है। अतएव विषयके साथ इन्द्रिय सम्बन्धसे उत्पन्न होने वाला प्रत्यक्ष वेदके तथा कथित सृष्ट्याद्यकालीन अस्तित्व को विषय नहीं करसकता। और भी, वेद शास्त्र प्रत्यक्ष है, परन्तु उसके रचयिता ईश्वरके साथ सम्बद्ध है, ऐसा किसीको प्रत्यक्षगोचर नहीं होता। ईश्वर परोक्ष है, ऐसा मान्य होने से उसके साथ शास्त्रका सम्बन्ध प्रत्यक्षसे नहीं जाना जासकता, क्योंकि सम्बन्धके प्रत्यक्ष होनेके लिये दो सम्बन्धियोंका प्रत्यक्ष होना आवश्यक है।

अनुमान द्वारा भी उक्त सिद्धान्त प्रतिष्ठित नहीं होसकता है। यह जो हेतु कहा जाता है, कि वेदका रचयिता कोई मनुष्य वर्तमान कालमें ज्ञात न होनेसे वेद ईश्वर-रचित हैं, सो समीचीन नहीं। क्योंकि ऐसाही तर्क अन्य अनेक ग्रन्थोंके विषयमें भी समान रूपसे प्रदान कर सकते हैं, जिनके रचनाकाल और रचयिता अज्ञात हैं। मान लीजिये, कि कोई अपरिचित पुरुष या अज्ञात पिता-माताके द्वारा परित्यक्त शिशु आपके निकट आता है, उस स्थलमें क्या आपके लिये यह सिद्धान्त करना समीचीन होगा कि वह मनुष्य-जनित नहीं, किम्वा वह सृष्टिके आदिकालमें भी विद्यमान था? और भी किसी पुस्तकका किसी समाजमें वहुत कालसे अध्य-यन होता आरहा है और ग्रन्थकर्ता अज्ञात है, केवल इस हेतुसे उसका सृष्ट्याद्यकालमें ईश्वर-रचिततत्व होना नहीं अनुमान किया जा सकता। यह भी नहीं कह सकते कि वेदका मनुष्य कर्तृत्व स्मरण में नहीं आता, इसलिये वह ईश्वररचित है। अनेक प्राचीन पदार्थ

ऐसे हैं जिनके निर्माणकर्ता स्मृतिगोचर नहीं हैं, उस हेतुसे क्या उन्हें सृष्ट्याद्यकालमें सृष्ट या ईश्वरकृत मानेंगे? ऐसे ही और भी अनेक वचन पाये जाते हैं जिनके रचयिता ज्ञात नहीं, किन्तु स्मरणातीत कालसे लोगोंमें वे अखण्डस्वरूपसे प्रचलित होरहे हैं। परन्तु यह कोई हेतु नहीं है, कि जिससे हम यह सिद्धान्त कर सकें कि वे सृष्ट्याद्यकालसे ईश्वर रचित हैं। और भी, वैदिक शब्दका हम लोग साधारणतया जो शब्द व्यवहार करते हैं, उनसे पृथक् स्वरूपवाला नहीं मान सकते। यदि लौकिक शब्द और वैदिक शब्दोंमें स्वरूपभेद स्वीकृत हो, तो मनुष्योंको वेदार्थ बोधगम्य नहीं होसकेगा। स्वयं वेद हमारे प्रति वेदार्थको प्रतिपादन नहीं करते। उनके अर्थकी अवगतिके लिये कोई अपौरुषेय (ईश्वररचित) व्याख्या भी नहीं है, जिससे कि वेद बोधगम्य हो। अतएव वैदिक और लौकिक शब्दोंमें भेद स्वीकार करना संगत नहीं। जब लौकिक शब्द और वैदिक शब्दोंमें उनकी स्वाभाविक अवस्थामें कोई प्रकृति-गत (शब्दस्वरूपमें) भेद नहीं है, जब दोनोंका एकही शब्द संकेत है, जब दोनों, प्रयुक्त संकेत और उच्चारणके अनुसार ज्ञानको उत्पादन करते हैं, जब वैदिक और लौकिक शब्द दोनों ही उच्चारित न होने पर श्रुतिगोचर नहीं होते और जब वैदिक अक्षरोंमें दूसरी कोई विशिष्टता नहीं, तब उत्पत्ति विषयमें भी वे भेद-युक्त नहीं हो सकते और ईश्वररचितरूपसे अनुमित नहीं हो सकते। अतएव प्रमाणित हुआ कि वैदिक शब्दको भी लौकिक शब्दके समान मनुष्य-रचित मानना होगा जब वैदिक शब्द, हम लोग जो शब्द साधारणतः व्यवहार करते हैं उनके साथ समस्त भाववाला है, तब क्या प्रमाण प्रदान कर सकते हैं। जिससे यह प्रदर्शित हो सके कि, वैदिक शब्दकी आनुपूर्वी (पौर्वापर्य) और उसमें संलग्न अर्थ ऐसा विलक्षण स्वभाववाला है, कि वह किसी मनुष्य रचयिता का फल नहीं हो सकता, किन्वा साधारण रीतिसे साधारण

मनुष्य बुद्धिको बोधगम्य नहीं हो सकता।

परस्पर अपने भावोंको प्रकट करनेके उद्देश्यसे भाषाकी रचना होती है। सांकेतिक भाषा प्रचलित होनेके पश्चात् संशोधित-रूपसे (संस्कृत) ग्रन्थकी भाषा, सृष्टिके आदि कालमें नहीं हो सकती। और भी, (१) विज्ञानकी दृष्टिसे, (२) ऐतिहासिक दृष्टिसे तथा (३) वेदके अन्तर्गत विषयोंकी दृष्टिसे विवेचन करनेपर, उसे "सृष्टिके आदि कालमें निराकार ईश्वरके द्वारा रचित है।" ऐसा अनुमान नहीं कर सकते।

(१) वर्तमान उन्नत वैज्ञानिकगवेषणाके फलसे यह सिद्धान्तित होता है कि, पृथिवीमें अति प्राचीन अवस्थामें मनुष्यके वास योग्य जलवायु और भूमि नहीं थे। प्रथम खनिज, पश्चात् उद्भिज, पश्चात् प्राणीजगत् तदनन्तर मनुष्यका आविर्भाव हुआ। एक एक के पश्चात् दूसरी अवस्थाके आनेमें बहुत काल व्यतीत हुआ है। (२)वेदोंमें पाए जाने वाले तत्कालीन नदियोंके नाम और ग्रामादिकों के विवरणसे तथा अन्य अनेक कारणोंसे यह अनुमान किया जाता है कि, आर्योंके उत्तरीय देशोंमें निवास करते समय वेदोंकी रचना हुई है। इतिहासज्ञ लोग वेदोंकी रचनाके समयका भी निर्देश करते हैं। (३) वेदोंमें प्रमाणसिद्ध ऐसी कोई वस्तु नहीं पाई जाती, जिस को मनुष्य नहीं कह सकते हों तथा जिसके वर्णनके लिये सृष्टिका आदिकाल किम्वा हस्तमुखरहित लेखक और वक्ताकी आवश्यकता हो। अतएव प्रतिपन्न हुआ कि, वेदका ईश्वर-रचितत्व अनुमान प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता।

अब शब्दप्रमाणसे वेदका ईश्वररचित्व सिद्ध नहीं होता सो प्रदर्शन करते हैं—शतपथब्राह्मणका "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो" आदि वचन वेदके ईश्वर-रचितत्व सिद्धान्त

को स्थापित नहीं करता, क्योंकि मनुष्य रचित-रूपसे प्रसिद्ध शास्त्रों को भी उक्त श्लोकमें ईश्वरके निश्वाससे उत्पन्न होनेवाला माना है। पूर्ण श्लोक इस प्रकार है—"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणं विद्या-उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवेतानि सर्वाणि निःश्वसितानि"। इसमें उन इतिहास और पुराणोंका भी उल्लेख है, जिनकी रचना-इतिहासमें वर्णित राजर्षि और महर्षियों के पश्चात् कालमें हुई थी। अतएव इसकी यह व्याख्या सर्वथा असंगत और स्वकपोलकल्पित है कि, ईश्वरने श्वास लिया और यावत् वेदादि शास्त्र उत्पन्न होगये। वस्तुतः उक्त श्रुतिमें रूपकालङ्कार है, जिसका यह अर्थ होता है कि संसारके यावत् वेदादि शास्त्र उस महान् पञ्चभूतात्मक विराटरूप ब्रह्मके निश्वासरूप हैं। निम्न श्रुतिसे भी इस अर्थकी पुष्टि होती है। यथा ईशोपनिषद्में कहा है—"इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे" इस श्रुतिसे भी यह ज्ञात होता है कि, इसके रचयिताने किसी पूर्वकालीन ऋषि से तत्वज्ञानको श्रवणकर, पश्चात् इसकी रचना की है। अतएव श्रुति प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि, श्रुति मनुष्यके द्वारा रचित है। और भी, वेदका ईश्वर रचितत्व पक्ष, वेदमें वर्णित ऋषियोंके नाम और क्रियाओंके ऐतिहासिक वर्णनके साथ सुसामञ्जस्य नहीं होता। और भी, वेदभिन्न अपरशास्त्रोंकी प्रमाणता वेदानुकूल होने पर ही मान्य होती है, इस कारण वेदकी प्रमाणताके लिए वेदको ही प्रमाण मानना पड़ता है, ऐसा कथन विचारसंगत नहीं। और भी, अनुमान प्रमाणसे सिद्ध ईश्वरका स्वरूप उक्त वैदिक-संप्रदायोंको मान्य न होने से ("पत्युरसामञ्जस्यात्—ब्रह्मसूत्र २ अ० २ पा० ३७–४१ सूत्र द्रष्टव्य"), शास्त्रसे ही ईश्वरकी सिद्धि माननी पड़ेगी, फलतः यहां पर अन्योन्याश्रय दोष भी होगा। क्योंकि ईश्वर, शास्त्रसे प्रमाणित होता है और ईश्वरको शास्त्रका

रचयिता माना जाता है, तथा शास्त्रका यथार्थत्व इस हेतुसे स्वीकृत होता है, कि वह ईश्वरकी रचना है। अर्थात् जब शास्त्रके रचयिता ईश्वरकी विश्वस्ततासे शास्त्रकी यथार्थता निर्णीत होगी, तब उस शास्त्रके द्वारा अत्यन्त विश्वासके योग्य ईश्वरत्व प्रमाणित होगा, तब उसके रचयिता रूपसे शास्त्रकी यथार्थता ज्ञात होगी, अतएव अन्योन्याश्रय दोष होनेसे शास्त्रसे ईश्वर प्रमाणित नहीं होसकता, किम्वा ईश्वरके रचयितृत्व (निर्माणकर्तृत्व) से शास्त्रकी यथार्थता प्रमाणित नहीं होसकती। (ईश्वर विषयक अनुमान असिद्ध हैं, ऐसा अनुमान नहीं हो सकता)।

प्रकृत विषयमें अनुमान प्रमाण भी नहीं हो सकता। यदि वेद-भिन्न कोई वाक्य ईश्वर-रचित पाया जाता, तब उसके साथ वेदके सादृश्यज्ञानसे उपमानके द्वारा वेदका ईश्वर-रचितत्व प्रतिष्ठित हो सकता था। परन्तु ऐसा कोई वाक्य वेदवादियोंको सम्मत नहीं। अर्थापत्तिके द्वारा भी ईश्वर-रचितत्व सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थापत्तिसे हम लोग किसी अप्रत्यक्ष पदार्थकी कल्पना करते हैं, जिसको माने विना प्रत्यक्षगोचर कोई घटना उपपादित न होसकती हो, परन्तु वर्तमानस्थलमें वेदसम्बन्धी किसी प्रत्यक्षगोचर घटनाकी उपपत्तिके लिए वेदकी ईश्वर-रचितत्व कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है। और भी, यदि अर्थापत्तिके अतिरिक्त अपर किसी प्रमाणसे वेदका ईश्वररचितत्व जाना गया हो, तब वादीके मतानुसार अर्था-पत्ति प्रदान करना समुचित नहीं। अर्थापत्तिसे यह कभी जाना नहीं जा सकता, क्योंकि यह अन्योन्याश्रय दोषसे युक्त होगा। वेदके मनुष्यरचयितृत्वका अभाव, उसकी अयथार्थताके अभावके उपपादन के लिए स्वीकार किया जाता है और पुनः उसकी अयथार्थताका अभाव, मनुष्यरचितत्वके अभावके हेतुसे पाया जाता है। तथा च, यदि वादी स्वतन्त्र हेतुसे यह प्रमाणित कर सके कि वेदके सब

वाक्य अभ्रान्त हैं और जो ग्रन्थ मनुष्यरचित होता है, वह नियम-पूर्वक भ्रान्तिसे दूषित होता है, तब उनका ईश्वररचितत्व पक्ष बलशाली हो सकता था। परन्तु वे लोग ऐसा सिद्ध करनेमें कहीं भी समर्थ नहीं हुए हैं। सुतरां उनके सिद्धान्त असंगत हैं। अतएव यह प्रमाणित हुआ कि वेदके ईश्वररचितत्व पक्षके अनुकूल कोई भी प्रमाण, साक्षात् या असाक्षात नहीं है।

पुनश्च, शास्त्र वर्णनात्मक है और वर्णोंकी तालु आदि व्यापार-जन्य होनेके कारण—शरीरसे उत्पत्ति हो सकती है। शरीररहित ईश्वरसे नहीं। शरीररहितका प्रयत्न आजतक कहीं देखा नहीं गया। न उसकी संभावना ही हो सकती है ईश्वर स्वेच्छानिर्मित शरीरके द्वारा शास्त्रकी रचना करता है, ऐसी कल्पना भी सुसंगत नहीं होती। इच्छारूपी निमित्तके द्वारा देहेन्द्रियादि परिग्रहको स्वीकार करनेपर परस्पराश्रयका प्रसंग होगा। देहेन्द्रियके होनेपरही इच्छा उत्पन्न होगी एवं इच्छाके उदित होनेपरही देहादि प्राप्त हो सकेंगे, इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होगा। और भी, ईश्वरके शरीरको यदि कार्यरूप माना जाय तो उसका कर्ता कौन होगा? यदि कर्ताके न होते हुए भी ईश्वरका शरीर कार्यरूप स्वीकृत हो, तो कार्यत्व लक्षण व्यभिचारी होगा अर्थात् जगत्-कार्य भी कर्ताके विना ही उत्पन्न हो सकेगा और ईश्वरकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। यदि उक्त विरोधके परिहारके लिये ईश्वरके शरीर को नित्य कहा जाय, तो जिस प्रकार ईश्वरका शरीर शारीरिक धर्म का अतिक्रमण करके भी नित्यरूप स्वीकृत हो सकता है, उसी प्रकार घटादिसे विलक्षण वृक्षादिके कार्यत्व होनेपर भी अकर्तृपूर्वकत्व (कर्तासे जनित नहीं) स्वीकृत हो सकता है।

किञ्च, यदि ईश्वरको शरीरवान कहना हो तो उसके शरीरको

५—युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वम्

अर्थात् हे अश्विद्वय, तुमने ही पेदु राजाको निन्यानवें (९९) घोड़ोंके साथ, एक उत्तम शुभ्रवर्णवाला घोड़ा दिया था। वह घोड़ा विचित्र तेजस्वी था, उसे देखकर शत्रुसेना भाग जाती थी। वह मनुष्योंके लिए बहुमूल्यवान् था। उसका नाम लेनेपर आनन्द और देखनेपर मनमें सुख होता था।

६—न तं राजानावदिते

अर्थात् अजय राजाओ! तुम दोनोंका नाम कीर्तन करनेसे आनन्द होता है। जिस समय तुम मार्गमें जाते हो, उस समय सब चारों ओरसे तुम्हारी स्तुति करते हैं। यदि तुम दम्पतिको रथ के अगले भागमें चढ़ाकर आश्रय दो, तो उन्हें कोई भी पाप, दुर्गति या विपत्ति न छुये।

७—आतेन यातं मनसो०

अर्थात् अश्विद्व! ऋभु नामक देवोंने तुम्हारे लिए रथ प्रस्तुत किया था। उस रथके उदय होनेपर आकाशकी कन्या उषा प्रगट होती हैं और सूर्यसे अतीव सुन्दर दिन तथा रात्रि जन्म लेती हैं। उसी मतसे अधिक वेगवाले रथपर बैठ कर तुम लोग पधारो।

८—ता वर्तियातं जयुषा०

अर्थात् अश्विद्वय! तुम उसी रथपर चढ़कर पर्वतकी ओर जाने वाले मार्गपर गमन करो, शयु नामक मनुष्यकी बूढ़ी गायको फिर दूधवाली बनादो। तुम्हारी ऐसी क्षमता है कि तेंदुएके मुँहमें गिरे

वर्तिका नामक पक्षीको तुमने उसके मुँहसे निकालकर उसका उद्धार किया था।

९—एतं वां स्तोममश्विना

अर्थात् जैसे भृगु सन्तानें रथ बनाती हैं, वैसे ही अश्विद्वय, तुम लोगोंके लिए यह रथ प्रस्तुत किया है। जैसे जामाताको कन्या देनेके समय लोग उसे वस्त्राभूषणसे सुसज्जित करदेते हैं, वैसे ही हमने इस स्तोताको अलंकृत किया है। हमारे पुत्र-पौत्र सदा प्रतिष्ठित रहें।

वेदों में इतिहास

अब हम वैदिकइतिहासका क्रमशः वर्णन करते हैं, अतः ऋ० मं० १ में निम्न प्रकारका इतिहास आया है, साथ ही सूक्त और मंत्रके अंक भी दे रहे हैं:—

१—पणिने गायें चुरायीं, इन्द्रने उन्हें ढूँढा	६।५
२—वल दैत्य का गोहरण ?	११।५
३—कक्षीवान्की कथा	१८।१
४—हरि घोड़ेकी उत्पत्ति	२०।१
५—ऋभुओंने माँ बापको जवानी दी	२०।४
६—ऋभुओं द्वारा देवशिल्पीकी चमस तोड़ना	२०।६
७—ऋभुगणकी देवत्त्वप्राप्ति	२०।८
८—देवरमणियोंका यज्ञमें आना	२२,६,१०
९—वामनावतारकी कथा	२२।१७,१०।६
१०—किसानोंका खेत जोतना	२३।१५
११—पूषा द्वारा सोमका पायाजाना	२३।१४
१२—औषधियोंकी खबर रखने वाले चन्द्र	२३।२०
१३—शुनः शेपकी कथा	२४।१२-१३

१४—वरुण द्वारा सूर्यपथका विस्तार	२४।८
१५—सोम रसोत्पादन	२८ सू. पूरा
१६—मनुको स्वर्गकी कथा सुनाना और पुरुरवा द्वारा-अग्निका अनुगृहीत होना	३१।४
१७—पुरुरवाके पौत्र नहुपका वृत्तान्त	३१।११
१८—विश्वकर्मा द्वारा इन्द्रका वज्र निर्माण	३२।२
१९—इन्द्र वृत्र-युद्ध	३२।३से१५
२०—विजेता इन्द्रका सेनाओंमें पुरस्कार वितरण	३३।३
२१—वृत्र-वध	३३।४से१५
२२—सूर्योपाख्यान	३५।१से११
२३—अग्नि द्वारा प्रस्कण्वका जीवित होना	४४।४
२४—अग्निके विजवन पुत्र, सुदासका सेनापति होना	४७।६
२५—स्वर्गपुत्री उषा	४८।१,४९।१से४
२६—राजा शार्यातकी कथा	५१।१२
२७—बूढे कक्षीवान्ने युवती पाई	५१।१३
२८—त्रितका कुएँमें गिरना	५२।५
२९—इन्द्र द्वारा नमुचि वध	५३।७
३०—अतिथिग्व राजाके शत्रु करंज और पर्णय असुरों-का वध तथा ऋजिश्वान् राजा द्वारा वेष्टित वृंगद-असुरके नगरोंका इन्द्र द्वारा विनाश	५३।८
३१—सुश्रवाके साथ बीस नरपतियोंके युद्ध में इन्द्र-द्वारा साहाय्य	५३।९
३२—नर्य, सुर्वश और यदुकी रक्षा करके एतश ऋषि-के लिए इन्द्रने शम्बरके निन्यानवें नगरोंका-विनाश किया	५४।६
३३—तुर्वीतका जल मग्न होना	६१।११
३४—पर्वतका इन्द्रने डरना	६१।१४

१००—ऊँटपर चढ़कर युद्ध करना ३८।२
१०१—ऋषियोंका दीर्वजीवन १३६।६
१०२—गर्भिणी दीर्घतमाकी माताके साथ बृहस्पतिका सम्भोग १३७।३
१०३—रातहव्यकी दुग्धशून्या गायका दुग्धवती होना १५३।३
१०४—वामनावतार १५४।१
१०५—अश्विनीकुमारोंका औषधज्ञान १५७।६
१०६—अनर्थों द्वारा एक वृद्धकी चोटी १ काटा जाना १५८।५ व १५६।२
१०७—सुधन्वाके पुत्रोंद्वारा चमसका बनाना १६१।१
१०८—अश्वमांसका उपयोग १६२ पूर्णसूक्त
१०९—इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जन संलाप १६५ „
११०—मरुद्गणकी शृङ्गारप्रियता १६६।१०
१११—पृश्नि द्वारा महासंग्रामके लिये मरुद्गण प्रसूत होना १६८।६
११२—इन्द्र द्वारा अत्यन्त दृढ़ सात पुरियोंका तोड़ा जाना १७४।२
११३—दुर्योणि राजाके लिए इन्द्र द्वारा कुयवका वध १७४।७
११४—अगस्त्य और लोपामुद्राका पूर्णभाषण १७६ पूर्णसूक्त
११५—डूबते हुए तुग्र-पुत्रके लिए अश्विनीकुमारोंने समुद्र में नौका दौड़ाई थी १८२।५-६
११६—विपाक्त सरिसृपगण १६२ पूर्णसूक्त
११७—इन्द्रने त्रितके बन्धुत्वमें त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया २।११।१८
११८—इन्द्रका एक १००० हजार घोड़ोंपर प्रभुत्व, दभीति ऋषिका दस्युओं द्वारा त्राण पाना १३।६

१४१—विपाशा और शुतुद्री नदियोंका जन्म ३३।१
१४२—विश्वामित्रकी प्रार्थनासे विपाशा और शुतुद्रीका निम्न स्थान (पार होने योग्य) होना ३३।६-१०
१४३—सुपर्ण पक्षी द्वारा सोमका लाया जाना ४३।७
१४४—पणियों द्वारा गउओंका अपहरण ४४।५
१४५—अदितिने सूतिकागृहमें इंद्रको स्तन्यपानके प्रथम सोम रस पिलाया ४८।२
१४६—त्वष्टाको विनष्ट कर इंद्र ने चमसस्थित सोम चुराया ४१।४
१४७—पिजवन-पुत्र सुदासका यज्ञ ५२।६
१४८—अनार्य जनपद कीकटमें दुग्धदायिनी गाय ५३।१४
१४९—वसिष्ठके भृत्योंद्वारा विश्वामित्रका अपमान ५३।२२
१५०—त्रिविक्रमावतार ५४।१४
१५१—विना रेतः संयोगके औषधियोंका गर्भवती होना, ५५।५
१५२—ऋभुओं द्वारा चमस-निर्माण, मृतक गोशरीर-में चर्म योजना और इन्द्रके अश्वद्वयका निर्माण ६०।२,४।३३।२४।१०,११
१५३—अग्नि पत्नी होत्रा और सूर्यपत्नी भारती ६२।३
१५४—वरुणकृत जलोदर रोग ४।१।५
१५५—अग्नि अपने सेवकोंको धनवान् करते हैं २।६-१०,३।१८।४
१५६—चक्षुहीन दीर्घतमाका शापोद्धार ४।१३
१५७—देवदूत अग्नि ७।८
१५८- सहदेवपुत्र सोमक राजाका अश्वदान १५।७
१५९—कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य १६।१०
१६०—इन्द्र द्वारा कुयव और शुष्ण असुरका वध १६।१२
१६१—संग्राममें इन्द्र द्वारा सूर्यके रथचक्रका छिन्न होना १६।१२, ४।३०।४

१७७ दभीतिके लिए त्रिंशत्-सहस्रसंख्यक राक्षसोंका हनन ३०।२१
१७८ वृषभयुक्त द्वारा रथका गमन ३२।४
१७९ ऋभुओंने परिचर्या द्वारा माता पिताको युवा किया ४।३३।२-३,४।३४।९,४।३६।३
१८० ऋभुओंने देवोंके लिए अंसत्रा कवच और अश्वि-द्वयके लिए रथ निर्माण किया ३४।९
१८१ ऋभुओं द्वारा निर्मित अश्विद्वयके चित्रक रथका विना अश्व और प्रग्रहके अन्तरिक्षमें परिभ्रमण ३६।१
१८२ त्रसदस्यु राजाका महादान ३८।१
१८३ पुरुकुत्सकी स्त्रीने सप्तर्षिके अनुग्रहसे त्रसदस्युको प्राप्त किया ४२।८
१८४ सूर्या द्वारा अश्विद्वयके रथका संवरण ४३।२,६
१८५ इन्द्र द्वारा क्षीर, सूर्यद्वारा दधि और देवों द्वारा घृतकी उत्पत्ति ५८।४
१८६ वृश ऋषिके रथचक्र द्वारा कुमारकी मृत्यु ५।२।१
१८७ यज्ञयूपमें बद्ध शुनःशेपकी मुक्ति २।७
१८८ गऊ, अग्नि और सूर्यका आँगनसे उत्पन्न होना ४।४
१८९ अग्निद्वारा वव्रि ऋषिकी दुर्दशाका अपनोदन १९।१
१९० अरुणका महादान २७।२
१९१ कुत्सके साथ एक रथपर आरूढ २९।२
१९२ इन्द्र द्वारा शुष्णासुरका वध २९।३
१९३ इन्द्र द्वारा शम्बरासुरका वध २९।६
१९४ गउओंकी रक्षाके लिये इन्द्रका असुरोंसे युद्ध ३०।४
१९५ मरुतोंके प्रभावसे द्यावा पृथिवीका चक्र की तरह घूमना ३०।८

२२१	चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्णका विनाश	१८।८
२२२	राजा त्तत्रश्रीका शत्रुविनाश	२६।८
२२३	हरिपूपीयाके तीरपर रहनेवाले वरशिखका वध	२७।५
२२४	अंगिराओंके साथ पणियोंका संहार	३३।२
२२५	इन्द्रका कुवित्सकी गोशालामें गमन	४५।२५
२२६	प्रस्तोकका दान और शम्बरका समर	४७।२२
२२७	अश्विनीकुमारोंको अश्वोंद्वारा मरुदेशको लँघाना	६२।२
२२८	अश्विनीकुमारोंका तुग्रपुत्र भुज्युको समुद्रसे वाहर निकालना	६२।६
२२९	शान्त राजाका अश्विद्वयके स्तोताओंको हिरण्यमय दस रथ और पुरुष देना	६३।९
२३०	पुरुपन्था राजाका सैंकड़ों, हजारों अश्व देना	६३।१०
२३१	मरुतोंके सोनेके अलंकारके रथ	६६।२
२३२	सारथि, अश्व और पाशसे रहित मरुतोंके रथका द्युलोकमें गमन	६६।७
२३३	"सम्राट्" वरुण	६८।९
२३४	वृहस्पतिका असुरपुरियोंको नष्ट करना	७३।२
२३५	लोहमय कवचका धारण	७५।१
२३६	धनुष् , ज्या, धनुष्कोटि, वाण, लगाम, चावुक-हस्तघ्न (हस्त-रक्षा-चर्म) विषाक्त वाण आदिका वर्णन	७५ पूरासूक्त
२३७	औरसपुत्र	७।१।२१
२३८	असुर शव्दका विविध अर्थोंमें व्यवहार	२।३
२३९	अग्निका यव (जौ) भक्षण करना	३।४
२४०	लोहमय और सुवर्णमय असीम पुरियाँ	३।७
१४१	अरणिद्वयसे अग्निकी उत्पत्ति	४।२
२४२	अनौरस सन्तानकी अनिच्छा	४।७

२६७	सोमकी अभिषव विधि	२२।१
२६८	प्राचीन और नवीन ऋषियों द्वारा मन्त्रोंकी उत्पत्ति	२२।६
२६९	शिप्र (उष्णीश) या (चादर) का उल्लेख	२५।३
२७०	सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र	३०।३
२७१	विश्वकर्मा (वढ़ई) का उल्लेख	३२।२२
२७२	वशिष्ठके पुत्रोंका शिरके दक्षिण भागमें चूड़ा धारण करना	३३।१
२७३	दाशराज्ञ युद्धकी बात	३३।३
२७४	स्तोत्रसे पितरोंकी तृप्ति	३३।४
२७५	दस राजाओंके संग्राममें वसिष्ठका ऊपर उठाया जाना	३३।५
२७६	वसिष्ठका तृत्सुओंके भारतोंका पुरोहित होना	३३।६
२७७	सहस्र शाखाओं वाला संसार	३३।९
२७८	वसिष्ठका उर्वशीसे जन्म	३३।१२
२७९	मित्र और वरुणका कुम्भमें रेतः स्खलन तथा अगस्त्य और वशिष्ठका कुम्भसे जन्म	३३।१३
२८०	सोनेके हाथ वाले इन्द्र	३४।४
२८१	राष्ट्रोंके राजा वरुण	३४।११
२८२	गाय, अश्व, औषधि, पर्वत, नदी, वृक्ष आदिकी अर्चना	३५ पूरासूक्त
२८३	नदियोंकी माता सिन्धु नदी	३६।६
२८४	दूध, दही और सत्तू से मिला सोमरस	३७।१
२८५	देवयानसे गमन	३९।८
२८६	भग देवताकी पूजा	४१ पू. सू.
२८७	पिङ्गल वर्ण अश्व	४४।२

मनुष्य नहीं होता, उसी प्रकार वेदोंका निर्माता भी ईश्वर नहीं है।

७ ईश्वरकी कृपासे नित्य वेदको (सृष्टि करनेके लिये) ब्रह्माने पाया थी, इसके लिये उसने कोई प्रयत्न (तप आदि) नहीं किया।

८ सृष्टिके आदिमें चाहे ब्रह्माने वेद बनाये हों, परन्तु आज हमें जो वेद मिलते हैं उन्हें ईश्वरकी कृपासे महर्षियोंने पाया है।

९ अजापृश्नि ऋषिने सृष्टिके आदिमें तप करके ईश्वरकी कृपासे वेदोंको प्राप्त किया।

१० सर्वप्रथम अथर्वा अंगिराने वेदोंको प्राप्त किया।

११ सृष्टिके आदिमें ईश्वरने वेदोंको कहा—"वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा"।

१२ वेद ब्रह्माका वाक्य है।

१३ ब्रह्माने वेदोंको बनाया नहीं, अपितु संकलन किया है।

१४ वेदोंका अनेक ऋषियोंने संकलन किया है, बनाया नहीं।

१५ नित्य सिद्ध वेदके शब्दोंसे ईश्वरने जगत को बनाया है।

१६ प्रत्येक कल्पके आदिमें वे ही वेद बनाये जाते हैं, अथवा प्रकट होते हैं, उनमें एक अक्षरकी भी न्यूनाधिकता नहीं होती।

१७ कल्पके प्रारम्भमें अन्य (दूसरे) वेद बनते हैं।

१८ जिस प्रकार सोते समय दिनका ज्ञान भूल जाता है और उठनेपर उसे पुनः वह ज्ञान स्मरण हो जाता है इसी प्रकार सृष्टिके आदिमें ईश्वरको वेद स्मरण हो जाते हैं।

१९ शब्द नित्य हैं उन्हीं शब्दोंसे ईश्वरने वेद तथा जगतको बनाया जिस प्रकार जगत् अनित्य है उसी प्रकार वेद भी अनित्य है।

२० वेद और जगत्को ईश्वरने अपनी इच्छानुसार बनाया है। क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है।

२१ कई कहते हैं कि वेदको ईश्वरने बनाया और ऋषियों द्वारा उसको प्रकट किया, क्योंकि वह निराकार होनेसे लोकमें प्रकट नहीं कर सकता था।

२२ ब्रह्म दो प्रकारका है। एक निर्गुण, दूसरा सगुण। इसी सगुण ब्रह्म (ब्रह्मा हिरण्यगर्भ) ने वेदको बनाया (महाभारत)

२३ वेद मत्स्य भगवानका वचन है।

२४ अग्नि, वायु, सूर्य देवोंने वेदोंको बनाया। ये ही ईश्वरकी विभूतियां तीन देवता हैं।

२५ किसी के मतमें उपर्युक्त तीनों मनुष्यविशेष थे तथा इनपर वेद प्रकट हुये।

२६ यास्क के मतानुसार वेदोंकी उत्पत्ति खासकर सूर्य देवतासे हुई है।

२७ अग्नि, वायु, आदित्यके अभिमानी देवोंसे वेदकी उत्पत्ति हुई।

२८ नारायणोपनिषद्में लिखा है कि वेदोंमें एक सूर्यका ही वर्णन है, अतः सूर्यको ही वेद समझना चाहिये।

२९ यज्ञसे वेदकी उत्पत्ति हुई है।

३० काल से वेदकी उत्पत्ति।

३१ सृष्टिके आदिमें वेद स्वयं उत्पन्न हुये। ईश्वर तो क्लेश कर्म आदिसे रहित है।

३२ वेद भी प्रकृतिजन्य हैं, पृथ्वी आदिकी तरह स्वयं उत्पन्न हुआ है, किसी ने बनाया नहीं।

३३ माधवाचार्य कहते हैं कि अग्नि, वायु, सूर्य यह तीन ऋषि थे। इन्होंने वेद बनाये।

३४ पृथ्वीनामक ऋषिने वेद बनाये।
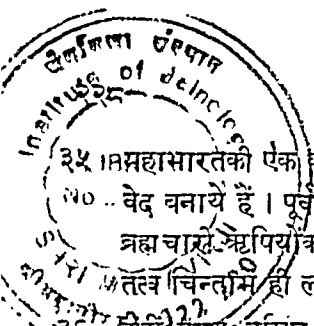
३५ महाभारतकी एक कथामें लिखा है कि, ऊर्ध्वरेता ऋषियोंने वेद बनाये हैं। पूर्व समयमें गृहस्थ ऋषियोंकी ५००००, बालब्रह्मचारी ऋषियोंकी संख्या ८८००० थी यह सब रातदिन तत्त्व चिन्तामें ही लगे रहे थे, उन्होंने वेद बनाये।

३६ कहीं मत्स्य, वसिष्ट, अगस्त्य, भृगु, अत्रि, कश्यप और विश्वामित्र के वाक्य वेद हैं, ऐसा भी मिलता है।

नोट—मत्स्यको छोड़कर बाकीके सात वंशोंकी वेदमें विशेषप्रकार से चर्चा है।

३७ वेद भिन्न भिन्न ऋषियोंके आम्नायसे संग्रहीत हैं।

नोट—महाभारतके कुछ पूर्व समय तक यह वचन संग्रहीत हुये तथा संहिता रूपमें लाये गये।

३८ वेद पुरोहितोंके वाक्योंका संग्रह है।

नोट—इसी प्रकार अन्य भी अनेक मत हैं। उपर्युक्त सब विषयोंमें अनेक प्रमाण हैं। इस प्रकारकी युक्तियों और प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि वेद न तो ईश्वरकृत हैं और न नित्य हैं।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	२३	शृणवावा	शृणवामा
१६	१८	स्थितम्	स्थिताम्
१६	२५	महोने	महीने
१८	७	स्तुतवे	स्तुवते
१८	१५	मुव्रतं	सुव्रतं
१८	२५	निर्वाणसं	गिर्वणसं
१९	२०	विम्वासां	विश्वासां
२२	१४	(पुरुस्कृत)	(पुरस्कृत)
२३	१२	इसीxxx	इसी प्रकार
२९	१९	प्रचीनात्	प्राचीनात्
३२	१२	वरके	करके
३३	३३	मेद	मंद
३६	१५	अश्वम्	अश्व्यम्
४१	१	ऋपीणा	ऋषीणाम्
४१	१	छन्दासां०	छन्दसां०
४२	१७	अण्य	अरण्य
४४	७	'प्रयमेघ'	'प्रियमेघ'
५२	२५	२८	१८
६०	१८	ददन्यतरछा	तदन्यतरछा
६२	२३	तदेव	तदेप
६४	६	स्तोत	स्तोत्र
६७	२०	आस्ती	आवस्ती

[ख]
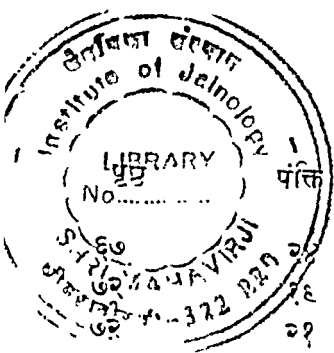
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	[illegible]	ऋपिशों	ऋषियों
७२	१९	मयते	मन्यते
७२	२१	अस्रवेत्	अवस्रवेत्
७२	२३	पुरुच्छेयस्य	पुरुच्छेपस्य
७२	२३	तह	यह
८३	६	दयानद	दयानन्द
८४	२	ही है था	ही था
८४	१३	प्रष्टा	द्रष्टा
८९	१५	कविनामुशना	कवीनामुशना
९३	११	प्रत्यक्षx	प्रत्यक्ष है।
९६	१७	कहलाxx	कहलानेका
९८	१०	दिव्यक्षुपः	दिव्यचक्षुषः
९९	२	चिरन्त	चिरन्तन
११७	१५	कारुरुक्थ्यके	कारुरुक्थ्ये
११७	१६	यित्वेपु	पित्वेपु
११७	१७	७	६
११७	१८	तद्युषे	तदूचुषे
११७	१८	कीर्तन्ये	कीर्तेन्यं
११८	१	चिद्रृडला	चिद्दृडहा
११८	१	राद्रि	रद्रिं
११८	२	चक्रर्दिव	चक्रर्दिवो
११८	७	त्वामिन्ये	त्वामिन्मे
१८	१५	कं	वां
	१७	अमी	अभी
	१९	अंग्रेजी	अंग्रेजी में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३५	११	१०	६
१३६	१४	असान्	असाम
१३६	१६	अहिल्य	अहिल्या
१४२	८	जग्रहुस्ते	जगृहुस्ते
१५१	२४	विपरीत	विपरीतता
१५२	२२	xxx	अतः आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है।
१५७	२	वांधने	वींधने
१६१	१४	श्रतियों	श्रुतियों
१६३	८	अयौरषेयत्व	अपौरुपेयत्व
१६६	२५	अभिलापित अथ	अभिलपित अथ
१६८	३	नह	नहीं
१७४	१६	इतिहासि	इतिहास
१७७	१०	जिनक	जिनके
१७६	२६	काट	कोटि
१८१	११	हो	होजाओ
१८३	१६	आकिंच	आर्चिक
१८५	११	अश्विद्वयबंधी	अश्विद्वय संबंधी
१८५	२४	प्रवर्ण्य	प्रवर्ग्य
१६०	११	सन्निवेष	सन्निवेश
२०३	१३	आये	गये
१०३	१६	अर्षीय	आर्षेय
२०७	२	गर्तविधि	गतिविधि
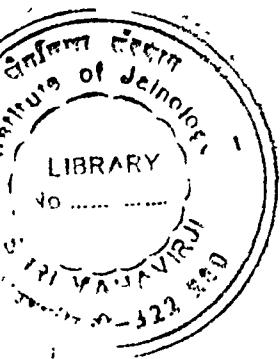
नित्य अथवा नित्य सादि या शरीरान्तरके सम्बन्धसे सशरीर कहना होगा। परन्तु उक्त तीनों ही पक्ष असंगत हैं। क्योंकि हमारे शरीरके समान ईश्वरके भी सावयव होनेके कारण, उसे नित्य अनादि नहीं कह सकते तथा नित्य सादि माननेपर भी उस ईश्वरकी उत्पत्तिके पूर्व ईश्वरको अशरीर ही कहना होगा। इसी प्रकार शरीरान्तरके द्वारा ईश्वरके सशरीर होनेपर अनवस्थाका प्रसङ्ग होगा। अतएव ईश्वरके शरीरवान् सिद्ध न होनेपर, कण्ठ, तालु आदि स्थानोंसे उच्चारण करने योग्य वर्णनात्मक वेदादि शास्त्रोंकी आदि रचना भी उसके द्वारा नहीं हो सकती। फलतः शास्त्रको ईश्वररचित नहीं कह सकते।"

(साधु शान्तिनाथविरचितप्राच्यदर्शन समीक्षासे उद्धृत)
(पृ० ३३ से ४० तक)

अनित्या वै वेदाः

वेदोंके नित्यत्वका खण्डन न्यायाचार्योंने प्रबल युक्तियोंसे किया है, उनको हम क्रमसे उपस्थित करते हैं—

सर्वप्रथम महर्षि गौतमने वेदोंके नित्यत्वका खण्डन करते हुए लिखा है कि "मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्चतत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्" (न्यायदर्शन २।१।६९) मन्त्र और आयुर्वेदशास्त्रकी प्रामाणिकताके समान ही वेदोंकी प्रामाणिकता आप्तकी प्रामाणिकतासे है। इस सूत्रका भाष्य करते हुए महर्षि वात्स्यायन लिखते हैं कि—

आयुर्वेद आदि के देखने वाले और उपदेश देने वाले वे ही हैं इसलिए आयुर्वेदकी प्रामाणिकताके समान ही वेदोंकी प्रामाणिकता का अनुमान करना चाहिये।

मीमांसक कहते है, कि आप्तकी प्रामाणिकता होने से वेदोंकी प्रामाणिकता नहीं है अपितु वेद वाक्योंके नित्य होनेसे वेदोंकी प्रामाणिकता है। भाष्यकार इसको खण्डन करते हुए लिखते हैं कि शब्दवाचक होनेसे अर्थके ज्ञात करानेमें प्रमाण हैं, नित्य होने के कारण नहीं। यदि शब्दोंको नित्य माना जाय तो सब-सब के द्वारा कहे जानेसे शब्द और अर्थकी व्यवस्था ही न बन सकेगी।

मीमांसक पुनः शंका करते हैं, किं यदि शब्दोंको अनित्य स्वीकार किया जावे तो वे वाचक ही नहीं होसकते। ऋषि इसका उत्तर देते हैं कि यह बात नही है क्योंकि लौकिक शब्द अनित्य होने पर भी वाचक देखे जाते हैं। इस पर मीमांसक पुनः शंका करते हुए कहते हैं कि लौकिक शब्द भी नित्य हैं; आचार्य उत्तर देते हैं—यह बात नहीं है। यदि लौकिक शब्द भी नित्य हों तो अनाप्तके कथन से भी अर्थ में विसंवाद नहीं होना चाहिये।

इसी विषयको न्यायवार्तिककारने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि—

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

यहाँ पर 'च' शब्द पूर्व हेतुओंके समुच्चयके लिये है। जैसे मन्त्र और आयुर्वेद के वाक्य पुरुष विशेषके द्वारा कहे जानेसे प्रमाण हैं उसी प्रकार वेद-वाक्य भी। यहां पर पुरुष विशेषकेद्वारा कहा जाना कारण है।

आयुर्वेदकी प्रमाणता क्या है ? जो आयुर्वेदके द्वारा कहा जाता है कि यह करके इष्टको पालेता है और यह करके अनिष्टको छोड़ देता है। उसके वैसा करने पर ज्यों का त्यों होना और विपरीत न आना यही प्रमाणता है। यह किसके द्वारा हुई ?

यह आप्तकी प्रमाणतासे हुई। आप्तोंकी प्रमाणता क्या है ? (१) वस्तुओंका साक्षात्कार। अर्थात् जिस वस्तुका वे उपदेश देते हैं वह वस्तु उनके द्वारा साक्षात्कारकी हुई होती है। (२) जीव दया भी प्रमाणताका कारण है। अर्थात् वे जिसको उपदेश देते हैं उनकी उसके प्रति अनुकम्पा होती है और (३) पदार्थ को जैसा वे साक्षात्कार करते हैं वैसी ही उनके कहनेकी इच्छा होती है। इन तीन प्रकारके विशेषणोंसे विशिष्ट वक्ता आप्त कहलाता है उसके द्वारा जो उपदेश किया जाता है वह प्रमाण है।

जिन वाक्योंके अर्थमें अविसंवादिता (निर्विवादपना) देखी जाती है उन वाक्योंकी अविसंवादितासे शेष वाक्योंकी प्रमाणता का अनुमान किया जाता है। जैसे "ग्रामकामो यजेत" इत्यादि। यहां पर जिस प्रकार ग्राम का इच्छुक यज्ञ करके ग्रामकी प्राप्ति करलेता है इस प्रकार वह इस वाक्य को प्रमाण समझ कर "स्वर्ग-कामोयजेत" इत्यादिक अदृष्टार्थक वाक्योंको भी प्रमाण मानता है। इन्हीं तीन प्रकारके विशेषणोंसे विशिष्ट वक्ताके लौकिक वाक्य भी प्रमाण होते हैं। इसका अनुमान प्रयोग इस प्रकार निष्पन्न हुआ। वेदोंके वाक्य प्रमाण हैं, क्योंकि वक्ता विशेषके द्वारा कहे गए हैं। मन्त्र और आयुर्वेद वाक्योंके समान।

मीमांसक पुनः शङ्का करते हैं कि वेदोंके पौरुषेयत्व असिद्ध हैं क्योंकि वे नित्य हैं। आचार्य इसपर उत्तर देते हैं कि यह बात नहीं है। वेदोंके नित्य सिद्ध होनेपर यह कथन युक्तियुक्त होता और वह सिद्ध नहीं है।

शङ्का—यदि नित्य नहीं तो प्रमाणता कैसे ?

उत्तर—पदार्थोंका प्रतिपादक होनेसे प्रमाणता है नित्य होनेसे नहीं।

इसलिए यह ठीक है कि अर्थका विभाग होनेसे वेद अनित्य हैं लौकिक वाक्योंके समान। जैसे अर्थविभाग वाले लौकिक वाक्य हैं वैसे ही वेदवाक्य भी हैं। इसलिए वे नित्य नहीं हैं।

शङ्का—जैसे लौकिक वाक्य नित्य हैं उसी प्रकार वेद वाक्य भी नित्य हैं ?

उत्तर—यह जो अर्थका विभाग लौकिक वाक्योंमें देखा जाता है वह नहीं होना चाहिए और वह देखा जाता है। इसलिये लौकिक वाक्य अनित्य हैं। यदि कहो कि लौकिक वाक्य तो अनित्य हैं और वेद-वाक्य नित्य, तो इसमें विशेष हेतु कहना चाहिए। अर्थका विभाग और अर्थका प्रतिपादकपना समान होनेपर भी लौकिक वाक्य अनित्य हैं और वैदिक वाक्य नित्य हैं, इसमें विशेष हेतु बतलाना चाहिए। हमने तो अर्थका विभागपना विशेष हेतु कहा ही है।

तथा च—वेद इसलिए भी अनित्य हैं कि वे वर्णवाले हैं। वर्णवाले लौकिक वाक्य अनित्य हैं उसी प्रकार वेदवाक्य भी अनित्य हैं।

तथा च सामान्य विशेषपना होते हुए कर्णसे ग्राह्य होनेके कारण लौकिक वाक्योंके समान वेद अनित्य हैं।

तथा च—पदवाले होनेसे भी लौकिक वाक्योंके समान वेद अनित्य हैं।

तथा च—पद वाले होनेसे भी लौकिक वाक्योंके समान वेद अनित्य हैं।

तथा च—(न्या० अ० ४।१।६२)का भाष्य करते हुये वात्स्यायन महर्षि लिखते हैं कि वे ही वेदार्थके साक्षात्कर्ता ऋषि इतिहास-पुराणों के वक्ता हैं। इसलिये इतिहास-पुराण पांचवाँ वेद कहा

जाता है। अतः इतिहास-पुराणको अप्रामाणिक कहना ठीक नहीं। धर्मशास्त्रको अप्रमाण बतलानेपर प्राणियोंके लोक-व्यवहारका लोप हो जायेगा। और दोनोंके द्रष्टा व प्रवक्ता एक होनेसे अप्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती। जो ऋषि मन्त्रोंके द्रष्टा व प्रवक्ता हैं वे ही ऋषि इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रके द्रष्टा व प्रवक्ता हैं। इसलिये इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रकी अप्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती।

वात्स्यायन-भाष्यपर खद्योतटीकामें श्री पं० गङ्गानाथजी झा लिखते हैं कि—

"जो वेदके और वेदार्थके द्रष्टा और अनुष्ठाता हैं वे ही प्राचेतस, और कृष्णद्वैपायन आदिक स्मृति, इतिहासादिकके प्रवक्ता हैं। इसलिए स्मृति-इतिहासादिकके पौरुषेय होनेसे अप्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती।"

तथा च—

स ऐक्षत यदि वा इममभिमँ्स्येकनीयोऽन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेदँ् सर्वमसृजत यदिदं किञ्चर्चो यजूँ्षि सामानि छन्दाँ्सि यज्ञान् प्रजाः पशून्। स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वम्। सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ॥ ५ ॥

(बृहदारण्य० उ. १ अ. २ ब्रा.)

अर्थात् उस (प्रजापति) ने विचार किया, कि 'यदि मैं इसे मार डालूंगा तो यह थोड़ा सा ही अन्न (भोजन) करूंगा। अतः उसने उस वाणी और उस मनके द्वारा इन सबको रचा, जो कुछ भी ये ऋक्, यजुः, साम, छन्द, यज्ञ, प्रजा और पशु हैं। उसने

जिस जिसकी रचना की, उसी उसीको खानेका विचार किया। वह सबको खाता है, यही उस अदितिका अदितित्व है, जो इस प्रकार इस अदितिके अदितित्वको जानता है वह इस सबका अत्ता (भोक्ता) होता है और यह सब उसका अन्न होता है।

तथा च—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्तायाएतान्यक्षराणि संप्रासवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

(छान्दोग्योप. २ अ. २३. खं.)

अर्थात्—"प्रजापतिने लोकों के उद्देश्यसे ध्यानरूप तप किया। उन अभितप्त लोकोंसे त्रयी विद्या (ऋग्यजुःसामवेदादि) की उत्पत्ति हुई। तथा उस अभितप्त त्रयी विद्या (ऋग्यजुर्वेदादि) से 'भूः, भुवः और स्वः' ये अक्षर उत्पन्न हुए।

तथा च—गोपथब्राह्मण पू० २।१० में कहा है—

एवमिमे सर्वे वेदानिर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासा सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाको वाक्याः।

तथा च—शतपथ, १४।६।१०।६ में कहा है—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि चाचैव सम्राट् प्रजायन्ते। तथा च—स एतानि त्रीणि

ज्योतींष्यभ्यतप्यत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतप्यत। अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्। एतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्रावृहत्। कौ० ६।१०॥

तथा च—स इमानि त्रीणि ज्योतीᳫंष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। स इमांस्त्रीन् वेदानभिततापं। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात्।
(श० ११।५।८)

तथा च—स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्। तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्। अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूᳫंषि सामान्यादित्यात्। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्। तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत्। भूरित्यृग्भ्यः।
(छान्दोग्य० उ० ४।१२)

तथा च—पुराण दिग्दर्शनमें श्रीमान् पं० माधवाचार्यने पद्मपुराणका प्रमाण उपस्थित किया है, वह इस प्रकार है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥
(अ० १०४)

तथा च—रघुवंशमें भी लिखा है—

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।

प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः ॥

(स० १)

अर्थात्—दूरसे ही शत्रुओंका नाश करनेवाले तुझ मन्त्रकर्ता के मन्त्रोंसे दृष्ट लक्ष्यको बाँधनेवाले मेरे बाण निराकृत किये जाते हैं।

तथा च—प्रश्नोपनिषद् ६।४ में लिखा है कि—सप्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्रा कर्म लोका लोकेषु च नाम च। अर्थात उस पुरुषने प्राणको रचा, फिर प्राणसे श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इंद्रिय, मन और अन्नको तथा अन्नसे वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोकोंको एवं लोकोंमें नामको उत्पन्न किया।

इसके भाष्यमें श्री शङ्कराचार्यजी लिखते हैं—

"एवं प्राणिनां कार्यं करणं च सृष्ट्वा तत्स्थित्यर्थं व्रीहियवादि-लक्षणमन्नम्। ततश्चान्नादद्यमानाद्वीर्यं सामर्थ्यं बलं सर्वकर्मप्रवृत्ति-साधनम्। तद्वीर्यवतां च प्राणिनां तपो विशुद्धिसाधनं सङ्कीर्यमाणा-नाम्। मन्त्रास्तपो विशुद्धान्तर्बहिष्करणेभ्यः कर्मसाधनभूता ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरसः। ततः कर्माग्निहोत्रादिलक्षणम्। ततो लोकाः कर्मणां फलम्। तेषु च सृष्टानां प्राणिनां नाम च देवदत्तो यज्ञदत्त इत्यादि।"

अर्थात इस प्रकार प्राणियोंके कार्य विषय और करणों (इन्द्रियों) की रचना कर उनकी स्थितिके लिये उसने व्रीहि यवादि-रूप अन्न उत्पन्न किया। फिर उस खाये हुए अन्नसे सब प्रकारके कर्मोंकी प्रवृत्तिका साधनभूत वीर्य, सामर्थ्य अर्थात् बल उत्पन्न किया। तदनन्तर वर्णसंकरताको प्राप्त होते हुए उन वीर्यवान् प्राणियोंकी शुद्धिके साधनभूत तपकी रचना की। फिर जिनके बाह्य और अन्तःकरणोंके तपसे शुद्धि होगई उन प्राणियोंके लिए कर्मके

साधनभूत ऋक्, यजु, साम और अथर्वाङ्गिरस मन्त्रोंकी रचना की और तत्पश्चात् अग्निहोत्रादि कर्म तथा कर्मोंके फलस्वरूप लोक-निर्माण किये। फिर इस प्रकार रचे हुए उन लोकोंमें प्राणियोंके देवदत्त यज्ञदत्त, आदि नाम बनाये।

तथाच—नव्यन्यायके आदि प्रवर्तक "गङ्गेशोपाध्याय" ने अपने "तत्वचिन्तामणि" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि:—

तस्मात्तपस्तेपानाच्चत्वारो वेदा अजायन्त, ऋच: सामानि जज्ञिरे इति कर्तृश्रवणात्। प्रतिमन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते इति कर्तृस्मरणाच्च।

इत्यादि श्रुति-स्मृति-वचन उद्धृत कर वेदोंका पौरुषेयत्व सिद्ध किया है। उनके मतसे वेदोंमें स्तोत्र रचनाका अनेक वार उल्लेख है—

(१) अयं वेदानां जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया अकारि-रत्नधातम।

(ऋ० १।२०।१)

(२) प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अंगिरस्व-न्महिव्रतप्रस्कण्यस्य श्रुधी हवम्॥

(ऋ० १।४५।३)

(३) सनाय ते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।

(ऋ० १।६२।१३)

इत्यादि कतिपय वचनोंसे कहते हैं कि वेद अनित्य हैं। वह भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा विरचित हैं। यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है।

तथाच—सांख्याचार्य महर्षि कपिलने वेदोंके नित्यत्वका खंडन करते हुए लिखा है कि—

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।

(५।४५।३७२)

इस विषयमें यजुर्वेदका प्रमाण इस प्रकार है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे ।

(३१।६)

तथाच—साँख्यदर्शनने जहाँ वेदोंके नित्यत्वका खण्डन किया है वहाँ वेदोंके अपौरुषेयवाद का भी खण्डन निम्न प्रकारसे किया है—

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।

(५।५०।३७७)

अर्थात् जिस वस्तुके कर्त्ता न दिखाई देने पर भी कृत बुद्धि उत्पन्न है वह पौरुषेय है, इसी प्रकार वेदोंका कर्ता न दीखने पर भी उसकी रचनाको देखकर अन्य ग्रन्थोंके सदृश वे पौरुषेय हैं। इसी लिये महर्षि गोतम लिखते हैं कि—

आदित्त्वादैन्द्रियकत्वात् कृतकवदुपचाराच्च ।

(२।२।१३)

अर्थात् आदि होनेके कारण, ऐन्द्रियक होनेके कारण और उपचारसे (व्यवहारसे) मन्द, तीव्रादि शब्दोंका व्यवहार होनेसे कृतक होनेसे शब्द अनित्य है। अतः स्पष्ट है कि शब्दात्मक होनेके हेतु वेद भी अनित्य हैं।

तथाच—

अपौरुषेय—"वेदोंके अपौरुषेय मानने पर यह प्रश्न उत्पन्न

होता है कि यह अपौरुपेयत्व पदमें है, वाक्यमें है, या वर्णों में ? इनके सिवाय अन्य कोई प्रकार नहीं हो सकता। इनमेंसे प्रथम और द्वितीय विकल्प तो बन ही नहीं सकता, क्योंकि यह बात अनुमानादिसे विरुद्ध है। वेदके पद व वाक्य पौरुपेय हैं, क्योंकि वे पद एवं वाक्य हैं। महाभारत आदिके पद वे वाक्योंके समान। तथा अपौरुपेयत्वका साधक प्रमाण न होनेसे भी वेदका अपौरुपेय-पना नहीं बन सकता है। वेदके अपौरुपेय साधक प्रमाणोंका अभाव असिद्ध नहीं है, तथाहि, अपौरुपेयकी सिद्धि करने वाला प्रमाण प्रत्यक्ष है या अनुमान है अथवा अर्थापत्ति आदि ? प्रत्यक्ष तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह तो शब्दके सुनने मात्रमें अपना कार्य समाप्त कर देता है। अतः शब्दके पौरुपेय या अपौरुपेयधर्म को वह ग्रहण नहीं करता है। अनादिसे विद्यमान रहने वाले अपौरुपेयत्वको इन्द्रियोंसे उत्पन्न प्रत्यक्ष कैसे ग्रहण कर सकता है ? क्योंकि इन्द्रियां तो प्रतिनियत रूप आदिको विपय करती हैं। अनादि कालसे सम्बन्धका अभाव होनेसे, अनादि कालसे सम्बन्ध रखने वाले सत्वसे भी सम्बन्धका अभाव है। और यदि सम्बन्ध है भी तो उसीके समान अनागत कालसे सम्बद्ध धर्म आदिके स्वरूपसे भी सम्बन्ध सम्भव हो सकता है, तब अतीन्द्रिय पदार्थ धर्मके ज्ञाताका अभाव कैसे हो सकता है ? और अनुमान भी अपौरुपेय की सिद्धि नहीं करता है, वह अनुमान, कर्त्ताके अस्मरणरूप हेतुसे उत्पन्न होता है ? या वेदका अध्ययन, इस शब्दसे कहे जाने रूप हेतुसे, या कालरूप हेतुसे, उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्षमें विचारणीय यह है कि कर्त्ता अस्मरण क्या वस्तु है ? कर्त्ताके स्मरणका अभाव, या स्मरण होने योग्य कर्त्ताका अभाव कहते हो ?

प्रथम पक्ष स्वीकार करने पर तो हेतु व्यधिकरणासिद्ध हो

जायेगा। अर्थात् हेतु और साध्यका अधिकरण भिन्न-भिन्न हो जावेगा। क्योंकि कर्त्ताके स्मरणका अभाव तो आत्मासे और अपौरुषेयपना वेदमें रहता है।

दूसरे पक्षमें अर्थात् स्मरण होने योग्य कर्त्ताका अभाव कहने पर दृष्टान्तका अभाव हो जावेगा ? क्योंकि किसी भी नित्य वस्तुका न तो स्मर्यमाण कर्त्ता और न अस्मर्यमाण कर्त्ता ही स्वीकार किया गया है, अपितु वह वस्तु अकर्तृक ही स्वीकार की जाती है। हेतुका विशेषण भी व्यर्थ हो जाता है। कर्त्ताके होने पर ही स्मरण या अस्मरण होता है, कर्त्ताके अभावमें नहीं। जैसे आकाशके कर्त्ताका स्मरण या अस्मरण नहीं होता है, क्योंकि उसका कर्ता नहीं है। यदि कहो, कि अकर्तृकपना ही यहाँ पर विवक्षित है, तो स्मर्यमाण विशेषण व्यर्थ है। और जीर्ण,-कूप, महल, नगर आदिके साथ व्यभिचार भी आता है क्योंकि उनके कर्त्ताका भी स्मरण नहीं होता है। परन्तु वे हैं पौरुषेय, यह सर्वसम्मत है।

यदि कहो कि सम्प्रदायके विच्छेद न होनेपर अस्मर्यमाण कर्त्तापना हेतु है तो भी अनेकान्त है। इस वट वृक्षपर भूत रहता है. इत्यादि अनेक पद सम्प्रदायका विच्छेद न होनेपर भी पौरुषेय देखे जाते हैं। आप भी उनको अपौरुषेय नहीं स्वीकार करते हो, और हेतु असिद्ध भी है, क्योंकि पौराणिक ब्रह्माको वेदका कर्त्ता कहते हैं "वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिसृता" अर्थात् वेद ब्रह्माके मुखसे निकलते हैं एवञ्च "प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते" अर्थात् प्रत्येक मन्वन्तरके पश्चात् नवीन श्रुतियोंका निर्माण होता है इत्यादि वचनोंसे वेदके कर्त्ताकी सिद्धि होती है। तथा च काण्व, माध्यन्दिनी, शाकल्य, आदि वेद-शाखाओंके नाम प्रसिद्ध हैं। ये नाम ही

उनके कर्त्ताओंको सिद्ध करते हैं। अतः कर्त्ताका असमरण कैसे सिद्ध हुआ।

तथा च, श्रुतियाँ उन २ ऋषियोंके द्वारा रचित होनेसे उनके नामोंसे अंकित हैं या उनके द्वारा देखी जानेसे अथवा उनके द्वारा प्रकाशित होनेसे? यदि उनके द्वारा ये बनाई गई हैं तो उनके कर्त्ताओंका असमरण कहाँ रहा? उनका तो स्मरण सिद्ध हो गया। ऐसा होनेपर उनका पौरुपेयत्व स्वयं सिद्ध हो गया। आदिके दोनों पक्षोंमें भी यदि नष्ट वेदोंकी शाखाओंको उन कण्व आदि ऋषियोंने देखा या प्रकाशन किया तो सम्प्रदाय का अविच्छेद कहाँ रहा। विच्छेद हो गया, तभी तो उन्होंने वे ऋचाएँ देखीं तथा प्रकाशित कीं, और अतीन्द्रिय पदार्थदर्शीका खण्डन कैसे हुआ। जिन ऋषियोंने इन अतीन्द्रिय ऋचाओंको देखा या प्रकाशित किया, वे ही तो अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा हुए। यदि कहो, कि निरन्त-राय-धाराप्रवाहसे चली आने वाली ऋचाओंको देखा, तथा प्रकाशित किया तो जितने उपाध्यायोंसे वे देखी गईं या प्रकाशमें लाई गईं तो उन सबके नामोंसे अंकित होनी चाहिएँ। कुछ विशेपता तो है नहीं, कि एक नामसे तो अंकित हों और आपके नामसे नहीं। इस कथनसे "वेदके कर्त्ताके स्मरणकी मूलभित्ति नष्ट होगई" इत्यादि कथन भी खण्डित हो गया।

तथाहि-प्रत्यक्षसे उस कर्त्ताका ग्रहण न होनेसे वेदमें कर्त्ताका स्मरण छिन्नमूल है? या अन्य प्रमाणसे उसका ग्रहण न होनेसे? यदि प्रत्यक्षसे कहते हो, तो आपके प्रत्यक्षसे या सबके प्रत्यक्षसे। यदि आपके प्रत्यक्षसे तो आपका प्रत्यक्ष तो वेदके अतिरिक्त अन्य शास्त्रोंके भी कर्त्ताको

ग्रहण नहीं करता है। अतएव अन्य आगमोंके कर्ताका स्मरण भी छिन्नमूल होनेसे उनके कर्त्ताओंका भी अभाव होना चाहिए। इसी प्रकार जितने कर्त्ता प्रमाणोंसे सिद्ध हैं, उन त्रिपिटक आदि ग्रन्थोंमें भी कर्त्ताके अस्मरणरूप हेतुके चले जानेसे हेतु व्यभिचारी हो गया। यदि कहो कि अन्य आगमोंमें हमारे प्रत्यक्षसे कर्त्ताके ग्रहण न होनेपर भी सौगत आदिके द्वारा कर्त्ताका सद्भाव स्वीकार करनेसे उनके व्यावृत्त हेतु अपौरुषेयत्वके साथ ही व्याप्त है, तो यह बात भी नहीं बन सकती। क्योंकि अन्यकी मान्यता तो आपकी दृष्टिमें अप्रमाण है। अन्यथा अन्य सौगत आदि तो वेदमें भी कर्त्ताका सद्भाव स्वीकार करते हैं। इस प्रकार तो वेदमें कर्त्ताका अस्मरणही असिद्ध हो जाता है। यदि कहो कि वेदमें विवादरहित निश्चित किसी एक कर्त्ताके विषयमें विवाद है, इसलिए कर्त्ताका स्मरण अप्रमाण है। कोई तो ब्रह्माको वेदका कर्त्ता स्वीकार करते हैं, अन्य, अष्टक आदिको कर्त्ता स्वीकार करते हैं अतः कर्त्ताका अस्मरण असिद्ध नहीं है। यदि ऐसी बात है तो कर्त्ता विशेषमें ही तो विवाद है, कर्त्ता सामान्यमें तो कोई विवाद न रहा। इसलिए कर्त्ताका स्मरण-मात्र तो प्रमाण ही ठहरा। अन्यथा तो कादम्बरी आदिके कर्त्तामें भी विवाद है। इस प्रकार तो वे भी नित्य सिद्ध हो जायेंगे। अतः सामान्य कर्त्ताके स्मरण होनेसे स्मर्यमाण कर्त्तापना हेतु व्यभिचारी है।

यदि कहो कि वेदके कर्त्ता विशेषमें जिस प्रकार विवाद है उसी प्रकार उसके कर्त्ता सामान्यमें भी विवाद है इसलिए वेदके कर्त्ताका स्मरण भी अप्रमाण है। किन्तु कादम्बरी आदिके तो कर्त्ता विशेषमें ही विवाद होनेसे कर्त्ताका स्मरण प्रमाण

है । इसलिए असमर्यमाण कर्तृकत्व हेतुमें अनेकान्त दोष नहीं आता है। इस पर आचार्य तर्क करते हुए उत्तर देते हैं कि सौगत आदि तो वेदमें कर्त्ता स्वीकार करते हैं और मीमांसक आदि नहीं करते इस प्रकार कर्त्ता सामान्यमें विवाद होनेसे यदि कर्त्ताका स्मरण अप्रमाण है तो कर्त्ताका असमरण भी तो उसीके समान अप्रमाण ठहरा, क्योंकि उसमें विवाद समान रूपसे विद्यमान है। इस लिए आपका हेतु असिद्ध है।

अथवा, वेद अपौरुषेय होवे, तो भी वह व्याख्या किया हुआ ही अपने अर्थका ज्ञान कराता है ? बिना व्याख्याके तो ज्ञान हो नहीं सकता, अन्यथा तो अतिप्रसंग दोष आजावेगा । अर्थात् इस प्रकारसे तो जैसे ब्राह्मण आदि वेदके अनुयायियोंको अर्थकी प्रतीति कराता है उसी प्रकार सौगतको भी करा देवे।

यदि व्याख्या किया हुआ अर्थकी प्रतीति कराता है तो उसका व्याख्यान किस प्रकारसे होगा ? स्वतः ही या पुरुषसे स्वतः तो हो नहीं सकता, क्योंकि मेरा यही अर्थ है अन्य नहीं है, यह (जड) वेद स्वयं प्रतिपादन नहीं कर सकता है। अन्यथा व्याख्याका भेद नहीं होना चाहिए। यदि पुरुषसे व्याख्या कहोगे, तो पुरुषके द्वारा किए गये उसके व्याख्यानसे अर्थके दोषोंकी आशंका कैसे नहीं होगी ? क्योंकि पुरुष विपरीत भी व्याख्यान करते देखे गये हैं । व्याख्यानोंकी प्रमाणता, यदि संवादसे स्वीकार करते हो तो अपौरुषेयत्व कल्पना व्यर्थ है । व्याख्यानके समान वेदकी प्रमाणता भी संवादसे ही निश्चित हो सकती है। तथा व्याख्यानोंमें संवाद पना भी नहीं है, क्योंकि परस्पर विरुद्ध भावना, नियोग आदि

व्याख्यानोंमें परस्पर विसंवाद देखा जाता है। और दूसरी बात यह है कि उसका व्याख्यान करने वाला अतीन्द्रिय पदार्थोंका द्रष्टा है या उससे विपरीत है? प्रथम पक्षमें तो अतीन्द्रिय पदार्थदर्शीका प्रतिषेध नहीं हो सकेगा, और धर्म आदिमें इसी पुरुषकी प्रमाणता बन सकती है। "धर्मके विषयमें वेदकी ऋचाएँ ही प्रमाण हैं" यह नियम भी नहीं हो सकेगा। और यदि अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टासे विपरीत किञ्चिज्ञ उस वेदका व्याख्याता है, तो उसके व्याख्यानसे यथार्थ ज्ञान कैसे हो सकेगा? असत्य व्याख्यानकी शंकासे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकेगा। मनु आदिके अतिशय सहित बुद्धिमान् होनेसे उनके व्याख्यानसे यथार्थ परिज्ञान हो जावेगा, वह भी बात नहीं है। क्योंकि मनु आदिके अतिशय ज्ञानका सद्भाव असिद्ध है। उनकी प्रज्ञाका अतिशय स्वतः ही, या वेदके अर्थके अभ्याससे, या अदृष्टसे अथवा ब्रह्मासे होता है? स्वतः यदि होता है, तो सबके ही होना चाहिये। किसीके कोई विशेषता तो है ही नहीं। वेदके अर्थके अभ्याससे यदि कहोगे, तो वह अभ्यास ज्ञात या अज्ञात अर्थका अभ्यास होगा? अज्ञातका तो हो नहीं सकता, अन्यथा गोपाल (ग्वाले) आदिको भी वेदके अर्थका अभ्यास होना चाहिये। ज्ञातका यदि है, तो उसका ज्ञान स्वतः ही होता है? या अन्य से? स्वतः यदि होता है, तो उसका अन्योन्याश्रय दोष आता है। वेदके अर्थका अभ्यास होने पर स्वतः उसका परिज्ञान होगा। और स्वतः परिज्ञान होने पर वेदके अर्थका अभ्यास होगा। यदि अन्य वेदसे वेदके अर्थका ज्ञान होता है तो उसका भी वेदार्थका ज्ञान अन्यसे होगा। इस प्रकार अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा न मानने पर (अन्धपरम्परा) यथार्थ निर्णय नहीं हो सकेगा। अदृष्ट भी प्रज्ञाका असाधक (सिद्ध न करने वाला) है। क्योंकि वह (अदृष्ट) अन्य आत्माओंमें भी समान है।

वैसा अदृष्ट (धर्मविशेप) अन्यके नहीं है, मनु आदिमें ही वैसा अदृष्ट हो सकता है। यदि ऐसा कहते हो तो मनु आदिमें ही वह धर्म विशेपरूप अदृष्ट कैसे संम्भव है ? यदि वैदिक अर्थके अनुष्ठानसे करोगे तो क्या वह वेदके ज्ञात अर्थका या अज्ञात अर्थका अनुष्ठान करता है ? अज्ञात अर्थका तो कहा नहीं जासकता, अन्यथा अतिप्रसंग दोप आता है। ज्ञातका कहने पर परस्पराश्रय दोप आता है। वेदके अर्थके ज्ञानका अतिशय सिद्ध होने पर उस अर्थका विशेप अनुष्ठान सिद्ध होता है, और अनुष्ठान सिद्ध होने पर उसके ज्ञानका अतिशय सिद्ध हो सकता है। ब्रह्मके भी वेदके अर्थका ज्ञान सिद्ध होने पर उन ब्रह्मासे मनु आदिके वेदके अर्थका ज्ञानातिशय हो सकता है। वह वेदके अर्थका ज्ञान ब्रह्माके कैसे सिद्ध हो सकता है ? यदि धर्मविशेपसे कहोगे तो वही परस्पराश्रय दोप आता है। वेदके अर्थके परिज्ञानका अभाव होनेपर उस ज्ञान पूर्वक अनुष्ठानसे उत्पन्न धर्म विशेप की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और धर्मविशेपकी उत्पत्तिके अभावमें वेदके अर्थका परिज्ञान असम्भव है। इसलिए अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टाके अस्वीकार करनेपर वेदके अर्थका परिज्ञान नहीं हो सकता है।

वादी कहता है, कि व्याकरण आदिके अभ्याससे लौकिकपर वाक्योंके अर्थका ज्ञान होनेपर उनके समान वैदिक-पद वाक्योंके अर्थका परिज्ञान भी होजावेगा। जैसे अश्रुतपूर्व काव्योंका ज्ञान हो जाता है, इसलिए वेदके ज्ञान करानेमें अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टाका कुछ प्रयोजन नहीं है। आचार्य कहते हैं, कि यह कथन भी निःसार है। क्योंकि लौकिक और वैदिक पदोंमें एकता होने पर भी पदोंके अनेक अर्थ होनेसे एक अर्थका परिहार करके दूसरे अभिलाषित अर्थकी व्यवस्थाका नियम नहीं हो सकेगा। और प्रकरण आदिसे भी उसका नियम नहीं बन सकता है। क्योंकि

प्रमाण भी अनेक हो सकते हैं। जैसे द्विसन्धान आदि काव्योंके प्रकरण भी भिन्न भिन्न होते हैं। यदि लौकिक अग्नि आदि शब्दके समान होनेसे वैदिक अग्नि आदि शब्दके अर्थका ज्ञान हो जाता है तो पुरुष-कृतकी समानता होने से वह पौरुषेय भी क्यों न हो जावे। लौकिक अग्नि आदि शब्दके अर्थपना पौरुषेयत्वको छोड़कर उसके ही अर्थको कैसे ग्रहण करा सकते हैं। दोनोंको ही ग्रहण करना या छोड़ना चाहिये। जिस अर्थमें जिन शब्दोंका पुरुषोंके द्वारा संकेत किया गया है, वे शब्द उसी अर्थको निर्दोष-रूपसे प्रतिपादन करते देखे जाते हैं। अन्यथा शब्दोंके भेदकी कल्पना ही व्यर्थ हो जाय। इसलिये वैदिक-वचन पुरुष-कृत हैं। पुरुष-कृत वचनकी रचनाके समान होनेसे ? जैसे नवीन बनाये कूप, प्रासाद आदिकी रचनाके समान रचित जीर्णकूप, प्रासाद आदि।

वर्णोंके भी नित्यताकी सिद्धि नहीं हो सकती है। क्योंकि कृतकत्व हेतुसे शब्द मात्रकी अनित्यता सिद्ध होनेसे पर वर्ण भी अनित्य सिद्ध हो जाते हैं। इसीको स्पष्ट करते हैं।

शब्द अनित्य हैं, कृतक होनेसे घटके समान। यहाँ पर कृतक होना हेतु असिद्ध नहीं है। क्योंकि इसकी प्रमाणसे सिद्धि है। इसीको स्पष्ट करते हैं—

शब्द कृतक है, कारणोंके साथ अन्वय और व्यतिरेक रखने से घट आदिके समान। जैसे घट, कुम्हार, दण्ड आदिके साथ अन्वयव्यतिरेक रखता हुआ अनित्य है, उसी तरहसे शब्द, तालु कण्ठ आदिके साथ अन्वयव्यतिरेक रखता हुआ अनित्य है।

शब्द, तालु, कण्ठ आदिके व्यापारके अभावमें नहीं देखा

जाता है। जैसे चक्र आदिके अभावमें घटादि।

वादी शंका करता है कि शब्दको अनित्य स्वीकार करने पर उससे अर्थका परिज्ञान नह होना चाहिये और वह होता है। इसलिए शब्द नित्य है। अन्यथा वह अपने अर्थका प्रतिपादक नहीं हो सकता।

शब्दार्थका ज्ञान अर्थके साथ शब्दके साथ सम्बन्धके आधीन है। और सम्बन्धका ज्ञान तीन प्रमाणोंके द्वारा सम्पादित होता है। इसीको स्पष्ट करते हैं—

जब एक वृद्ध, संकेतके जानकार बालकको आज्ञा देता है—अरे देवदत्त! श्वेत गायको डण्डेसे हाँक ला, तब निकटमें स्थित अन्य जिसने संकेतका ग्रहण नहीं किया है, वह शब्द और पदार्थ दोनोंको प्रत्यक्षसे समझ लेता है। और सुनने वालेके उस विषयक दण्डसे मारण आदि चेष्टाओंके होनेसे गाय आदि विषयक ज्ञानको समझ लेता है, कि इस देवदत्तके गाय विषयक ज्ञान है। उसके ज्ञान अन्यथा नहीं होना चाहिये था। इस अन्यथानुपपत्तिके बलसे उस शब्दकी उसी अर्थमें वाचक शक्ति है ऐसी कल्पना कर लेता है। पुनः २ उस शब्दके उच्चारणसे ही उस अर्थका ज्ञान होता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान और आगम द्वारा शब्द और अर्थके सम्बन्धका ज्ञान होता है। यह एक बार शब्दके उच्चारणसे सम्भव नहीं है और अनित्यका पुनः २ उच्चारण भी नहीं है और उस पुनः २ उच्चारणके अभावमें अन्वय और व्यतिरेक द्वारा वाचक शक्तिका ज्ञान नहीं हो सकता है। और वाचक शक्तिके अभावमें बुद्धिमानोंको दूसरेके ज्ञान करानेके लिए वाक्यों का उच्चारण नहीं करना चाहिये, परन्तु वाक्योंका उच्चारण

सी० से तथा मैक्समूलर १५०० वी० सी० से। जो प्रकार यहाँ कहा गया है, वह ऐतिहासिक माना जाता है। बहुतेरे प्राचीन प्रथानुयायी पण्डित ऐसे कथनोंसे वेदोंका अपमान समझते हैं और मानते हैं कि वेद भववान् अनादि हैं। कुछ वेदर्षियोंने यहाँ तक लिखा है कि मैं बड़े परिश्रमसे ये तीन ऋचाएँ बना रहा हूँ। मेरे बाप वैद्यक करते हैं, माता पत्थर पर गेहूँ पीसती है और मैं ऋचाएँ बनाता हूँ। हम लोगोंसे पहलेके लोग उषस् का सौन्दर्य देखते थे, हम लोग आज देखते हैं और अन्य लोग आगे देखेंगे। वेदोंमें सहस्रों घटनाएँ अंकित हैं, जिनका किसी समय होना अनिवार्य है। इन तर्कोंके उत्तरमें अनादित्व मानने वालोंका कथन है कि वेदर्षि अवश्य थे, किन्तु वे रचयिता न होकर ऋचाओंके जानने वाले मात्र थे। अथ च ईश्वरीय अनुकम्पासे उनकी पात्रताके कारण उन्हें ऋचाएँ भासित भर हुई।

इसी प्रकारके विचार पारसी यहूदी, ईसाई, मुसल्मानी आदि ग्रन्थोंके विषयमें भी कहे जाते हैं, और इसी ईश्वरीय सम्बन्धपर उनकी महत्ता एवं अकाट्यता आधारित है। हम ऐसे विचारोंको विश्वासपात्र पर अवलम्बित समझकर उनके विषयमें कोई मत प्रकाश नहीं करते, वरन् इतना ही कहते हैं कि ईश्वरकी न्यायप्रियताको न छोड़ते हुए हमें यही मानना पड़ेगा कि सब देशों और समयोंके सुकर्मियों पर उसकी समान कृपा है। हम यह भी नहीं कह सकते कि अन्य देशोंके लोग या कमसे कम उनके पैगम्बर सुकर्मी न थे। ऐसी दशामें यह नहीं कहा जासकता कि हमारा प्रत्येक वैदिक ऋषि प्रत्येक मुख्य पैगम्बरसे श्रेष्ठतर था। ऐसी दशा में विदेशी पुनीत ग्रन्थ एक दम छोड़े नहीं जासकते, न यही कहा जा सकता है कि उनके जितने कथन वैदिक विचारोंके प्रतिकूल हैं, वे त्याज्य हैं।

हमारी इच्छा ऐसा कहनेकी अवश्य होगी, किन्तु उनकी भी इच्छा वैसा ही कहने की होगी। ईश्वर सबके लिए एक है, और किसी देश अथवा समयका उसपर अकेला अधिकार नहीं है। धर्म सबके लिए एक है। अच्छाई सबके लिए अच्छी और बुराई बुरी है। केवल बौद्ध-धर्म ऐसा था जो बुद्धिपर चलता था, बाह्य आधारोंपर नहीं। पुराने बौद्ध-धर्मको हीनयान कहते थे। फिर भी स्वयं बुद्ध भगवान्‌ने मरते समय कह दिया— कि यदि कोई नवीन धार्मिक तत्त्व बतलावे, तो मेरे विचारोंसे उसे मिलाकर अनुकूल होनेपर मानना, तथा प्रतिकूल होनेपर त्याज्य समझना। अतएव उसमें भी ईश्वरावलम्बी पुस्तकोंका सा मामला आगया। भेद केवल इतना रहा, कि महात्मा बुद्ध ने अपने वचनोंका आधार ईश्वरपर न रखकर बुद्धिपर माना, जो अन्तमें उन्हींकी बुद्धिपर सीमित हो गया। ऐसी स्थिति में यदि हम सभी महापुरुषोंके वचनोंका आदर करना चाहें, तो प्रतिकूलता सामने उपस्थित हो जाती है। अतएव अन्य सांसारिक विषयोंकी भाँति धर्ममें भी बुद्धिका व्यवहार करना पड़ेगा, अथच आंख मूँदकर चलनेसे काम न चलेगा।

यदि इन सब विचारोंको भी छोड़कर कहें, कि हमारे तो वेद भगवान् हैं, और हम उन्हींको मानेंगे, तो इतिहासि हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। हम देखते हैं कि वेद भगवान्‌ने वैभव केवल ईश्वरमें मानकर प्रधानता ३३ या ३३३९ देवी देवताओंकी रखी, किन्तु औपनिषत्साहित्यने परावलम्बी देवताओंको छोड़कर विशुद्ध निर्गुण गुणातीत परमात्मामें मन लगाया। संसार ऐसे सम्बन्धहीन परमेश्वरसे सन्तुष्ट न रह सका, और कपिल, जैमिनि, बुद्ध आदि महात्माओं द्वारा इन विशुद्ध विचारोंके विद्रोह होकर संसारमें अनीश्वरवाद चलने

लगा। तब वेचारे ऋषियोंको अपना विशुद्ध औपनिषत्—निर्गुणवाद छोड़कर महात्मा वादरायण व्यास द्वारा "गीता" के सगुणवादपर आना पड़ा, जिससे संसारमें फिरसे ईश्वरवाद का मान हुआ। समयपर गुर्जर, सीदियन, शक, तूरानियन, हूण आदिके प्रचुर संख्यामें आगमनसे सनातनधर्मियों बौद्धों, जैनों तथा इन सबोंके नवीन विचारोंमें कई शताब्दियों तक भारी संघट्ट हुआ, जिसमें धार्मिक युद्ध तो न हुए, किन्तु वादोंकी परम प्रचुरता रही। फल यह हुआ कि हम लोगोंने सबके राजीनामेका एक नवीन धर्म स्थापित पाया, एवं इन सब जातियों तथा वादियोंको एक सुगठित जाति तथा विचार गृहीत समाजमें परिणत देखा। यह दशा शंकराचार्यके समय आठवीं शताब्दीमें थी और दक्षिणमें यह सुधार बारहवीं शताब्दीमें रामानुजाचार्यके समय तक स्थापित हुआ। यह पौराणिक मत, न केवल वैदिक विचारों से दूर था, वरन् जितनी स्थूलता 'गीता' ने सर्वमान्यताके विचारसे ग्रहण की थी, उससे भी यह बहुत आगे बढ़कर बहुत स्थूल हो गया, यहाँ तक कि स्वामी शंकराचार्यको इस भद्देपनके परिशोधनकी आवश्यकता समझ पड़ी।

अतएव आज कल हमारे सामने जो धार्मिक प्रश्न उपस्थित है, वह वैदिक मतके मानने या न माननेका नहीं है, वरन् इस मोटिया मतके मानने या न माननेका है। प्रश्न यह है, कि हम लोग अपने पौराणिक समय वाले राजीनामेके सामने भगवान् व्यास तथा स्वामी शंकराचार्य तकको माननेको तैयार हैं या नहीं। इतना अवश्य है, कि यह पौराणिक समयकी बड़ी ही भारी महत्ता थी, कि उसने इतनी अनमिल जातियोंको सुगठित करके एक भारी साम्यतापूर्ण ऐसी महती जाति उत्पन्न की

जिसने आठसौ वर्षोंसे अनेकानेक अत्याचार विचार तथा आविष्कारोंके धक्कोंको सफलतापूर्वक सहकर अपना रूप प्रायः पूराका पूरा बीसवीं शताब्दी-पर्यन्त स्थापित रखा है। जिन प्रयत्नोंने हमको इतनी भारी सहायता दी, उन्हें तुच्छ, हेय या थोड़ी महिमाका मानना अनुचित है। हम उनको बहुत ही ऊँचा समझते हैं। फिर भी मनुष्यका सहज स्वभाव है कि वह उन्नतिशील है। हम देखते हैं-कि पौराणिक धर्मको समाज-संगठनके राजनैतिक एवं सामाजिक विचारसे अपने धर्मका रूप समय-समयपर बदलना पड़ता है। यह बात अब भी बड़ी तेजी से चल रही है। इसीलिए इन प्रश्नोंपर विचार करना परमावश्यक है। हमारे धर्मशास्त्रका वचन है, कि बिना वैदिक साहित्य का नित्यप्रति अध्ययन किये हम ऋपिऋणसे मुक्त नही हो सकते। यह विचार हमें बहुत सारगर्भित जान पड़ता है। बिना ऐसा किये अपनी सभ्यता उन्नत न होकर समयके साथ गिरती ही जावेगी। अतएव वेद भगवान्को ऋपियोंने अपनी बुद्धिसे बनाया या ईश्वरीय प्रेरणासे देखा, इस प्रश्नमें कोई सार नहीं है। मान लिया कि उनमें ईश्वरका विशेषांश है। वेदज्ञ त्रिकालज्ञ सही। प्रश्न केवल इतना है कि वेदोंकी शिक्षाको उपनिषदों, पुराणों, तर्कवाद, भक्तिवाद आदिसे प्रभावित करते-करते आज हम कितना मान रहे हैं, और हमारे वर्तमान धार्मिक आचार-विचार कहाँ तक वेदानुकूल हैं।

डा० रामजी उपाध्याय एम० ए० डी० फिल और वेद—

ऋग्वेद

श्री डा० रामजी उपाध्यायजी 'भारतकी प्राचीन संस्कृति' में कहते हैं कि—संहिताओंके चार विभाग हैं—ऋग्वेद, अथर्ववेद,

होता है। अतः परके लिये वाक्योंका उच्चारण नहीं बन सकता। इस अन्यथानुपपत्तिके बलसे निश्चय किया जाता है, कि शब्द नित्य है। यही आचार्योंने कहा है।

दर्शनस्य परार्थत्वान्नित्यः शब्दः

अर्थात् उच्चारण परके लिये होनेसे शब्द नित्य है। यदि ऐसी सम्मति हो, कि उच्चारण किये जाने वाला शब्द समानताके कारण नित्य सा मालूम होता हुआ अर्थका परिज्ञान कराता है, नित्यताके कारण नहीं। यह कथन भी ठीक नहीं है।

सदृशताके कारण शब्दोंसे अर्थका परिज्ञान नहीं हो सकता है। एकत्वरूपसे निश्चित ही शब्द अर्थके साथ सम्बन्ध ग्रहण करता है। जो शब्द मैंने जाना था वही यह है, इस प्रकारकी अनुभवसिद्ध प्रतीति नहीं होती। उसके समान यह शब्द है ऐसी प्रतीति नहीं होती। और दूसरी बात यह भी है कि सदृशतासे अर्थकी प्रतीति होनेपर शब्द-ज्ञान भ्रान्त होजावेगा। संकेत तो अन्यके साथ, और अर्थकी प्रतीति अन्यसे भ्रान्तिरहित होजाय, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अन्यथा गो शब्दमें संकेत ग्रहण करनेपर अश्व शब्दसे भी गो अर्थका ज्ञान भ्रान्तिरहित होना चाहिए। इस प्रकार पदार्थोंका प्रतिपादकपना अन्यथा नहीं बन सकता। अतः शब्द नित्य है।

उत्तर—अनित्य शब्द अर्थका प्रतिपादक नहीं हो सकता, यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि धूम आदिके समान जिस शब्दका संकेत ग्रहण कर लिया, ऐसे अनित्य भी शब्दके द्वारा सादृश्यसे अर्थका प्रतिपादन हो सकता है। जो शब्द संकेत कालमें देखा जाता है, उसीसे अर्थकी प्रतीति हो, ऐसा नियम नहीं है। क्योंकि महानसमें दृष्ट धूमके सदृश पर्वतके धूमसे भी अर्थकी प्रतिपत्ति देखी जाती है। अन्यथा तो सब वस्तुएँ ही व्यापक सिद्ध होजायें। समान

परिणामकी प्रधानतासे साध्य और साधनके निश्चयका सम्बन्ध होता है। सम्पूर्ण धूम व्यक्तियोंका अपने साध्य अग्निके साथ सम्बन्ध अल्पज्ञोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। यदि कहो, कि धूम, सामान्य ही अग्निके ज्ञानका कारण है, सो भी नहीं। क्योंकि व्यक्तिके समानताके अतिरिक्त सामान्य ही असंभव है और धूमत्वसे मैंने अग्निका ज्ञान किया, ऐसी प्रतीति भी नहीं होती, अपितु धूमसे अग्निका ज्ञान होता है। ऐसी प्रतीति होती है।

सदृश शब्दसे जो अर्थ-प्रतीतिका खण्डन किया है वह ठीक नहीं है। क्योंकि अनुमानमें सदृश धूमसे अग्निका ज्ञान देखा जाता है। अन्यथा सब अनुमानोंकी समाप्ति ही हो जावेगी। इससे यह भी खण्डित होगया कि शब्दके उच्चारण किये विना, वाच्य-घट आदि अर्थके साथ वाचक-घट शब्दका सम्बन्ध कैसे हो सकता है। और उच्चारण करके नष्ट हुए शब्दके साथ संबंधसे क्या प्रयोजन है? क्योंकि वह शब्द तो नष्ट होचुका इत्यादि।

यह सब कुतर्क धूममें समान रूपसे ही लागू होते हैं। क्योंकि अदृष्ट धूममें तो सम्बन्ध ग्रहण नहीं किया जासकता, और देख कर नष्ट हुए धूमसे कोई सम्बन्ध नहीं।

इसलिये व्यवहारमें प्रवृत्तिके इच्छुक मीमांसकको सदृशतासे अर्थकी प्रतिपत्ति स्वीकार करनी ही चाहिये। और दूसरी बात हम पूछते हैं, कि यदि शब्दसे जातिका परिज्ञान है तो व्यक्तिका हुआ, जिससे वह व्यक्तिको जनावे। इस प्रकार वाच्य और वाचक दोनों में सामान्य विशिष्ट विशेष रूपता स्वीकार करनी चाहिये। सादृश्यतासे अर्थकी प्रतिपत्ति स्वीकार करनेपर शाब्दिक ज्ञान भ्रान्त हो जावेगा, सो यह बात तो धूम आदिसे अग्निके ज्ञान करनेमें भी समान है। इस प्रकार अनित्य शब्दसे अभ्रान्त अर्थ-बोध होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण श्री प्रमेयकमलमार्तण्डसे जानना चाहिए।

(प्रमेयकमलमार्तण्ड अनुवादक पं० ज्योतिस्वरूप न्यायतीर्थ सहारनपुर)।

तथाच—ऋग्वेद भाष्यकार पं० रामगोविन्दजी त्रिवेदी "वैदिक साहित्य" नामक ग्रन्थके पृ० ३० पर लिखते हैं कि "हमारे शास्त्र और धर्माचार्य वेदको नित्यता स्वीकार करते हैं। सनातनी और आर्य-समाजी वेद-नित्यत्वके प्रबल पक्षपाती हैं। कई तो छन्दोरूप में ही, शब्दशः और अक्षरशः, वेदको नित्य मानते हैं। स्कन्द स्वामी, सायण आदि सभी प्राचीन भाष्यकार वेदको नित्यता स्वीकार करते हैं। अनेक लोग शब्द-स्फोट, वाक्य-स्फोट आदिकी नित्यता स्वीकार कर वेदको नित्य बताते हैं और अनेक वेदको ईश्वरका स्वाभाविक निःश्वास मानते हैं। ग्रामोफोनके रेकार्डमें भरे हुए शब्द महीनों और वर्षों बाद सुनाई देते हैं; इसलिए भी शब्द और शब्दरूप वेद नित्य माने जाते हैं। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'यदि शब्द-मात्र नित्य है, तो शब्दरूप बाइबिल, कुरान और प्रतिदिन गढ़ी जाने वाली ठुमरी और कजलीको भी नित्य मानना पड़ेगा। वेदकी विशेषता ही क्या रही? दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि जब कि न्याय, वैशेषिक आदि शब्दके आधार-आकाश (वैज्ञानिक मतसे वायु) को ही नित्य नहीं मानते, तब शब्द कैसे नित्य हुआ? सांख्यके मतसे जब प्रकृतिकी साम्यावस्था में आकाश और वायु ही नहीं रहते, तब गुण-रूप-शब्द, शब्दरूप वेद, छन्दोरूप में कैसे रहेंगे?"

तथा च—आगे आप लिखते हैं कि "इतना होने पर भी वेदके जिन अंशोंमें ऐतिहासिक बातें हैं, वे अंश तो किसी भी रूपमें नित्य नहीं। अभावपूर्तिके लिए मनुष्य भाषाएँ बनाया करता है, और वे भाषाएँ बदला करती हैं। स्वयं वैदिक भाषा कितने

ही रूपोंमें आचुकी है। ऋग्वेदसंहिता और अथर्ववेदसंहिता की भाषाओंमें, अनेक स्थलोंमें भेद है। शाकलसंहिता और माध्यन्दिन-संहिताकी भाषाओंमें जमीन आसमानका भेद है।

तैत्तिरीय और मैत्रायणीय संहिताओंको देखकर क्या कोई कह सकता है कि दोनोंकी भाषा एक वा समकालीन है ?

वस्तुतः ईश्वरीय शक्तिसे शक्तिमान होकर तपःपूत ऋषियों ने वेदको बनाया। अभूतपूर्व वस्तुके उत्पादनके अर्थमें जन्, कृ, सृज्, तक्ष आदि धातुओंका प्रयोग, ऋग्वेदसंहिताके मन्त्रोंमें, कई स्थानोंपर आया है। इन धातुओंका प्रयोग ऐसे ढंगसे आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लोग आवश्यकतानुसार बराबर नये २ मन्त्र बनाते थे।"

मिश्रबन्धु और वेद

मिश्रबन्धु, 'धर्म-तत्व' नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि—'ऋग्वेद' हमारा प्राचीनतम साहित्य है। 'सामवेद' में प्रायः अष्टमांश नवीन है, और शेष ऋग्वेदसे आया है। 'यजुर्वेद' ऋक्से चौथाई होगा, और उससे हजार पाँच सौ वर्ष पीछे प्रारम्भ होकर उसके पीछे 'यजुर्वेद' के प्रायः ५०० वर्ष पीछे तक बनता भी रहा। 'अथर्ववेद' ऋक्से बहुत थोड़ा पीछे प्रारम्भ होकर उसके पीछे 'यजुर्वेद' के प्रायः समान ही समय तक चलता रहा। आकारमें यह 'ऋग्वेद' से थोड़ा ही छोटा होगा तथा 'सामवेद' उसका प्रायः आधा होगा। हमारे पास चारों वेदों के जो अनुवाद हैं, वे प्राय २८५० पृष्ठोंके हैं।

तिलक महाशय 'ऋग्वेद'का प्रारम्भकाल ४००० बी० सी० के निकटसे मानते हैं, विल्सन ३५०० बी० सी० से, हांग २५०० बी०

सामवेद और यजुर्वेद। इनमेंसे ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। ऋक्‌का अर्थ है स्तुतियाँ। ऋग्वेदमें प्रायः देवताओंकी स्तुतियाँ भरी पड़ी हैं। ये स्तुतियाँ उस समयके कवियोंकी रचनायें हैं। कवियोंको असाधारण या अलौकिक प्रेरणाके बलपर ही अपने वर्ण्य विषयके काव्यमय स्वरूपका आभास मिलता है। यह प्रेरणा प्राचीन कालमें ईश्वर-प्रदत्त मानी जाती थी। इसीलिए वेदोंको ईश्वरका बनाया हुआ या अपौरुषेय भी कहते हैं। कवियोंको मंत्रका दर्शक कहा गया है, मानो उनको रचना करते समय वर्ण्य विषयका साक्षात्कार होता हो। कई कुलके कवियोंने ऋग्वेदके मंत्रोंको रचा है, जिनके आदि कवि गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ कण्व, अङ्गिरा इत्यादि हैं। स्त्रियोंने भी कई मंत्रोंकी रचना की है।

ऋग्वेदकी स्तुतियोंमें कवियोंने जो कुछ अपने चारों ओर देखा उसके प्रति अपने विचार प्रगट किये हैं। प्रकृतिकी प्रायः सभी वस्तुएँ उनकी काव्यमयी प्रतिभाका विषय हो सकी हैं। प्रकृतिकी शक्ति प्रकट करने वाली वस्तुओंमें सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आकाश, मरुत्, वायु, जल, उषा, रात्रि, नदी, वन और पृथ्वीकी स्तुति मंत्रोंके द्वाराकी गई है। कवियोंने इनके व्यावहारिक अथवा साधारण रूपका ही वर्णन नहीं किया, बल्कि अपनी प्रतिभाके द्वारा उनके विभूतिमय रूपकी प्रतिष्ठाकी और व्यंजनाके द्वारा उनको मानव-जीवनके सन्निकट पाकर शनैः-शनैः उनका मानवीकरण किया। इस प्रकार इनको देवी-देवताओंका पद मिला। ऐसी परिस्थितिमें प्रारम्भिक मन्त्रोंको छोड़कर शेष भागोंमें इनके प्राकृतिक रूपकी छाया-मात्र मिलती है और इनमें मानवोचित व्यक्तित्व आरोपित किया गया है। इन्द्र, वरुण, मित्र, अदिति, विष्णु, पूषा, सरस्वती, वाक्, अश्विद्वय, रुद्र और पर्जन्य आदि

देवताओंके व्यवहारोंकी परम्परा बहुत कुछ मनुष्यों-जैसी दिखाई पड़ती है। ऋग्वेदके अन्तिम भागमें विश्वकर्मा (विश्वके रचयिता) प्रजापति-(सृष्टिके स्वामी) श्रद्धा (विश्वास) मन्यु (क्रोध) इत्यादि दिव्यरूपमें मानवताकी स्पष्ट झलक मिलती है। ऋग्वेदमें ऋभु, अप्सरा, गन्धर्व आदि देवताओंकी अन्य कोटियोंकी कल्पनाएँ भी मिलती हैं। देवताओंके अतिरिक्त अन्य कोटियाँ असुर, राक्षस, दास इत्यादि हैं, जिनसे प्रायः देवताओंका विरोध दिखाया गया है। ऋग्वेदमें पितरोंकी भी प्रतिष्ठा की गई है। पितर, लोगोंके मरे हुए पूर्वज हैं, जो मरनेके पश्चात् वैदिक विश्वासके अनुसार दिव्यकोटिमें सम्मिलित हो जाते हैं और इस प्रकार देवताओंकी भाँति पूज्य और स्तुत्य बन जाते हैं। यह पितरोंके लोकका राजा माना है। पितरोंके लोककी स्थिति स्वर्गमें बताई गई है, जहाँ मर्त्यलोकसे जाकर लोग इकट्ठे होते रहते हैं। ऋग्वेदमें लौकिक विषयोंपर भी मंत्र मिलते हैं। इनमेंसे एक मंत्र विवाहके विषयमें है। पुरूरवा और उर्वशीका संवाद, मर्त्यलोकके राजा पुरूरवा और उर्वशी अप्सराकी प्रेम कहानी है। कुछ मंत्र शिक्षाप्रद भी हैं, जिनमेंसे एकमें जुआरीकी दुर्गतिका चित्रण किया है। ऋग्वेदके छः मंत्रोंमें विश्वकी उत्पत्ति और विकासपर प्रकाश डाला गया है। एक मन्त्रमें तो मण्डूकोंकी पूरी जीवन-गाथाका विवरण मिलता है। दान-स्तुतियोंमें दानकी प्रशंसा मिलती है। ऋग्वेदके कई सूक्तोंमें मनोरञ्जक पहेलियाँ भी मिलती हैं।

मंत्रोंमें देवताओंकी प्रशंसा करते हुए उनकी रूप-रेखा, सौन्दर्य, कार्य-व्यवहार, शक्ति, समृद्धि और वीरताके कार्योंका उल्लेख मिलता है। वैदिक कालमें लोगोंका विश्वास था कि यज्ञमें मन्त्रोंके द्वारा स्तुति करनेसे देवता प्रसन्न होते हैं और

समृद्धि प्रदान करते हैं, अथवा आवश्यकता पड़नेपर सहायता देते हैं। मन्त्रोंके अन्तमें कभी-कभी कवियोंने धन, यश, विजय अथवा वीरपुत्र पानेके लिए देवताओंसे प्रार्थनाएँ की हैं। उन्होंने अग्निके विषयमें कल्पनाएँ की हैं कि "अग्नि मनुष्योंका मित्र है वह मनुष्यों और देवताओंकी बीच दूतका काम करता है। अग्नि गृहस्थोंका देवता है, उनकी स्त्री और पुत्रोंकी रक्षा करता है। वह प्रत्येक घरका प्रथम अतिथि है। देवता होकर भी वह मर्त्योंके बीच रहता है। घरकी सारी उन्नति अग्निके ही हाथमें है। अग्नि कुमारियोंका पति है और विवाहके अवसरपर वर, कुमारियोंको अग्निसे ही पाता है। अग्नि देवताओंके पास हवि पहुँचाता है और उनको यज्ञके समीप लाता भी है इसलिए वह पुरोहित, होता, यज्ञका देवता और ऋत्विक् है। अग्निकी लपट उसका केश है, उसके दाँत सुनहरे और चमकीले हैं। अग्निकी लपट उसकी जीभ है, अग्निकी चार या सहस्र आँखें हैं।" अग्निको बैलसे उपमा दी गई है। उठती हुई लपटें सींगें मानी गई हैं। अग्निकी सहस्र सींगें हैं, वह क्रोधवश अपनी सींगोंको हिलाता है या तीक्ष्ण करता है। अग्नि अपनी तीक्ष्ण दाढोंसे वनोंको चबाता है, वह वनोंको कुचल डालता है। जब वायु अग्निको उत्तेजित करता है, तो वह वनमें फैल जाता है और पृथ्वीका केश कतर देता है। कवि अग्निसे प्रार्थना करता है, कि मेरे ऊपर आपका आशीर्वाद उसी प्रकार रहे, जैसे पिताका पुत्रके ऊपर होता है। अग्निके वर्णनके आधारपर ऋग्वेदकी वर्णन-शैलीकी कल्पना की जासकती है।

जैसा कि हमने अग्निके उपर्युक्त वर्णनमें देखा है, ऋग्वेदमें ऊँची कल्पना, व्यंजना, भावुकता और अलंकारमयी भाषाका प्रयोग हुआ है। ऋग्वेदके मंत्रोंमें प्रायः उच्च कोटिका काव्य

मिलता है। ऋग्वेदकी शब्द-योजना प्राकृतिक और सरल है। काव्यकी दृष्टिसे उषा-विषयक मंत्र सर्वोत्कृष्ट हैं। इन्द्र और वृत्रके युद्धका विशद चित्रण कविकी प्रतिभापूर्ण वर्णन-शैलीका द्योतक है, सारा ऋग्वेद छन्दोंमें रचा गया है। इसमें १५ प्रकारके छन्दोंका प्रयोग हुआ है। त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्दोंमें ऋग्वेदका लगभग दो तिहाई भाग रचा गया है। इन्हीं छन्दोंके आधारपर आगे चलकर संस्कृत साहित्यके छन्दोंका विकास हुआ है।

ऋग्वेदमें १०२८ सूक्त हैं, जिनमें सब मिलाकर १०,६०० श्लोक (मंत्र) हैं। सूक्तोंमें एकसे लेकर अट्ठावन तक श्लोक हैं। सामान्यतः प्रत्येक सूक्तमें दश श्लोक हैं। सारा ऋग्वेद दश मंडलोंमें विभक्त है और प्रत्येक मंडलमें कई सूक्त हैं। इसका प्रत्येक सूक्त अपनेमें पूर्ण है। एक सूक्त प्रायः एक ही देवताके विषयमें रचा गया है।

अथर्ववेद

अथर्ववेदका अर्थ अभिचारका ज्ञान है। मन्त्रोंके द्वारा कार्य-सिद्धि होती है। भारतीय दृष्टिकोणसे शब्दोंमें अनोखी शक्ति है। जिस प्रकार किसी कार्यको करनेमें भौतिक साधन उपयोगी होते हैं उसी प्रकार केवल शब्द-मात्र भी कार्योंकी सिद्धिके लिए साधन हो सकते हैं। प्रायः सूक्तोंमें स्तुतिकर्ताकी उत्कट कर्त्तव्य-परायणता और मनोबलका परिचय मिलता है। अथर्ववेदका प्रधान भाग रोगोंके निदानके विषयमें है। इनमें अभिचारकी प्रक्रियाओं द्वारा रोगोंकी चिकित्सा-पद्धतिकी कल्पना की गई है। उस समय लोगोंका विश्वास था, कि राक्षस और पिशाच सतानेके लिए रोगोंकी सृष्टि करते हैं। अथर्ववेदमें रोगों और

तत्सम्बन्धी राक्षसोंको सम्बोधित करके जो मंत्र कहे गये हैं, उनको भैषज्य कहते हैं। प्रायः मंत्रोंमें औषधि और जलकी प्रशंसा की गई है, जो उस समय उपचारके लिए ग्रहण किये जाते थे। कुछ मंत्रोंमें राक्षसोंको डराने वाली अग्निकी प्रशंसा मिलती है। मंत्रोंमें रोगोंके लक्षणोंका पूरा विवरण भी दिया गया है। ज्वरके राक्षस तक्माके प्रति अनेकों अभिचार मंत्र कहे गये हैं। उसी समयसे ही ज्वर रोगराज माना गया है। एक मंत्रमें ज्वरके प्रति कहा गया है– "तुम सभी लोगोंको पीला बना देते हो, अग्निकी भाँति जलाते हुए तापसे तुम उन्हें सुखा देते हो। ज्वर! अब तुम मंद पड़ो, तुम निष्फल हो जाओ। यहाँसे तुम अधो-लोकमें जाओ, किसी प्रकार अदृश्य हो। ज्वर! तुम्हारे बाण तीक्ष्ण हैं। हम लोगोंपर उनसे प्रहार न करो। ज्वर! तुम अपने भाई कफ, अपनी बहिन खांसी और अपने भतीजे क्षयको साथ लेकर अन्यत्र भाग जाओ।" राक्षसों और पिशाचोंके अतिरिक्त गंधर्वों और अप्सराओंको भी भय और दुःखका कारण मानते थे। उनको भगानेके लिए लोग अजशृङ्गी पौधेका प्रयोग तथा मंत्र-पाठ करते थे।

भैषज्य मंत्रोंकी भाँति आयुष्य सूक्तमें दीर्घजीवनकी कामना की गई है। इन मंत्रोंकी पाठ जातकर्म, चूड़ाकर्म, उपनयन इत्यादि घरेलू उत्सवोंके अवसरपर होता था। इन सूक्तोंमें सभी रोगोंसे मुक्त होकर सौ वर्ष जीनेकी प्रार्थना की गई है। पौष्टिक सूक्तोंका पाठ किसानों, पशुपालों और व्यापारियोंकी मंगल कामनाके लिए है। विभिन्न आवश्यकताओं और अवसरोंके लिए अलग-अलग मंत्र निर्धारित किए गये हैं। वर्षाके लिए सूक्त इसी भागमें मिलते हैं। अपराधों और पापोंसे मुक्त होनेके लिए प्रायश्चित्तके अवसरपर भी सूक्तोंका पाठ होता था।

अथर्ववेदमें मंत्रोंके द्वारा अभीष्ट व्यक्तिपर प्रभाव डालनेके विधान मिलते हैं। इनके द्वारा कौटुम्बिक सौहार्द्र और शान्तिके अतिरिक्त सभासमितियों और न्यायालयोंपर प्रभाव डालकर अपने पक्षकी विजयके उपाय किये जाते थे। इन मंत्रोंसे पति और पत्नीकी एकता भी सम्भव होती थी। कुछ मंत्रोंके द्वारा अभीष्ट वर या वधूकी प्राप्तिके उपाय किये जाते थे। विभिन्न उपयोंसे वशीकरणकी विधियोंके उल्लेख इस भागमें प्रायः मिलते हैं।

अभिचार-सूक्तोंके बहुतसे ऐसे मंत्र भी हैं जिनकी आवश्यकता उस समयके राजाओंको पड़ती थी। शत्रुओंके दमन और मंगलके लिए राजा, पुरोहितोंसे अभिचारकी विधियोंके साथ मंत्र-पाठ कराते थे। इस विधानका नाम राजकर्म था कुछ मंत्र राजाओंके अभिषेकके अवसरपर पढ़े जाते थे और उनसे राजाओंके मंगल, यश, प्रभुत्व और विजयकी कामना प्रकट की जाती थी। इसभागके कुछ मंत्र तत्कालीन युद्ध-गान हैं, जिनसे योद्धाओंको युद्ध-भूमिमें जाने और विजय पानेके लिए उत्साहित किया गया है।

अथर्ववेदके अन्तिम भागमें यज्ञ और उनकी विधियोंके विषयमें कुछ मंत्र पाये जाते हैं। इस वेदके कुन्ताप-सूक्तोंमें यज्ञकी विधियोंके साथ ही राजाओंकी उदारताका वर्णन है। कुछ सूक्तोंमें रहस्यवाद और सृष्टिसम्बन्धी बातें मिलती हैं। इनमें कहीं-कहीं दार्शनिकताकी पुट भी है। कई सूक्तोंमें स्तुति करने वालोंके मानसिक अभ्युत्थानकी अभिलाषाएँ मिलती हैं, जैसे—

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः।
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः॥

(मैं वाणीसे मीठा बोलता हूँ, जिससे मैं मधुरताकी मूर्ति बनूँगा। मैं मधुसे अधिक मीठा हूँ, मधुर पदार्थसे अधिक मधुर हूँ॥)

अथर्ववेदमें कहीं-कहीं काव्यकी झलक मिलती है। यह वेद भाषा, छन्द और सरसताकी दृष्टिसे ऋग्वेदकी समता नहीं कर सकता। इन दोनों वेदोंसे यह तो निःसन्देह सिद्ध होजाता है कि ऋग्वेदिक कालसे ही भारतवासियोंके बीच सरसहृदय, भावुकता, प्रतिभा और अलंकारमयी भाषाकी प्रतिष्ठा रही है, जो उच्च कोटिके काव्यके लिए आवश्यक है।

अथर्ववेदमें कुल ७३१ सूक्त हैं, जिनमें सब मिलाकर लगभग ६,००० श्लोक हैं। यह वेद बीस काण्डोंमें विभक्त है। इसका बीसवाँ काण्ड लगभग समूचा ही ऋग्वेदसे लिया गया है। इस वेदका अधिक भाग पद्यमें रचा गया है। पन्द्रहवाँ काण्ड पूरा तथा सोलहवेंका अधिकाँश गद्यमें है। शेष भागमें छिट-पुट गद्यके अंश मिलते हैं।

सामवेद

सामका अर्थ राग या ताल है। यज्ञोंके अवसरपर सामवेदका संगीतमय पाठ होता था। वेदोंकी ऋचाओंसे सामकी उत्पत्ति मानी गई है। सामवेद संहिता आर्किच और उत्तरार्किच दो भागों में विभक्त है। इन दोनों भागोंमे कुल मिलाकर १७१० श्लोक हैं, जिनमेंसे २६१ श्लोक दोनों भागोंमें समान हैं। इस प्रकार साम-वेदमें कुल १५४९ श्लोक शेष रह जाते हैं। इनमें ७५ को छोड़कर शेष सभी ऋग्वेदके आठवें और नवें मण्डलसे लिए गये हैं। वैदिक-कालमें उद्गातृ-पुरोहित होनेके लिए आर्चिक भागसे रागोंका अध्ययन किया जाता था और उत्तरार्चिक भागसे यज्ञोंके अवसरपर गाये हुए स्तोत्रोंको कण्ठाग्र किया जाता था। आर्चिक भागमें ५८५ ऋचाएँ हैं, जो लगभग इससे दूने विभिन्न रागोंमें

गाई जा सकती हैं। प्रत्येक गीतके प्रथम श्लोक द्वारा तत्सम्बन्धी रागकी ओर संकेत कराया गया है। उत्तरार्चिक भागमें ४०० गीत हैं, और प्रत्येक गीतमें प्रायः तीन श्लोक हैं। इन्हीं श्लोकोंमेंसे कुछ स्तोत्र यज्ञके अवसरपर गाये जाते थे।

सामवेदमें सात स्वरोंका संकेत, प्रायः एकसे लेकर सात अङ्कों के द्वारा किया गया है। गाते समय पुरोहित, हाथ और अंगुलियों की विभिन्न गतियोंसे विभिन्न स्वरोंका बोध कराता है। गाँव और वनमें गानेकेलिए आर्चिकमें विभिन्न राग नियत किये गए हैं, जिनको क्रमशः ग्रामगेयगान और अरण्यगान कहते हैं।

यजुर्वेद

यजुर्वेद संहितामें अध्वर्यु पुरोहितकी प्रार्थनाएँ मिलती हैं, जो यज्ञके अवसर पर गाई जाती थीं। अब तक यजुर्वेदकी पाँच संहिताएँ मिलती हैं—काठक, कपिष्ठल-कठ, मैत्रायणी, तैत्तरीय और वाजसनेयि संहिता। ये संहिताएँ विभिन्न जन समुदायोंकी हैं जिनके यज्ञ संबंधी विधियोंके मतभेदके कारण पतंजलिके समय तक १०१ विभिन्न शाखाएँ बन चुकी थीं। ऊपर लिखी हुई पाँच संहिताओंमेंसे प्रथम चार आपसमें सम्बद्ध हैं, और इनको कृष्णयजुर्वेद कहते हैं। वाजसनेयि-संहिताका नाम, शुक्ल यजुर्वेद है। कृष्ण यजुर्वेदमें मंत्रोंके साथ-साथ तत्सम्बन्धी याज्ञिक विधियों और उन की व्याख्याओंका भी उल्लेख है। शुक्ल यजुर्वेदमें केवल मंत्रोंके पाठ और याज्ञिक सूत्रोंके उल्लेखमात्र हैं।

वाजसनेयि-संहिताकी विषय-सूचीमें यजुर्वेदके वर्ण्य विषयकी कल्पना की जासकती है। इसमें कुल ४० अध्याय हैं, जिसके प्रथम २५ अध्यायोंमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण यज्ञोंकी प्रार्थनाएँ हैं।

प्रथम दो अध्यायोंमें दशपूर्णमास यज्ञकी प्रार्थनाएँ हैं । ये यज्ञ पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी द्वितीया के दिन सम्पन्न होते थे। तीसरे अध्यायमें दैनिक अग्निहोत्र, और चातुर्मास्य (ऋतुओंके यज्ञ) सम्बन्धी प्रार्थनाएँ हैं । सोम यज्ञकी प्रार्थनाएँ चौथेसे आठवें अध्याय तक मिलती हैं । नवें और दसवें अध्यायोंमें वाजपेय और राजसूय यज्ञोंकी प्रार्थनाएँ हैं। ग्यारहवेंसे अठारहवें अध्याय तक अग्नि-चयन (अग्निवेदिकाकी रचना) सम्बन्धी प्रार्थनाओं और याज्ञिक सूत्रोंके विवरण हैं । अग्नि वेदिकाकी यह क्रिया पूरे वर्षभर चलती थी । वेदिका १०,८०० ईंटोंकी बनती थी और इसका रूप उड़ते हुए पक्षीके समान होता था । उन्नीसवेंसे लेकर इक्कीसवें अध्याय तक सौत्रामणि यज्ञकी प्रार्थनाएँ हैं। यह यज्ञ अश्विद्वय संबंधी और इन्द्रके उपलक्ष्यमें होता था । बाईसवेंसे पच्चीसवें अध्याय तक अश्वमेधकी प्रार्थनाएँ हैं । इस यज्ञको कोई दिग्विजयी या शक्तिशाली राजा कर सकता था । इसके द्वारा किसी राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण, वीर क्षत्रिय, दूध धेनेवाली गाय, हल जोतने वाले बैल, वेगवान् घोड़े, वीर और विजयी पुत्र अभीष्ट वर्षा और मनो-वाञ्छित आनन्द तथा समृद्धिकी कामना की जाती थी ।

शेष १५ अध्याय पहले २५ अध्यायोंके पूरकमात्र हैं, जो पीछे से जोड़ दिये गए थे । इन अध्यायोंमेंसे कुछ प्रार्थनाओंके परिशिष्ट उपनिषद् जैसे प्रतीत होते हैं । बत्तीसवेंसे चौंतीसवें अध्याय तककी प्रार्थनाएँ सर्वमेधके लिए हैं । इस यज्ञमें यजमान सर्वस्व पुरोहित को दे देता था । पैंतीसवें अध्यायमें थोड़ेसे अन्त्यक्रिया सम्बन्धी पद्य हैं, जो प्रायः ऋग्वेदसे लिए गये हैं । सत्तीसवेंसे उनतालीसवें अध्याय तक प्रवर्ग्य विधिकी प्रार्थनाएँ हैं । प्रवर्ग्यमें यज्ञकी अग्नि पर एक कडाह तपा कर उसमें दूध उबालते हैं, और अश्विनोंको समर्पित करते हैं । वाजसनेयि-संहिताका अन्तिम अध्याय, ईश-

उपनिषद् है जो उपनिषदों की कोटिमें सर्वप्रथम है।

यजुर्वेदकी रचना गद्य और पद्य दोनोंमें हुई है। इस वेदका महत्व भारतीय धर्मोंके विकासके दृष्टिकोणसे ही है। काव्यकी दृष्टि से यजुर्वेद प्रायः नीरस है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यजुर्वेदसे तत्कालीन धार्मिक विश्वास और सामाजिक जीवनपर बहुत प्रकाश पड़ता है।

श्री रामगोविन्दजी त्रिवेदी, ऋग्वेद भाष्यके मण्डल २ के प्रारम्भमें लिखते हैं कि—"ऋग्वेदके प्रथम और दशम मण्डलों के रचयिता अनेक ऋषि हैं, परन्तु अवशिष्ट मण्डलों के एक-एक ऋषि और उनके वंशीय हैं। जिन मण्डलों के जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—द्वितीयके गृत्समद, तृतीयके विश्वामित्र, चतुर्थके वामदेव, पञ्चमके अत्रि, षष्ठके भारद्वाज, सप्तमके वसिष्ठ, अष्टमके कण्व, नवमके अंगिरा ऋषि या इन ऋषियों के वंशोद्भव रचयिता हैं।

कहा जाता है, अंगिरा ऋषिके वंशीय शुनहोत्र ऋषिके पुत्रका नाम गृत्समद था। एक बार असुर लोग गृत्समदको पकड़ कर ले गये। पीछे इन्द्रने गृत्समदका उद्धार किया और भृगुवंशीय शुनक के पुत्र शौनक कहकर अभिहित किया। शौनककी अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है। इससे मालूम पड़ता है, कि अंगिराके वंशको छोड़कर गृत्समदने भृगुवंशीयता प्राप्त की थी। महाभारत (अनुशासन पर्व) से विदित होता है, कि गृत्समद हैहय क्षत्रियोंका राजा और वीतिहव्यके पुत्र थे। एकवार काशीराज प्रतर्दनके भयसे वीतिहव्य भृगुके आश्रममें जा छिपे। भृगुने उन्हें शरणमें रख लिया। वीतिहव्यको खोजते हुए प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें जा धमके। पूछनेपर भृगुने कहा कि, मेरे आश्रममें क्षत्रिय नहीं रहता। ऋषिवाक्य असत्य नहीं होता, इसलिए इसी दिनसे वीतिहव्य

ब्राह्मण होगये और उन्हींके पुत्र गृत्समद ब्रह्मर्षि हुए। किसी किसी के मतसे नैमिषारण्यमें जो द्वादश वर्ष-व्यापी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद (शौनक) प्रधान थे।

ये यज्ञके कई ऋषियोंके नाम हैं। बड़े यज्ञमें १६ ऋत्विग् रहते थे। प्रथम मण्डलके ३७ सूक्तमें इनका विवरण है।

"संसारके अधिकांश विद्वान् हिन्दू, ग्रीक, रोमन परशियन आदि जातियोंको आर्य जातिकी शाखाएँ मानते हैं और इन सब में सदासे अग्निकी पूजा प्रचलित है। ग्रीकोंकी रायसे जो देवता, मनुष्यकी भलाईके लिए, स्वर्गसे, पहिले पहल, अग्नि चुरा लाया, उसका नाम प्रोमेथियस या प्रमन्थ है। उस देवताके ग्रीक (यूनानी) अनन्य उपासक हैं। रोमनोंमें वलकन या उल्काके नामसे अग्नि की पूजा प्रचलित है। लाटिन भाषाभाषी अग्निको इग्निस और स्लाव लोग अग्नि कहते हैं। ईरानी या परशियन लोग "अत्तर' नामसे अग्निकी उपासना करते हैं। हिन्दुओंके तो प्रसिद्ध देवता अग्नि हैं ही। निरुक्त (७-५) का मत है कि, "पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरीक्षमें वायु या इंद्र और आकाशमें, सूर्य देवता हैं।" इनमें प्रधान देवता अग्नि हैं—ऋग्वेदको देखनेसे यह बात स्पष्ट विदित होती है।

ऋग्वेदमें अग्नि सम्बन्धी जितनी ऋचाएँ हैं, उतनी इंद्रको छोड़कर किसी भी देवताके सम्बन्धकी नहीं। ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें अग्निको पुरोहित कहा गया है। वह पुरोहित या अग्रणी इसलिए हैं कि, उनके बिना यज्ञ ही नहीं हो सकता। अग्नि होता या देवोंको बुलाने वाला इसलिए है कि उनका जलना ही देवोंके आगमनका कारण है। होता, पोता, अध्वर्यु आदि कई प्रकारके कर्मानुसार पुरोहित या ऋत्विग् होते हैं। इनमें होता या देवाह्वान-

कारी ऋत्विग्‌का ही यहाँ उल्लेख है । ऋत्विग् शब्दका अर्थ है निर्दिष्ट समयपर यज्ञ करानेवाला । अग्नि रत्नधारी इसलिये हैं कि, यज्ञफलरूप रत्नों (धनों) के धारण या पोषण करनेवाले हैं ।

ऋग्वेद जैसे प्राचीनतम ग्रन्थमें सर्वप्रथम अग्नि-पूजाका मंत्र देखकर अनेक पश्चिमी विद्वान् आर्योंको जड़ोपासक, असभ्य और वर्वर कहते हैं । वे कहते हैं कि, इस मंत्रमें तेजोमय ईश्वरकी अभ्यर्थना है । ईश्वर ही पुरोहित (संसार-हितैषी) दीप्तिमान् (तेजोरूप या दाता) ऋत्विग् होता (देवाह्वानकारी) और रत्नधारी (निखिल सम्पत्तिशाली) हैं ।

हमारी राय है कि, कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं कार्य करनेमें असमर्थ है । हाँ, यदि उसका कोई चैतन्य अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमें समर्थ हो सकता है । इसी विचारसे आर्य लोग जड़ अग्नि, वायु आदिके सिवाय उनके अधिष्ठातृ-रूपसे एक एक चेतन अग्नि, वायु आदि चैतन्य देव भी मानते थे । ऐसे असंख्य देव हैं, और चूंकि परमात्मा सबके अधिष्ठाता हैं, इसलिए इन सब देवोंको ईश्वर अंश माना जाता है । फलतः शासक-रूपमें कर्मानुसार देवों के अनेक नाम अवश्य हैं, परन्तु सबके चेतन-रूप होनेसे सब देव एक हैं और वही परमात्मा हैं ।

यहाँसे प्रारम्भ कर नौ ऋकों, ऋचाओं या मंत्रोंमें अग्निकी स्तुति-प्रशंसा है, इसलिए इनके देवता अग्नि हैं और इन मंत्रोंका एक नाम आग्नेय है ।

अंगिरा या अंगारा अग्नि और ऋषि—दोनोंका नाम है । यास्कने निरुक्तमें अंगारेको ही अंगिरा लिखा है । ऐतरेय ब्राह्मणमें भी यही बात है । उसमें यह भी लिखा है कि, अंगिरो वंशज ऋषिगण पहिले अंगारे ही थे । विल्सन और म्योरकी राय है कि अंगिरा ऋषि लोग प्रख्यात वंशके थे और बहुत करके उन्होंने ही भारतवर्ष

में अग्नि-पूजाका प्रथम प्रचार किया। यह निर्विवाद है कि, अंगिरो वंशके ऋषि लोग वेदमन्त्रोंके स्मारक थे।

श्री बलदेव उपाध्याय और वेद

आचार्य श्री बलदेव उपाध्यायजी अपनी 'आर्यसंस्कृतिके मूलाधार' नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि—"चारों संहिताओंमें ऋग्वेद संहिता सबसे प्राचीन है। अन्य संहिताओंमें ऋग्वेदके अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं। सामवेद तो पूराका पूरा ऋग्वेदके मंत्रोंसे ही बना है। ऋग्वेद एक ग्रन्थ न होकर एक विशालकाय ग्रन्थ-समूह है। भाषा तथा अर्थकी दृष्टिसे वैदिक साहित्यमें भी यह अनुपम ग्रंथ माना जाता है। इसके दो प्रकारके भाग उपलब्ध होते हैं—(१) अष्टक, अध्याय और सूक्त (२) मण्डल अनुवाक और सूक्त। पूरा ऋग्वेद आठ भागोंमें विभक्त है, जिन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टकमें आठ अध्याय हैं। इस प्रकार पूरे ऋग्वेदमें आठ अष्टक अथवा चौंसट अध्याय हैं। यह विभाग पाठ-क्रमके सुभीतेके लिये किया गया प्रतीत होता है। दूसरा विभाग इससे कहीं अधिक ऐतिहासिक तथा महत्वशाली है। इस विभागमें समग्र ऋग्वेद दस खण्डोंमें विभक्त है जिन्हें 'मण्डल' कहते हैं। मण्डलमें संगृहीत मन्त्रसमूहको 'सूक्त' कहते हैं। इन सूक्तोंके खण्डोंको ऋचाएँ कहते हैं। ऋग्वेदमें सूक्तोंकी संख्या सब मिलकर १०२८ हैं तथा मन्त्रोंकी संख्या ११ हजारके लगभग है।

वेदोंको हम लोग ऋषियोंके द्वारा 'दृष्ट' मानते हैं। ऋषि शब्दका अर्थ ही देखनेवाला है। यास्कने इसीलिये ऋषियोंको मंत्र का द्रष्टा माना है। ऋग्वेदके ऋषिगण भिन्न-भिन्न कुटुम्बोंसे सम्बद्ध हैं। एक कुलके ऋषियोंके द्वारा दृष्ट मंत्रोंका संग्रह एक मण्डलमें

किया गया है। प्रथम मण्डल और दशम मण्डलमें तो नाना कुटुम्बोंके ऋषियोंके द्वारा दृष्ट मंत्रोंका संकलन है। इन ऋषियोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) गृत्समद (२) विश्वामित्र (३) वामदेव (४) अत्रि (५) भारद्वाज (६) वसिष्ठ जो क्रमशः द्वितीयसे लेकर सप्तम मण्डल तक से संबद्ध हैं। अष्टम मण्डलमें कण्व वंश और अंगिरा गोत्रके ऋषियोंके मंत्र हैं। नवम मण्डलमें सोम-विषयक मंत्रोंका ही संकलन है। सोमका नाम है पवमान अर्थात् पवित्र करने वाला। सोम-विषयक होनेसे ही इस मण्डलका नाम 'पवमान मण्डल' पड़ा है। दशम मण्डलके मन्त्र नाना ऋषिकुलोंसे सम्बद्ध हैं। इसमें केवल देवताओंकी स्तुति नहीं है, अपितु अन्य विषयोंका भी सन्निवेष है। दूसरेसे लेकर सातवें मण्डल तक ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है। दशम मण्डल पूरे ऋग्वेदमें अर्वाचीन समझा जाता है।

वैदिक ऋषि व देवता

आज यदि वेदका अध्ययन निष्पक्ष होकर करने लगें, तो उस को उसी समय पता लगेगा कि, जिस यज्ञकर्ममें इन मत्रोंका उपयोग होता है उस यज्ञकर्मका मन्त्रोंके अर्थके साथ कोई संबंध ही नहीं है। अर्थात् मन्त्र यज्ञकर्ममें अर्थकी अनुकूलता से नहीं लगाये गए, प्रत्युत उस समयकी परिपाटीसे लगाये गए हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत कई स्थानोंमें अर्थका बिल्कुल ध्यान न करते हुए ही यज्ञकर्ममें मंत्रोंका प्रयोग हुआ है। इसलिए सबसे प्रथम बड़ी खोज करके अन्तर्गत प्रमाणोंसे वेदका सरल अर्थ निश्चित करना चाहिए और याज्ञिक पद्धतिका विचार करना हो, तो वेद मंत्रोंको अलग रीतिसे पुनः संग्रहीत करना चाहिए। अर्थात जो यज्ञ वेदमंत्रोंके अर्थसे सिद्ध होंगे, उतने यज्ञ तो मानने ही चाहिएँ, परन्तु जो वेद मंत्र अर्थसे यज्ञका प्रतिपादन नहीं करते, उनका विचार अलग करना चाहिए।

आज कल जो मंत्रसंग्रहकी व्यवस्था है, वह अर्थकी दृष्टिसे नहीं है। अर्थात् सूक्तोंका पूर्वापर सम्बन्ध कोई नहीं है। इसका उदाहरण देखिए—

ऋग्वेद प्रथम मण्डल

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्र संख्या
१	मधुच्छन्दाः	अग्नि	६
२	,,	वायु	३
		इन्द्रवायू	३
		मित्रावरुणौ	३
३	,,	अश्विनौ	३
		इन्द्रः	३
		विश्वेदेवाः	३
		सरस्वती	३
४	मधुच्छन्दाः	इन्द्रः	१०
५	,,	,,	१०
६	,,	,,	
		मरुतः	१०
७	,,	इन्द्रः	१०
८	,,	,,	१०
९	,,	,,	१०
१०	,,	,,	१२
११	,,	,,	८

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्र संख्या
१२	मेधातिथिः	अग्निः	१२
१३	"	"	१२
१४	"	विश्वेदेवाः	१२
१५	"	ऋतवः	१२
१६	"	इन्द्रः	६
१७	"	मित्रावरुणौ	६
१८	"	ब्रह्मणस्पत्यादयः	६
१६	"	अग्नामरुतौ	६
२०	"	ऋभवः	८
२१	"	इन्द्राग्नी	६
२२	"	अश्विनौ आदयः	२१
२३	"	वायवादयः	२४
२४	शुनः शेपः	अग्न्यादयः	१५
२५	"	वरुणः	२१
२६	"	अग्नि	१०
२७	"	"	१३
२८	"	इन्द्रादयः	६
२६	"	इन्द्रः	७
३०	"	इन्द्रादयः	२२
३१	हिरण्यस्तूपः	अग्नि	१८

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
३२	हिरण्यस्तूपः	इन्द्रः	१५
३३	”	”	१५
३४	”	”	१२
३५	”	अग्न्यादयः	११
३६	काण्वः	अग्निः	२०
३७	”	मरुतः	१५
३८	”	”	१५
३९	”	”	१०
४०	”	ब्रह्मणस्पतिः	८
४१	”	वरुणादयः	९
४२	”	पूषा	१०
४३	”	रुद्रादयः	९
४४	प्रस्कण्वः	अग्निः	१४
४५	”	”	१०
४६	”	अश्विनौ	१५
४७	”	”	१०

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
४८	प्रस्कण्वः	उषाः	१६
४६	,,	,,	४
५०	,,	सूर्यः	१३
५१	सव्य	इन्द्रः	१५
५२	,,	,,	१५
५३	,,	,,	११
५४	,,	,,	११
५५	,,	,,	८
५६	,,	,,	६
५७	,,	,,	६
५८	नोधा	अग्निः	६
५६	,,	,,	७
६०	,,	,,	५
६१	,,	इन्द्रः	१६
६२	,,	,,	१३
६३	,,	,,	६
६४	,,	मरुतः	१५

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
६५–७३	पराशरः	अग्निः (प्रत्येक सूक्त)	१०
७४	गोतमः	,,	९
७५–७८	,,	,, (प्रत्येक सूक्त)	५
७९	,,	,,	१२
८०	गोतमः	इन्द्रः	१६
८१	,,	,,	९
८२	,,	,,	६
८३	,,	,,	६
८४	,,	,,	२०
८५	,,	मरुतः	१२
८६	,,	,,	१०
८७	,,	,,	६
८८	,,	,,	६
८९	,,	विश्वेदेवाः	१०
९०	,,	,,	९
९१	,,	सोमः	२३

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
६२	गोतमः	उषादयः	१८
६३	,,	अग्नीषोमौ	१२
६४	कुत्सः	अग्निः	१६
६५	,,	,,	११
६६	,,	,,	६
६७	,,	,,	८
६८	,,	,,	३
६६	कश्यपः	,,	१
१००	ऋज्राश्वादयः	इन्द्रः	१६
१०१	कुत्सः	,,	११
१०२	,,	,,	११
१०३	,,	,,	८
१०४	,,	,,	६
१०५	त्रितः	विश्वेदेवाः	१६
१०६	कुत्सः	,,	७
१०७	,,	,,	३

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१०८	कुत्सः	इन्द्राग्नी	१३
१०६	,,	,,	८
११०	,,	ऋभवः	६
१११	,,	,,	५
११२	,,	अग्न्यादयः	२५
११३	,,	उषादयः	२०
११४	,,	रुद्रः	११
११५	,,	सूर्यः	६
११६	कक्षीवान्	अश्विनौ	२५
११७	,,	,,	२५
११८	,,	,,	११
११६	,,	,,	१०
१२०	,,	,,	१२
१२१	,,	विश्वेदेवाः	१५
१२२	,,	,,	१५
१२३	,,	उषा	१३
१२४	,,	,,	१३
१२५	,,	दानम्	७
१२६	,,	,,	७

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्र संख्या
१२७	परुच्छेपः	अग्निः	११
१२८	"	"	८
१२९	"	इन्द्रः	११
१३०	"	"	१०
१३१	"	"	७
१३२	"	"	६
१३३	"	"	७
१३४	"	वायुः	६
१३५	"	वाय्वादयः	९
१३६	"	मित्रावरुणादयः	७
१३७	"	"	३
१३८	"	पूषा	४
१३९	"	देवाः	११
१४०	दीर्घतमाः	अग्निः	१३
१४१	"	"	१३
१४२	"	"	१३
१४३	"	"	८
१४४	"	"	७

सूक्त	ऋषिः	देवता	मंत्रसंख्या
१४५	दीर्घतमाः	अग्निः	५
१४६	"	"	५
१४७	"	"	५
१४८	"	"	५
१४६	"	"	५
१५०	"	"	३
१५१	"	मित्रादयः	६
१५२	"	"	७
१५३	"	"	४
१५४	"	विष्णुः	६
१५५	"	"	६
१५६	"	"	५
१५७	"	अश्विनौ	६
१५८	"	"	६
१५६	"	द्यावापृथिवी	५
१६०	"	"	५
१६१	"	ऋभवः	१४

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१६२	दीर्घतमाः	अश्वः	२२
१६३	,,	,,	१३
१६४	,,	देवाः	५२
१६५	इन्द्रायः	मरुत्वानिन्द्रः	१५
१६६	अगस्त्यः	मरुतः	१५
१६७	,,	,,	११
१६८	,,	,,	१०
१६९	,,	इन्द्रः	८
१७०	,,	,,	५
१७१	,,	मरुतः	६
१७२	,,	,,	३
१७३	,,	इन्द्रः	१३
१७४	,,	,,	१०
१७५	,,	,,	६
१७६	,,	,,	६
१७७	,,	,,	५
१७८	,,	,,	५
१७९	,,	रतिः	६
१८०	,,	अश्विनौ	१०

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१८१	अगस्त्यः	अश्विनौ	६
१८२	"	"	८
१८३	"	"	६
१८४	"	"	६
१८५	"	द्यावापृथिवी	११
१८६	"	विश्वेदेवाः	११
१८७	"	"	११
१८८	"	(आप्री)	११
१८६	"	अग्निः	८
१६०	"	बृहस्पतिः	८
१६१	"	अप्तृणसूर्यः	१३

ये ऋग्वेद के प्रथममण्डलके सूक्त हैं। इनमें पाठक देखेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि, किसी एक प्रकरणमें प्रथम बहुत मंत्र-संख्या वाले सूक्त रखे हैं और आगे क्रमशः कम मंत्रसंख्या वाले सूक्त रखे गये हैं। उदाहरणके लिये सूक्त १२ से २१, २४ से २६, ३१ से ३५, ५१ से ५७, ५८ से ६०, ६१ से ६३, ८० से ८३, ६४ से ६८, ११६ से ११६, १२६ से १३४, १४० से १५०, १७३ से १७८, १८० से १८४, ये सूक्त देखिये। इनमें क्रमशः मंत्रसंख्या कम हुई नजर आवेगी। एक ही देवतामें यह बात विशेष स्पष्ट होगी। एक ही ऋषिके मंत्रोंमें प्रथम अग्निके मंत्र रहते हैं। इनमें स्पष्टतया प्रथम बहुसंख्या वाले सूक्त आते हैं। पश्चात् अल्पसंख्या वाले

आते हैं। सर्वत्र ऋग्वेदमें यही, मन्त्रसंख्यासे सूक्तक्रम रखा है। जहाँ इस क्रमके विरुद्ध कुछ सूक्त दिखाई देंगे, उन सूक्तोंमें अनेक देवता होंगे, विविध देवता होंगे, ऋषि बदले होंगे, या इसी प्रकार का अन्य कारण अवश्य होगा। इससे पता चलता है कि यह अर्थानुसंधानसे सूक्त नहीं रखे हैं, परन्तु केवल मंत्रसंख्याके ही अनुसंधानसे रखे हैं।

अथर्ववेदमें भी पहिले सात काण्डोंका इसी तरह सूक्तोंकी मंत्रसंख्यासे संग्रह किया गया है।

काण्ड	सूक्त
१	४ मन्त्रवाले अधिक सूक्त हैं।
२	५ ,, ,,
३	६ ,, ,,
४	७ ,, ,,
६	३ ,, ,,
७	१ या २ से अधिक ,,
८–९	२० से अधिक ,,
१०	३० से अधिक ,,

इस प्रकार काण्डके काण्ड सूक्तमें मंत्रसंख्या कितनी है, इस कारणसे ही इकट्ठे—संग्रहीत हुए हैं। इस कारण प्रत्येक काण्डमें औषधिसूक्त, जलसूक्त, अग्निसूक्त, चिकित्सासूक्त आदि इतस्ततः बिखरे दिखाई देते हैं। ऋग्वेदके पहिले सात काण्ड ऋषिक्रमसे संग्रहीत किये गये हैं—

मण्डल	ऋषि	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
द्वितीय	गृत्समद	४३	४२६
तृतीय	विश्वामित्र	६२	६१७
चतुर्थ	वामदेव	५८	५८६
पंचम	अत्रि	८७	७२७
षष्ठ	भरद्वाज	७५	७६५
सप्तम	वसिष्ठ	१०४	८४१

ये मण्डल प्रायः बढ़ती सूक्त और मंत्रसंख्याके दीखते हैं, एक स्थान पर थोड़ा सा व्युत्क्रम भी है।

प्रथम मण्डलकी सूक्तसंख्या १९१ और मंत्रसंख्या २००६ है। दशम मण्डलकी सूक्तसंख्या १९१ और मंत्रसंख्या १७५४ है। अष्टम मंडल कण्वका दीखता है और प्रथम मण्डल मधुच्छन्दाका है, तथापि इनमें अनेक अन्यान्य ऋषियोंके देखे आये हैं। ये मन्त्र-संग्रह 'आर्षेय-संहिता' के दर्शक हैं। नवम मण्डल सोम देवताका है और इसको 'दैवत-संहिता' का सूचक मान सकते हैं।

इस तरह ऋग्वेदमें दोनों प्रकारके मन्त्रसंग्रह दीखते हैं, पहिले ७ मण्डल 'आर्षेय' हैं और नवममण्डल 'दैवत' है। अर्थात् ऋग्वेदकी यह व्यवस्था बतलाती है कि वेदमंत्रोंका अध्ययन 'अर्षोय-संग्रह' की दृष्टिसे भी करना चाहिए और 'दैवत-संग्रह' की दृष्टिसे भी करना चाहिए।

सायण भाष्य

पं० रामगोविन्दजी त्रिवेदी "वैदिकसाहित्य" नामके अपने ग्रंथके पृ० ४० पर लिखते हैं, कि—

"वेदाध्ययनसे विमुख हो केवल वाणीसे वेद-भक्त बननेवाले कुछ लोग कहते हैं कि 'अनेक जन्म तपस्या किये विना और जीवन्मुक्त प्राप्त किये विना कोई भी न तो वेदोंका अर्थ ही समझ सकता है और न उनके बारेमें कोई राय ही दे सकता है।" किन्तु इन पंक्तियोंके लेखकमें न तो ये गुण ही हैं और न लेखक इस मतका समर्थक ही है। यह बात तो अवश्य है कि नैरुक्त, नैदान, ऐतिहासिक, ब्रह्मचारी, याज्ञिक, परिव्राजक, स्वरमुक्तिवादी आदि कितने ही ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो वेदार्थके सम्बन्धमें विभिन्न मत रखते हैं। औपमन्यव, कौत्स, यास्क, उद्गीथ, स्कन्दस्वामी, भरतस्वामी, रावण, भट्ट भास्कर, वेंकट, उव्वट, महीधर, सत्यव्रतसामाश्रमी, स्वा० दयानन्द, लोकमान्य तिलक, अविनाशचन्द्र दास, राथ, ग्रिफिथ, मैक्डानल, मैक्समूलर, भुडांगिल, लांलोआ, ग्रासमान, रेले, दाराशिकोह, आदि आदि वेद समीक्षकोंकी वेदार्थ सम्बन्धिनी अनेक सम्मतियां भी हैं। परन्तु सारे वर्ग इन तीन वर्गोंमें ही आजाते हैं आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। ये तीनों ही मत वेदोंमें यथास्थान विन्यस्त हैं। इनमेंसे किसी एकको लेकर और सारे मन्त्रोंकी खींचतान करके एक सा ही अर्थ निकालना, साम्प्रदायिक वा एकपक्षीय मनोवृत्तिका परिचायक है—निरपेक्षता, उदारता और दृष्टिव्यापकताका नहीं। प्रयोग, निरीक्षण, व्यवहार निर्वाचन, अभ्यास, समनुगमन आदिका विचार किये विना केवल अध्यात्मवादकी काल्पनिक उड़ान उड़ने और ग्रीक, लैटिन भाषाओंका कोरा अभ्यास करनेसे कोई भी वेदार्थ नहीं समझ सकता।

वेदोंमें आध्यात्मिक आदि तीनों ही अर्थ हैं और सायणाचार्यने निरपेक्ष होकर तीनों ही अर्थोंको यथास्थान लिखा है। वेदोंमें समाधिभाषा, परकीयभाषा और लौकिकभाषा-तीनों ही भाषाओं का प्रयोग है और सायणने यथास्थान तीनोंका ही रहस्य बताया है। इसीलिए उन्होंने इन्द्रका अर्थ ईश्वर, दत्र, ज्ञान, विद्युत तक लिखा है और वृत्रका अर्थ असुरराज, असुर, अज्ञान और मेघ तक। जहाँ जिस भाषा और वादका कथन है, वहां उसीका उल्लेख करके सायणने अर्थ-समन्वय किया है।

यह सब होते हुए भी देश और विदेशमें सायणके विरुद्ध मत रखनेवालोंकी कमी नहीं है। विदेशी वेदाभ्यासियोंमें "Tosvonsayana" (सायणका बहिष्कार करो) की आवाज कई बार उठाई गई। 'वैदिककोष' लिखनेवाले राथ और ग्रासमानका सायणमत-खंडन तो विश्व-विदित है ही, परन्तु लेखकके मतसे सारे मतभेद और खण्डन निरर्थक हैं; क्योंकि—

१—वेदार्थ-निर्णय करनेमें सायणने आर्यजातिकी प्राचीन मर्यादा और परम्पराका पालन किया है।

२—स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव और उद्गीथ आदि ऋग्वेद के प्राचीन टीकाकारोंका सायणने अनुगमन किया है।

३—सायण-भाष्यका समर्थन सारे वैदिक-साहित्य, प्राचीन इतिहास और आर्य जाति के आचार-विचारसे होता है।

४—विश्वकी विविध भाषाओंमें प्रकाशित वेद-संबन्धी ग्रंथोंके प्रणेता प्रायः सायणानुयायी हैं।

५—सनातन धर्मानुयायी सदासे सायणभाष्यको आर्य जाति

की संस्कृति, सभ्यता और नीतिका अनुयायी मानते हैं।

६—सायणभाष्यके सिवाय ऋग्वेदपर किसीका भी पूर्णभाष्य नहीं। इसलिए सायण-भाष्यके अभावमें ऋग्वेदका न तो सम्यक् अर्थ-संग्रह होता, न रोठराचार्य (राथ) की 'पीट र्स्बर्ग लेक्सिकन' नामक कोप-पुस्तक ही बन पाती और न ग्रासमानका वैदिक-कोष ही लिखा जाता।

फलतः जिन विद्वानोंकी धारणा है कि ग्रीक और लैटिन भाषाओंका ज्ञान और साधारण संस्कृत-ज्ञान रहनेसे ही मनुष्य वेदार्थ समझ सकता है, वे भारी भ्रममें हैं। हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-शास्त्रोंका मर्म समझनेवाले सायणके भाष्यसे वेदार्थ समझनेमें जो सहायता मिलेगी, उसकी टुकड़ी सहायता भी ग्रीक और लैटिन के ज्ञानसे अथवा लांलोआ (फ्रेंच), लुड़विग (जर्मन) और ग्रिफिथ (इङ्गलिश) के किए वेदार्थसे नहीं मिलेगी। इसलिए वैदिकसाहित्य का परिचय पानेके लिये सायण-भाष्य प्रधान सहायक है। इन पंक्तियोंका लेखक सायण भाष्यके अनुकूल वेद-परिचय देना उत्तम समझता है।"

इसी प्रकार आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० नरदेव जी तथा सातवलेकरजी आदिने भी सायणाचार्यके भाष्यकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसीलिए हमने भी इस पुस्तकमें प्रायः उसी भाष्यका अनुसरण किया है।

वेदों में इतिहास

ऋ० मं० १० सूक्त ३९ में निम्न प्रकारसे इतिहास आया है—

१—युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्।

अर्थात जैसे कोई पुराने रथ को नये रूपसे बनाकर उसके द्वारा गीत-विधि करता है, वैसे ही तुमने जरा-जीर्ण च्यवन ऋषि को युवा बना दिया था। तुम लोगों ने ही तुग्र पुत्रको जलके ऊपर निरुपद्रवरूपसे वहन करके तटपर लगा दिया था। यज्ञके समय तुम दोनोंके ये सब कार्य, विशेषरूपसे वर्णन करने योग्य हैं।

२—युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवम्'

अर्थात् पुरुमित्र राजा "शुन्ध्युव" नामक कन्याको तुम लोग रथपर चढ़ा लगये थे और "विमद" के साथ उसका विवाह करा दिया था। वध्रिमतीने तुम लोगोंको बुलाया था, उसकी बात सुन कर और उसकी प्रसववेदनाको दूर करके सुखसे प्रसव कराया था।

३—युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः

अर्थात कलि नामका स्तोता जो अत्यन्त वृद्ध होगया था, तुम लोगोंने उसे फिर यौवनसे युक्त किया था। तुम लोगोंने ही वन्दन नामक व्यक्तिको कुएँके बीचसे निकाला था। तुम लोगोंने ही लँगड़ी विश्पलाको लोहेका चरण देकर उसे चलानेवाली बना दिया था।

४—युवं हरेभं वृषणागुहा

अर्थात् अभीष्ट फलदाता अश्विद्वय! जिस समय रेभनामक व्यक्तिको शत्रुओंने मृतप्राय करके गुहाके बीच रख दिया था, उस समय तुम लोगोंने ही उसे संकटसे बचाया था। जिस समय अत्रि ऋषि, सात बन्धनोंमें बाँधे जाकर जलते अग्निकुण्डमें फेंके गये थे, उस समय तुम लोगोंने उस अग्नि कुण्डको बुझाया था।